

ॐ

श्री जगदीश्वरी विजयते

## चारण

अखिल-भारतीय-चारण-सम्मेलन

का

त्रैमासिक-मुखपत्र



सत्य अभय स्वातंत्र्य उपासक,—सिखा भरण-जीवन का मार्ग ।

साधुधर्म-उद्बोधक चारण,—रहा सदा साधक युगधर्म ॥

वर्ष १ ]

विजया-दशमी

[ अंक १ ]

विक्रम सम्वत् १९९५

जगन्माता से

मां !

कहते हैं, तेरी स्तुति शिव महामन्त्रिक करते हैं । फिर, मैं कहूँ कि तेरी स्तुति कहे तो कितना पागलपन है ?

तथापि इतनी सी प्रार्थना तो सुन लेना मा !

रहै विराजी हृदय में, मङ्गलदा तब मूर्ति ।  
अमिनव नित उन्नत रहै, सेया हित तेन स्फूर्ति ॥

हाँ यह तो ठीक किन्तु मा ! तू अक्षयणी है; और तेरे असंख्य परित्यक्ती  
दाने २ को क्यों तरसते हैं ?

और ये बलि के भूक पशु ! क्या उनकी तू मा नहीं, जगदम्बा ?  
तू जगदीश्वरी भी है; तो तेरे साम्राज्य में यह भार २ को गलांतराशी क्यों ?  
वेर !

देवि ! दया कर के जरा समझा—तुलसी गति लखी न परे !



## आत्मनिवेदन

अखिल भारतीय चारन सम्मेलन के उद्देश्योंकी पूर्ति के लिये उसके द्वारा एक मासिक मुखपत्रको निकाला जाना। सम्मेलनके तीसरे अधिवेशन ( वि. सं. १९८३ पुष्कर ) में जरूरी समझा गया और स्वर्गीय डा. किशोरसिंहजी वारहट M. R. A. S. ( London ) स्टेट हिस्टोरियन पटियाला (पंजाब)के सिपुर्द यह काम किया गया ! उन्होंने बड़ी योग्यतापूर्वक “ चारन ” मासिक-पत्रका सम्पादन प्रारंभ किया; वि. सं. १९८५ के प्रारंभ में “ चारन ” का प्रथम अंक निकला और अंत में ग्यारहवां अंक। सम्पादक महोदय पटियाला नरेश की सेवा में थे। अतः फुरसत न मिलने से ये ग्यारह अंक भी ठीक समयपर नहीं निकलते रहे और उक्त कारण से ही ये बारहवां अंक तक भी न निकाल सके और पत्रका प्रकाशन बंद हो गया।

सम्मेलन के तीसरे अधिवेशन में चौथे अधिवेशनका निर्मग्न मारवाड की ओर से था किन्तु मारवाडी बन्धु करीब दश वर्षतक अपने यहां अधिवेशनकी आयोजन न कर सकें ! जब सम्मेलन का अधिवेशन ही खडाई में पड़ा हुआ था तो “ चारन ” के संचालन की योजना का विचार कैसे हो सका था !

आखिर संवत् १९९४ के चैत्र मास में जोधपुर में चौथा अधिवेशन हुआ। तब “ चारन ” के प्रकाशन का सबान सामने आया ही ! पहिले का तजरवा रूप भी इस कार्य के योग्य डा. किशोरसिंहजी जैसा अन्य कोई जाति में न था, फिर उन्होंने के सिपुर्द यह काम किया गया ! किन्तु अत्यंत खेद है, अपने बीमारी व खास कर प्रथम दिवस कारण से इस निश्चय के बाद छः मास तक वे एक अंक भी न निकाल सके और गत शत पौर्णिमा को सारी जाति को निराश्रय करके इस संसार से विदा हो गये ! ! !

उपरोक्त दुर्घटना से “ चारण ” के प्रकाशन की बात स्वभावतः सम्मेलन के पांचवें अधिवेशन पर जा पड़ी। पांचवां अधिवेशन गत ज्येष्ठ कृष्ण ७, ८, ९, को राजकोट (काठियावाड़) में हुआ और उस में तै पाया की “ चारण ” मासिक रूप में नहीं, त्रैमासिक रूपमें निकाला जाय और केवल हिन्दी में ही नहीं उसका कुछ भाग गुजराती का हो जिसका सम्पादन मुंदरा ( गुजरात ) निवासी गढ़वी श्री. खेतसिंहजी मिश्रण करें। और हिन्दी भागका सम्पादन इन पंक्तियों के लेखकों को सौंपा जाय, और सहकारी रहे और शुभकर्मजी एम. ए. एल. एल. बी. !

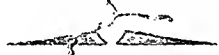
×                      ×                      ×                      ×                      ×

यह एक, अजीब सा निश्चय था कि जिस कार्य के लियें अपनी जाति के द्वितीय विद्वान को उपयुक्त समझा गया उसी कार्य के लिये साधारण सुक्षररा

व्यक्ति को योग्य मान लिया। और इस से भी अजीब यह बात मालूम हो सकती है कि इस निश्चय को स्वीकार कर लेने का साहस लेखकने कैसे कर लिया !

निश्चय ही लेखक के लिये यह साहस एक विडंबना होती, यदि वह अपने को इस कार्य के योग्य समझ कर उसे स्वीकार करता ! किन्तु बात पसी नहीं ! जैसे, किसी और को जब तक सम्मेलन का प्रधानमंत्रित्व स्वीकार न हुआ उसने, सम्मेलन के प्रारंभ से लेकर गत अधिवेशन तक अपना नाम उक्त पदके लिये देने में सम्मेलन की आज्ञा को मान दिया वैसे ही इस बार बहुत अनुनय विनय के साथ इस कार्य के लिये अपनी असमर्थता प्रकट करने पर भी जब सम्मेलन संचालकोंकी सर्वसम्मति यही आज्ञा रही तो लेखक को शिर झुका लेने के सिवाय और कोई मार्ग नजर नहीं आया !

इस वस्तुस्थिति में भी पाठक यदि आशा करेंगे कि उन्हें वैसे ही गवेयजा-पूर्ण लेख, मौलिक विवेचन, मार्मिक टिप्पणियाँ एवं काव्यफलापूर्ण कवितायें सम्राट् दक्षकी ओर से पढ़ने को मिलें जैसी कि उन ग्यारह अंकों में है तो उन्हें अवश्य ही निराशा का सामना करना पड़ेगा किन्तु यदि विद्वान् जाति हितैषियों ने सतत सहयोग दिया और श्री जगदम्बा की दया रही तो यथाशक्ति इस प्रयत्न में कोई कमी न की जायेगी कि "चारण" इपरोक्ष, प्रभाव के होतेहुए भी कुछ उपयोगी व मनोरंजक सिद्ध हो ! अपने इस चरण के प्रमाण में यह अंक ही पाठकों के सामने है !



## सम्मेलन का पांचवाँ अधिवेशन

अखिल भारतीय चारण सम्मेलन का पांचवाँ अधिवेशन निश्चित अर्वाधि पर गत ज्येष्ठ कृष्ण ७, ८ व ९ को राजकोट ( काठियावाड़ ) में बड़ी धूमधाम से करने में गुजराती बंधु सफल हुए, अध्यक्ष महोदय को रेलवे स्टेशन पर उन के साथियों सहित पुष्पहार पहिना कर राजकीय बग्घी में बिठला बाजे गाजे के साथ जुलूस बना कर उन्हें अपने निवासस्थान पर ले जाते, खुले अधिवेशन में आम लोगों का इतनी बड़ी तीदीद में प्रेमपूर्वक शामिल होना चारणोत्तर विद्वानों के चारण जातिहकी महत्ता एवं उपयोगिता पर कविता एवं भाषन होना और श्रीमान् राजकोट नरेश की ओरसे ही सम्मेलन में आने वाले प्रतिनिधियों के लिये भोजन आदि की सब व्यवस्था का होना, ऐसी बातें थी जो पहिले के अधिवेशनों से अद्वितीय थीं ! स्वागत समिति का प्रबंध भी सराहनीय था, और सराहनीय था स्वयंसेवकों का प्रेमपूर्ण सेवामात्र !

पूर्वकथित बातों में जैसे यह सम्मेलन अद्वितीय रहा वैसे और कुछ बातों में भी यह अद्वितीय ही रहा; जैसे—विषय निर्वाचनी समिति में किसी विषय का व्यवस्थित रूप से निर्णय न होना, जो प्रस्ताव पास हुए उनके बनाने एवं उनके महत्व की ओर उदासीनता, प्रांतीय कार्यकर्ताओं की प्रांतीय कार्यसंलग्नता के कारण सम्मेलन कार्य को गौणता प्राप्त हो जाना। इस अंतिम बात के लिये अधिकांश सम्मेलन प्रेमी बहुत उद्विग्न रहे थे। वे यह देख कर खिन्न से होते थे कि सम्मेलन के लिये एकत्रित लोगों से सम्मेलन के कार्यालय खर्च, प्रचारकार्य, व उसके मुखपत्र और रिपोर्ट छपवाने के लिये अत्यावश्यक धन-संग्रह के लिये तो लोगों से अपील करने का भी विरोध किया जाय और उन्हीं लोगों को प्रेरणा कर हजारों रुपये प्रांतीय कार्य के लिये इकट्ठे कर लिये जायें! किन्तु वातावरण को अशान्त न करने और परस्पर सहयोग में अडचन पैदा न होने देने के खयाल से उन्होंने ने अपने मन को समझा लिया कि उस प्रांत को जहां सम्मेलन हो रहा है, सम्मेलन के बहाने से कुछ लाभ होता है तो वह सम्मेलन को तो अभीष्ट ही होना चाहिये। परन्तु इसका अनिष्ट परिणाम यह हुआ कि आज सम्मेलन के पास राजकोट अधिवेशन की रिपोर्ट छपवाने लायक भी वैसे नहीं हैं, फिर और जरूरी कार्यों की तो बात ही कहाँ!

• ) —      ×      •      ×      ×      ×      ×      ×

प्रांतीय कार्यकर्ताओं की इसी मनोवृत्ति के कारण श्री चारण हितचर्दक-सभा जैसी जमी हुई प्रांतीय सभा होते हुए भी उन्हें सम्मेलन से संबंध बनाये रखने के लिये “बृहत्-गुजरात-चारण-सभा” का ढांचा खड़ा करना पड़ा। सम्मेलन कार्यकर्ताओं की समझ में अब तक न आया कि प्रांतीय कार्यकर्तागण चा. हि. सभा को ही सम्मेलन से संबंधित प्रांतीय सभा मान लेने में इतने क्यों चौंक पड़े थे! शायद वे भयभीत से थे कि हितचर्दक सभा के इकट्ठे किये हुए पैसों पर किसी सम्मेलन अपना अधिकार न कर ले। किन्तु इसका कारण? खैर। उन्होंने जो ठीक समझा किया और सम्मेलन ने भी उसे मान लिया। अब देखा चाहिये बृहत्-गुजरात-चारण-सभा सम्मेलन के अंगस्वरूप होकर वास्तव में कुछ करती है या एकठ की सभा मात्र सिद्ध होती है।

•      ×      ×      ×      ×      ×      +

अध्यक्ष महोदय का भाषण इतना प्रेरक व आकर्षक नहीं मालूम हुआ जितना देने की आशा थी। इसका कारण यह भी हो सकता है कि भाषण तैयार करने का समय बहुत कम मिला था। वाल्टर कृत कभेरी के संबंध में इतने विस्तार से कहा गया कि जिनका इस सचाल से निकटका संबंध था वे राजस्थानी में भी उकता गये थे।

सम्मेलन के अध्यक्ष का चुनाव या यों कहे कि पसंदगी प्रायः पैदा

पर हुआ करती है और पेसी हालत में अध्यक्ष जल्दी २ में जो कुछ उस समय सुझ पड़ता है लिख कर सुना देते हैं ।

x x x x x

स्वागताध्यक्ष का भाषण अति संक्षिप्त था और शायद रिवाज पूरा करने की दृष्टि से ही लिखा पढ़ा गया था. अतः उसमें किसी जातीय प्रश्न पर कुछ भी विवेचन सुनने को नहीं मिला ।

x x x x x

सम्मेलन में रूपापूर्वक सहयोग देनेवाले चारणेंतर प्रमुख सज्जनों में श्री राजकोट नरेश के अनुज श्रीमान् प्रद्युम्नसिंहजी महोदय, राजकोट नरेश के दीवान् दरवार सा. वीरावाला के सुपुत्र श्री. भोजवाला, श्रीमान् पंडित कृष्णकान्तजी मालवीय एम. एल. ए. सम्पादक "अम्युदय" (प्रयाग), श्रीमान् गंभीरसिंहजी साहिब ए. डी. सी. भावनगर नरेश, श्रीमान् डो. १ शंभूवल्लभजी नंदकेश्वरजी दवे एम. ए. पी. एच. डी. प्रिंसिपाल, धर्मेन्द्र कॉलेज (राजकोट), श्रीमान् शंकरचंदजी मेघाणी सम्पादक "कुल्लुबाव" एवं जन्मभूमि, कविश्वर श्री. पंडित त्रिभुवनचरण व्यास (राजकोट), "शारदा" संपादक श्रीमान् गोकुलदासजी रायचुरा एवं सुरत के संगीत मास्टर श्री. वसन्त के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

x x x x x

श्री. पं. मालवीयजी का भाषण चारण जाति को राष्ट्रीय सन्देश के रूप में इतना स्पष्ट और उग्र था कि राजस्थानी प्रतिनिधि कहते सुने गये कि एक तो यह भी रियासत है जहां इस प्रकारका भाषण दिना किसी विघ्नवाधा के हो रहा है और एक हमारी तरफकी रियासतें हैं जहां अधिकारी, साधारण से साधारण सार्वजनिक हलचल को शंका और भय की दृष्टि से देखते हैं और उसे दबाने में ही राज्यका हित समझते हैं ।

x x x x x

" प्रिंसिपाल दवे साहिबने प्रतिदिन अधिवेशन के पूरे समय तक अपनी उपस्थिति से सम्मेलन की शोभाबृद्धि की और दो दिन विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान देने की भी रूपा की । एक दिन चारण जाति की प्राचीनता बतानेवाला व्याख्यान था और दूसरे दिन के व्याख्यान में चारण जाति को ब्राह्मण जाति के समकक्ष सिद्ध कर दोनों जातियों की कर्तव्य समता के साथ उनके कार्यक्षेत्र भिन्न २ होनेका विवेचन बड़े विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया था । आपने बतलाया था कि ब्राह्मण सर्वोपरि वर्ण है, और उसका एक कर्म दान लेना भी माना गया है । यदि दान लेना नीच कर्म होता तो ब्राह्मण का यह कर्म कर्म न माना जाता । बात यह है कि किसीकी प्रशंसा इस भावना से करके कि थोड़ा कुछ दे या दान देने के लिये किसी को प्रोत्साहित करके उस से कुछ लेना अधमता है और यह वृत्ति त्याज्य है किन्तु किसी के गुणों पर मुग्ध हो कर अथवा किसी के हितकर वा उपकारी

कार्य के उपलक्ष्य में कृतज्ञता भाव से यदि कोई श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक सादर कुछ दे तो वह तो दान लेने वाले के गौरव हो के अधिक सूचित करता है। ब्राह्मण एवं चारण ऐसे दान के पात्र होते थे।" आगे चलकर आपने कहा था कि— अच्छी बात है चारण भी वकील बैरिस्टर बन रहे हैं, डॉक्टर व माजिस्ट्रेट बन रहे हैं, किन्तु इस के साथ ही मैं उन लोगों से प्रार्थना करूँगा कि ये सब बनने के साथ आप अपने चारणपन को न खो दें। डॉक्टर आप हों, लेकिन चारण भी बने रहें। आप मेजिस्ट्रेट या वकील बैरिस्टर हों या समय के प्रवाह के साथ आप भी औरों की तरह और सब कुछ हों परन्तु चारण तो आप रहें ही। समाज को आपकी जरूरत आ पड़ी है—यदि आप उसे पूरी कर सकें। कितनी भावपूर्ण, प्रेमपूर्ण सम्मति है यह ! क्या यह आशा करना अधिक होगा कि जिनके लिये ये शब्द हैं वे उनके मर्म को समझ तदनुसार अपना जीवन बनायेंगे ?

x                      x                      x                      x                      x

श्री. गोकुलदासजी रायचुरा संपादक "शारदा" (गुजराती) का चारण जाति-प्रेम उनके व्यवहार से प्रति पल प्रकट होता था। वे यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए प्रतीत होते थे कि चारण जाति में भी कुछ प्रगुपट हैं, वकील हैं, और मेजिस्ट्रेट भी हैं। उन्होंने अपनी पत्रिका में प्रकाशित करने के लिये वहां उपस्थित प्रगुपटों का फोटो भी लिवाया था।

x                      x                      x                      x                      x

और श्री. मेघाणीजी का व्यक्तित्व और व्याख्यान ? श्री मेघाणी नाटे फटके, मुँहवाले ढाँचे के मेघाणी अपनी खदर का पोशाक में किसी शहरी की अपेक्षा ग्रामीण ही अधिक जंचते हैं। पहली मुलाकात में उन्हें देखते ही शायद ही कोई माँप सके कि इस व्यक्ति में इतनी प्रतिभा और इतना जोश होगा ! उन्होंने जब अपना व्याख्यान शुरू किया तो बड़ी धीमी आवाज से। परन्तु वह बड़ी और इतनी बड़ी कि मानो किसी शेर की गर्जना हो रही है। मेघाणी का व्याख्यान क्या था स्वयं एक काव्य था। उनकी वह धाराप्रवाही भाषण शैली भावानुरूप कभी मंद और कभी तीव्र और बीच २ में चारण कवियों की प्राचीन कविता—श्रोतास्विनियों का सहयोग प्राप्त करती हुई एक प्रबल सरिता वेग के समान थी जिस में वहकर श्रोतागण वेसुध से हो जाते थे। और कभी कभी तो वक्ता स्वयं ही भावावेश में वेसुध हो जाते थे मालूम होते थे। यही तो कारण था कि जिस समय वीररस का वर्णन होता श्रोता जोश में आते और करुणरस के वर्णन से उन के हृदय द्रवित होने लगते थे। चारण जाति के प्रति मेघाणीजी की श्रद्धा, उनका प्रेम और इस जाति के उत्कर्ष के लिये उनकी अभिलाषा तो शब्दोंद्वारा प्रकट करने की वस्तु नहीं। उन्होंने भाषण के प्रारंभ में ही कह दिया था कि काव्य का रस तो मेरे रक्त में घुलामिल गया है। इसी से मेघाणीजी जब डिगल कविता बोलते तो यह नहीं मालूम होता था कि कोई चारणेतर बोल

रहा हो। मेवाणीजी गुजराती के ख्यातनामा येजोड राष्ट्रीय कवि और यशस्वी पत्र-संपादक हैं। उन्होंने जब अपनी "लाडकवाया" नामकी कविता सुनाई तो श्रोता-मंत्रमुग्ध से हो गये थे।

x                      x                      x                      x                      x

पं. व्यासजीने बड़े ही प्रेम से तीनों दिन सम्मेलन में सहयोग दिया था। प्रथम दिन उन्होंने "धन्य हो धन्य सौराष्ट्र धरणी" नामक अपनी मनेाहर कविता सुनाई थी। दूसरे दिन "ऊठ चारण ऊठ तहारी ऊंवरने अलगी करी" नामक कविता मधुर वाणी से सुना कर चारण समुदाय को प्रोत्साहित करने के साथ ही आभारी बना दिया था। इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित इस कविता को पढ़कर पाठक देखें कि चारण जाति के प्रति इस ब्राह्मण हृदय का कितना विशुद्ध प्रेम है। अधिवेशन के अंतिम दिन सुनाई हुई "वनवासी पोपटजी तमने बंधन केम गमे" कविता भी बड़ी भावपूर्ण और उद्बोधक थी।

x                      x                      x                      x                      x

उपरोक्त महानुभावों के अतिरिक्त पूर्व-कथित क्षत्रिय महानुभावों के पट्टाभूषण से सम्मेलनकी बहुत शोभावृद्धि हुई थी। यथा ही अच्छा होता ये सज्जन भी चारण जाति के प्रति अपने मनोभावों का शाब्दिक परिचय भी उपस्थित जनता के सामने प्रदान करते। उन के मौनबलेशन से इस अवसर पर गोहिल कुलभूषण मेजर जोरावरसिंहजी साहिब (भावनगर) को अनुपस्थिति कष्टों का बहुत खटक़ी थी।

x                      x                      x                      x                      x

इस सब वर्णन के साथ राजकोट की प्रगतिशील जनता के सम्मेलन-सहयोग का जिक्र न करना अनुचित होगा। सम्मेलन के दिनें में ही राजकोट में थी. पं. कृष्णकान्तजी मालवीय की अध्यक्षता में आर्यभाषा सम्मेलन हो रहा था। लेखक एक दिन कुछ समय के लिये उसमें जा सका था। अतएव कहा जा सकता है कि उक्त सार्वजनिक सम्मेलन से भी बहुत अधिक उपस्थिति से राजकोट के नरनारीशों ने चारण सम्मेलन में सहयोग दे कर चारण जाति के प्रति अपने प्रेम का परिचय दिया था। हो सकता है इस के लिये प्रेरक कारण "मेवाणी" य "काग" के व्यक्तित्व ही प्रधान हों।

x                      x                      x                      x                      x

सम्मेलन के अंतिम दिन सूरत के प्रसिद्ध संगीत-मास्टर श्री वसन्त ने अपने शुभागमन द्वारा सम्मेलन में गायनवादन की जो कमी थी उसे दूर कर अपनी हार्मोनियम ब्रजानि की कम्पायलित के साथ राष्ट्रीय गायनों से रस बरसा दिया था।

x                      x                      x                      x                      x

उपरोक्त चारणोत्तर महानुभावों के अतिरिक्त सम्मेलन में कुछ सजातीय भी ऐसे थे जो विशेष उल्लेखनीय हैं। भावनगर राज्य के मजादर ग्राम निवासी

भक्तकवि श्री दुलाभाई भायाभाई काग का नाम इन में सर्व प्रथम आता है । काग जन्म जात कवि हैं और इस अंग्रेजी कथन को सत्य सिद्ध करते हैं—Poets are born not made (कवि पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते) । चालीस वर्ष से भी कम आयुका यह स्वाभाविक कवि अपने सतेज नेत्र व काली जटा दाढ़ी वाली मांजल मुखमुद्रा का प्रभाव दर्शक के हृदय पर यकायक डालती है और जिस समय उस मुख में से वाणी की सुधाधारा बहती है तो चारों ओर जीवन और आनन्दओतप्रोत हो जाता है । कविवर काग ने कहने लायक कोई शिक्षा प्राप्त नहीं की है अतः कोई पुस्तकी विद्वान् चाहे तो उनकी कविता को काव्य एवं साहित्य के सूक्ष्म नियमों द्वारा कुछ वृद्धिपूर्ण भी शायद करार दे सके । किन्तु इस भक्तकवि के भावपूर्ण शब्दों में वह जादू है कि इसके लिये वह समय ही नहीं देता और कागवाणी को सुनने वालों के मुख से एकबार तो वाह २ ही निकलवा देता है । और यदि पेसा नहीं होता है, तो उन्हीं प्राचीन शब्दों में कह देना पड़ेगा—स योगी हाऽथवा पशुः ।

जिन चारणों ने समयानुकूल साहित्य रचना का प्रयत्न किया है या जो पेसा करना चाहते हैं उन लोगों की श्रेणी में श्री कागका नाम सर्वोपरि रहेगा ! जो कोई काग रचित “रुष्ण प्रेरित कागवाणी” पुस्तक पढ़ेगा या उसके बाद रची हुई उनकी कविता ये सुनेगा वह इस कथन को सच माने बिना न रहेगा । श्री काग की काव्यकृति बतलाती है कि चारणो ! यदि तुम्हें प्रकृत कवि होने का अभिमान है या तुम्हें कविता करने का शौक ही है, तो ऐसी कविता करो जिस से मानव सुसुदाय का, अपने देश व समाज का या उस क्षत्रिय जाति का ही, जिसे तुम अपनी चिरसंगीनी मानते हो उसका, कुछ सच्चा हितसाधन हो सके अथवा तुम्हारा ही अभ्रमकल्याण हो ।

क्या ही अच्छा हो कविवर काग अपने राष्ट्रभाषा (हिन्दी) के अभ्यास को कुछ बढ़ाने और उसके द्वारा अपनी मातृभाषा (गुजराती) में की हुई कविता का लाभ अन्य भाषाभाषी लोगों को पहुँचाने में भी समर्थ हों ।

x                      x                      x                      x                      x

सम्मेलन में काग की कविता को उन्हीं के ढंग से सफलतापूर्वक सुनने वाले श्री मेरुभाई लीला के पूज्य पिता वयोवृद्ध श्री मेघाणंदभाई भी उपस्थित थे जिनकी सत्सर्वा चर्यागांठ पर श्री माननीय कन्हैयालाल मुन्शी (गृह सचिव बम्बई गवर्मेन्ट) प्रमुख बम्बई के प्रसिद्ध साहित्यिकों—ने बड़ा सत्कार किया था । खेद है, वे उन दिनों रुगा थे अतः सम्मेलन में कुछ सुना न सके । किन्तु इस कमी को उनके सुपुत्र ने मालूम नहि होने दिया । मेरुभाई की शैली—कविता बोलनेकी और विवेचन की, इतनी मधुर व आकर्षक है कि अफ्रीका प्रयासी गुजराती भाइयों ने उन्हें अफ्रीका में बुलाया जहाँ दो तीन महीने रह कर कई सभाओं में अपने व्याख्यानो से लोगों को आनन्दित व प्रोत्साहित किया था !



उपरिर्केयित दोनों सज्जनों के अलावा जिन लोगों ने काठियावाड़ गुजरात के चारण समाज में समाज सुधार की कुछ भावना और विद्याकी तरफ अभिरुचि उत्पन्न करने का सफल प्रयत्न किया है उनमें से जो लोग सम्मेलन में सम्मिलित हुए उनमें श्री. शंकरदानजी देवा राज्यकवि, लीं वडो, श्री. ठारणभाई महडू राज्यकवि बला, श्री. रामदानजी टापरिया राज्यकवि मूली, श्री. पिंगलशी पायक बी. ए. एल. एल. बी., श्री. खेतसिंहजी मिश्रण मूढेरा, श्री. हरदाभाई नरेला राज्यकवि भावनगर एवं श्री जीवणलालजी घरसडा भादरवा, आदि सज्जनों ने सम्मेलन को सफल बनानेमें भरसक कोशिश की थी और उसकी कार्यवाही में सानुराग भाग लिया था।

श्री. शंकरदानजी का जातिप्रेम एवं सेवाभाव तो यहाँ तक है कि उनके सामने जाति हितके किसी खर्च का सवाल आता है तो जहाँ तक उनसे हो सकता है वे खुद उसे हल कर देना चाहते हैं। इसका प्रत्यक्ष परिचय तब हुआ जब सम्मेलन के मुख्यपत्र का गुदाई का पत्र सामने आया। पैसे का सवाल सामने आते ही जब सब चुपसे थे, तब यही उदारचेता थे जिन्होंने इस त्रैमासिक के छपवानेका भार अपने सिर सड़प लिया था, और यह बात किय कि पत्रका वार्षिक आय से यदि खर्चकी पूर्ति न हुई तो एक सौ रुपये तक तो स्वयं भर देंगे।

x x x x x

सौराष्ट्री बंधुओं की उदारता, एवं पारस्परिक प्रीति जहाँ प्रत्यक्ष थी, सम्मेलनमें उनका हुक्काप्रेम भी उतना ही प्रकट था। कैसा ही महत्त्वपूर्ण विषय क्यों न चल रहा हो, कैसा ही प्रभावशाली व्याख्यान क्यों न हो रहा हो, कैसी ही मार्मिक कविता क्यों न सुनाई जा रही हो, खडकी लंबी नलीवाले चांदी मेंडे हुए हुफकेकी गुड २ और उसका छुआ तो बंद होने की चीज न थी। इस तरह सुधारक सभामें व्यसन का प्रदर्शन यही सूचित करता है कि गुजराती बंधुओंमें इस तरह हुक्का पीना अब भी शायद प्रतिष्ठा की बात समझी जाती है। उनके इस व्यवहार से लेखक को अपने प्रपितामह सूरतरामजीका हुक्काप्रेम याद आ गया था संयोगवश वे भी काठियावाड़ में बहुत रहे थे और प्रसिद्ध ग्रंथ "प्रवीनसागर" वे रचयिताओं में से, एक थे। जब वे मेराड में वापस आये तो उनकी विद्वत्ता का प्रशंसा सुनकर तत्कालीन श्री. महाराणा साहिबने उन्हें अपने पास बुलवाना चाहा। किन्तु हुक्केको दरवार में स्थान मिलनेका सवाल आने पर उन्होंने कह दिया कि काठियावाड़ के बड़े २ राजा महाराजा मुझे अपने हाथों से हुक्का पिलाते हैं और यहाँ यह खयाल है तो मुझे दरवार में जाना मंजूर नहीं। लेकिन अब यह जमोना गया। हुक्का प्रेमीयों के समक्षता चाहिये कि सम्मेलन का से का

विचार है, क्रमशः इन विषयोंपर लिखा जाय, यथा:— (१) सार्वजनिक भावना (२) राजाका व्यक्तित्व. (३) राजा और वृ. गवर्नमेन्ट. (४) शासन. (५) राजाओंका पारस्परिक संबंध. (६) राजा और ब्रिटिशभारत. (७) राजा और सरदार व माफीदार (८) राजा और प्रजा. (९) सरदार और प्रजा. (१०) हिन्दु मुसलमान. (११) राजपूत और चारणजाति ।

### सार्वजनिक भावना.

मनुष्य विश्वासका दास है: 'शेयच्छ्रद्धं स एवसः' [गीता]। जो जैसा विश्वास करता है वइ वैसाही बन जाता है. जो सिद्धांत व्यक्तिके लिये है वही समाजके लिये है, क्योंकि व्यक्तियोंकी समाष्टका नामही समाज है। जब कोई व्यक्ति या समाज या देश परिस्थितियोंके बश अपने आपको निर्बल पराधिन और अनधिकारी मानलेता है तो फिर उस दलदलसे दूसरा कोई उसका उद्धार नहीं कर सकता, यदि कदाचि कुछ महान शक्ति उसे ऊंचे आसन पर बठाभी दे तबभी वह वहां ठहर नहीं सकता। जब कोई प्रतिभाशाली, विभूतिस्मय व्यक्ति प्रादुर्भूत होता है। (यश यदाहि धर्मस्य लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्-गीता) वह महान विभूति, शक्ति-कांक्षिकारिके रूपमें कभी रूप, बुद्ध, अरस्तु, प्लेटो, कान्फ्यूशस, ईसा, जर्थोस्त, मुहम्मद आदि अनेक नामोंसे और फिर दयानंद, मेजिनी, तिलक, सुनूपाखेन, लेनिन आदि रूपमें आई और महात्मा गांधीके रूपमें इस समयभी जिंदा और लेखनीसे मानवजातिके हृदयको हिला रही है। वह अदृश्य शक्ति कहां कब और किन नामरूपोंमें आचुकी और आवेगी कौन गिना सकता है "कालोद्धारं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी" ऐसाही असाधारण व्यक्ति जब देशकालानुसार अग्रपूजा लेनेके योग्य आगे बढ़ता है. रुढ़ अंधकारके भेदकर नवीन आ लोक बताता है तो समाज हिचकते हिचकते उसका अनुगमन करने लगता है और सफलताकी प्रतीतियां उस नेताके आदर्शके आसनपर बैठा देती हैं। जब वह अपने सिद्धांत और कार्यके समाज धारणकी सद्युद्दिष्टेही सदा ईश्वरीय आदेश अथवा प्राकृतिक नियमके नामसे पुष्ट कर देता है तो वह जनताके लिये राजपथ बनादेता है। फिर जब उसी सिद्धांत और कार्यके पोषणमें वैसेही या उसी सिद्धांतके अनुयायियोंका समय समयपर पुनरावर्तन होता रहता है। और वे विविधशास्त्र, इतिहास, कथानक आदिसे जनभावनाके परिपोषित करते रहते हैं तो समाज उन भावनाओंमें रंगजाता है, इतनाही नहीं किंतु अपनी भावी पीढ़ियोंके लिये उस रंगकी आनुवंशिक धारा बहादेता है। वह श्रद्धा विश्वास का प्रवाह फिर सृज वढ़लनेका नहीं; क्योंकि "गतानुगतिके लोको न लोकः परमार्थिकः" मेडिटेशन धसानही सामान्य समाजका स्वभाव है। उपरोक्त अटल सिद्धांत धार्मिक, सांसारिक, आर्थिक, और राजनैतिक प्रत्येक क्षेत्रमें अच्छी या बुरी किसीभी दशमें अपना कार्य करता रहता है। उत्थान और पतनके विच्छेद कितारोंका भी एकही मूल है यह "विश्वास"

यह सब होते हुए भी प्रकृति संसारका चक्र कभी स्थिर नहीं रहता, यह सत्य है कि वह इतना धीरे अपना कार्य करता है कि उसकी गति सहजमें नहीं जानी जाती। विश्वासपर बिपके रहनेवाले मानव स्वभावकोभी “वायुर्नाथ मिवाग्भसि” जलमें स्थिर पड़ी हुई नावको वायु धीरे धीरे कहींकी कहीं लेजाता है के अनुसार यद्यपि प्रतिष्ठ होता है कि हम अपने स्थान परही हैं, परंतु देशकालकी नवीन टकराव सचेत करता है तब भान होता है कि हम कहाँ और कहाँ आगये। इसीका नाम है सहज क्रांति। संसारमें कोई कार्य सहसा नहीं होता। इस क्रांति परिवर्तनकी अमोघ गति संसारमें कारणरूपसे, कुछ आगे पीछे, किंतु समानभावमें चलतीही रहती है। प्रत्येक क्रांतिके बीज अलक्ष्यरूपसे लक्ष्यमेंही पोषण पाते रहते हैं और विपाक अवस्थामें, तीव्र कर्मानुष्ठानमें अवतरित होकर परिणामके सुख दुःखमें प्रतिफलित होता है।

एक वह समयथा जब जनताके हृदयमें यह रूढ़ भावना जमी हुईथी कि “नराणां च नराधिपः” राजा ईश्वरहीका रूप है, राजा मार सकता है, तार सकता है। राजाका अधिकार अबाध और असीम है। पृथ्वी राजाकी है; इसपर, हमारा रहना, इससे कमाखाना और जीना, केवल राजाकी कृपासे हैं राजाके हितमें मर मिटना अपने लिये स्वर्गका द्वार खोलना है। यदि एकांतमेंभी कोई राजाके कर्म पर कटु आलोचना करता तो विद्वान और मूर्ख सबहीके समानरूपसे इतना अखरता कि बकाको फटकार देनेकी शक्ति न होती तो स्वयं वहाँसे उठजाते। यह भी नहीं कि उस समय राजाके लोभ, व्यभिचार, क्रूरता, कृतघ्नताके दोष प्रजाके सामनेन आतेहैं। किंतु, लोग जानकरभी यही कहते कि राम राम अच्छा अच्छा राजा होकर ऐसा क्यों करते हैं। फिरभी, अपवाद छोड़कर, विद्रोह भावना तो नहीं ही उठती, यदि कोई किसी को यह कह देता कि ऐसा किया या ऐसा न किया तो तुझे दरबार (यद्यपि दरबार शब्द राजाके सभाभवनका वाचक है परंतु राजपूतानामें स्वयं राजाकोही दरबार कहनेकी रूढ़ी है) को आण-सपथ-हूँ या दुहाई है, मजाल नहीं कि कोई उस आणका उल्लंघन कर सके। परंपरागत संस्कारोंसे राजाकी महत्ता और राजभक्ति बाल्यकालहीसे लोगोंके हृदयमें जड़ जमाये हुएथी। इसके लिये न किसी स्कूलकी आवश्यकता थी न किसी प्रोपेगेंडाको, जनतामें इसी प्रकारकी ईश्वरदत्त राजसत्ताकी भावनासे एक विचित्र राजभक्तिका शून्य प्रवाह बहा जा रहाथा और वही प्रवाह इन राजाओं और राज्योंके अस्तित्वमें फौलादी बुनियाद रहा है।

रूढ़ीप्रदत्त इस राजभक्तिकी भावनाको एक सामान्य उदाहरणसे जान सकते हैं। प्रायः ६० वर्षकी-मेरे बचपनकी स्मृतिकी बात है। जब जब राजाकी सवारी निकलनेका दिन होता तो दूर देहातों तक जनतामें राजदर्शनकी उन्मत्त इच्छा लहरास जाती (जैसाकि इस समय महात्मा गांधीजी और राष्ट्रपतिके लिये होता है) सवारी के समय प्रत्येक घर खाली होकर राजपथ उस जाता! ज्योंही हाथी घोड़ा या

खासा महायानमें सवार होकर राजा सामनेसे गुजरते तो उस समय आवाज वृद्ध नरनारीके हृदयमें अकृत्रिम राजभक्तिका ओत उमड़ पड़ता। वस्त्रोंको गोदीमें लेकर जानेवाले, अपने प्यारे वस्त्रोंको जमीन पर उतार कर आप जमीनतक झुक कर प्रणाम करते और वस्त्रोंसेभी बैसाही कराते, देखा है, भीड़के कारण राज पथ तक न पहुंचने वाली स्त्रियां, दूर गलियोंमें खड़ी खड़ी, ज्योंही छत्र चमर देखतीं वड़ी भक्तिसे बलियां लेतीं, मालिकानो चिरायुके लिये विविध प्रार्थना श्वरसे करतीं।

किंतु समयने करघट बदली, प्रजापर अपने वैभवप्रदर्शनसे आतंक और आकर्षण स्थापन करनेवाली जलूसकी ये सवारियां तो आज भी होती हैं। पलटन, रिस्टाले, बेंड आदि साधन बढ़कर चटक मटक भी पहिलेसे कुछ अधिक ही हुए हैं; परन्तु वह बात नहीं, लोग अबभी देखने तो जाते हैं, किंतु कौतूहल उसीढंगका है जो एक तमाशा देखनेमें होता है सवारीमें चलने वाले उमरावों सरदारों आदिके निस्तेज चहरे, मुद्राये दिल, स्वांगसी पोशाक और घोड़ेकी मुस्ती स्वतःसिद्ध करती है की ये वेगारमें पकड़े हुये हैं, बोझा ढेर रहे है। मुसलमानोंकी ताजिया जलूसमें फिरभी शोकात्सवकी झलक आजाती है, उतनीभी अब राजाओंकी सवारीमें नहीं, समझदार लोगतो इन तमाशावीनोंके जमघटमें जानाभी पसंद नहीं करते। अभी कुछ अरसे पहिले ऐसीही सवारी (जलूस) में शरीक न होने पर एक बड़े राज्यके चीफ जस्टीसने उस राज्यके एक उमरावके सामने प्रसंगवश कहाथा कि लोग तमाशा देखने जाते हैं और हम अपनेको तमाशा नहीं बनाने चाहते आदि। यही सोचकर जेधपुरके भूतपूर्व मुसादिव आला म. रा. सर प्रतापसिंहजीने जेधपुरमें सवारियोंका किकालनाही बंद कर दिया किंतु लोगोंके विचारसे ये घाटे में ही रहे, क्योंकि इन तमाशोंकी असलियत समझनेवालोंकी संख्या अबभी सामान्य बुद्धिकी जनतामें कमही है, प्रभाव न सही, फिरभी, राष्ट्रीय उत्सवोंमें राजा प्रजाके सहयोग जन्म आमोदकी लहर किसी अंशमें एक दुसरेको आत्मीयभावके निकट पहुंचाती ही है जो कि राजपक्षके लिये भी स्पृहणीय है और प्रजा भी अपने राष्ट्रीय उत्सवोंमें जीवन समझती है!

पहिले यह धारणा सर्वत्र ही काम कर रहीथी कि राजाके बिना राज्यका रहना और मानव समाजका शांति पूर्वक चलना असंभवहो है; शरीरमें प्राणों के समान ही देशके लिये राजाकी आवश्यकता है। पृथ्वीके प्रायः समस्त भाग कुछ रूपांतरसे कभी इसी भावनाके लीला क्षेत्रये। किंतु परिचर्तनशील प्रकृतिने पुराने पाठोंके पन्ने बदल दिये और सिखाया कि राजाकी आवश्यकता नहीं। प्रजा जनता स्वयं अपने उपर राज्य कर सकती है। लोकतन्त्र ही पूर्ण शक्ति सुख और शान्तिका निकेतन है। यदि जनता अपनी इच्छासे किसीको अपना राजामी रखे तो वह स्वच्छन्द मालिकहोकर नहीं, किंतु प्रजाकृत नियमोंके आधीन प्रतिष्ठित सेवकके नाते रह सकता है। समता, तन्त्र्यता और कथुल प्रत्येक मनुष्यका जन्मसिद्ध अधिकार है, आदि। इस, नूतन

लहरके सात समुद्रभी न रोक सके, उससे भारतभी अछुता न रहा। संयोगोंनेभी प्रकृतिका साथ दिया। इस इण्डिया कंपनी-वन्द विलायती व्यापारियोंके गुट-ने शासन चलाकर ब्रिटिश भारतीय जनताकी उस पुराने पाठकी धारणाके तोड़ बहाइ। किंतु राजपूताने की प्रजा लोकतंत्रके स्पष्ट वातावरणसे दूर थी। आज कलके शब्दोंमें राजपूतानेका वह अंधेरा युग राजाओंके लिये गनीमत था।

जिस लहरके सामने हजारों कोसकी दूरीभी तुच्छथी वह पड़ोसमें या यों कहे, हमारे घरके द्वारपर आकर कुंठित कैसे होती। फिरभी बृरीश भारत और राजस्थानमें अन्तर बनाही रहा है और वह है राजा और प्रजाका सान्निध्य और तजन्म आत्मीयभाव-अपनापन-के संस्कारोंका अस्तित्व, इतना सच है कि लोगोंके हृदयमें घुसकर द्रँडालने पर वह धर्मसम्पुट राजभक्ति तो अब शायदही कहीं मिलेगी, जवानी जमाखर्च दूसरी बात है।

प्रेम और प्रभाव, ये दो भाव शिला ये राज सत्ताकी बुनियादमें प्रधान हैं। उनमेंसे प्रेम तो राजा और प्रजाके स्वार्थमें सबसे एकता मिट्टी तभीसे गया, "प्रभाव" भी गया। उधर ब्रिटिश भारतसे भी गया, इधर देशी राज्योंसे भी गया, ब्रिटिश भारतसे जानेका कारण हैं, समय समय पर कियेगये असत्य वादोंका घटस्फोट असत्य सदा निर्वलताका प्रतीक होताही है-एवं साम्राज्य शाहीका, अपनी निःशस्त्र तथापि अहिंसा और सत्यके बलसे बलीमान प्रजापर घोर दमनका नाच बत्ताकर थक बैठना और अन्तराष्ट्रीय घटनाओंमें द्यू नीतिपर विवश होना। इधर देशी राज्योंमें कारण हुआ, स्वराज्यकी भावनाका अखंड भारतमें समान रूपसे फैलते जानेके अतिरिक्त, अनेक राजा महाराज साम्राज्य सत्ताके द्वारा-नीकरशाहीकी इच्छा पर-राज्यव्युत्त, अधिकार व्युत्त करा दिये जाते और अंग्रेज अधिकारियोंके आनेपर उन्हें रिझानेके लिये की जानेवाली दौड़धूपके प्रत्यक्ष देखनेसे प्रजाके हृदयमें प्रथम कल्पित राजाओंका वह स्वतंत्र एवं समर्थ रूप न रहना इसके लिये राजालोग सिर्फ उतनेही दोषी है जितनाकि घुड़दौड़की शिकार (Pig sticking) में सूअरके अपनी रक्षाके नीचे घुसनेका मोका देकर स्वयं माराजाने वाला शिकारी सवार। फिरभी यदि राजगण देश कालानुसार दूरदर्शितासे प्रेम सहित अपनी प्रजाके साथ जनहित मूलक सत्य व्यवहार करें तो राज्योंका जीवन बढ़नेकी आशा रखी जा सकती है! अभी तक उन्होंने अपनी प्रजाके विश्वास और आत्मीय भावनाके सर्वथा खो नही दिया है! कोटाके वर्तमान महाराज उम्मेद सिंहजी एवं ऐसेही कुछ अन्य नरेश इस क्षण तक इसके प्रमाण हैं!

## चारण-वाणी

चारणों की स्फुट कविता अधिकांश व्यक्तिगत हो सुनने में आती है। यहाँ क्यों, जिस काल की चारण-कविता प्राप्त होती है उस काल की अधिकांश अन्य जातीय कविता भी कदाचित् व्यक्तिगत ही मिलेगी। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि चारणोंने अन्य विषयों पर कविता की ही नहीं। और जो व्यक्तिगत कविता की गई है, वह भी प्रायः वीर और वश्या व्यक्ति के लिये ही की गई है जिस के श्रवण या पाठ से लोगों के चित्तमें इन मानवोचित दो गुणों के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होती है। आज भी महात्मा गांधी एवं धीराग्रणी जवाहरलालजी आदि लोक नायकों की व्यक्तिगत कविता कर के कई चारणेंतर कुदाल काव्यलेखक अपनी प्रतिभा का परिचय देते हैं और इससे जन समुदायका हित ही साधन होता है। यह सब होते हुए भी आजकल शिक्षित जनता किसी व्यक्ति का प्रयोगान सुनने या पढ़ने की अपेक्षा किसी स्वतंत्र विषय पर की गई कविता को अधिक उचित से पढ़ती या सुनती है। अतः हमारा विचार है कि "चारण" में "चारण-वाणी" नामक एक स्तम्भ रहे जिसमें चारणों की वे अच्छी कविताएँ जो व्यक्तिगत नहीं हैं, छपीं रहें। इस प्रकार चारणों की ऐसी कविता का एक अच्छा संग्रह हो जाने की आशा है। जब ऐसी कविता इस प्रकार पर्याप्त उपलब्ध हो जायगी तो उसे पुस्तक रूप में छपाया जा सकेगा जिस से लोक रंजन लोकहित के साथ ही उन कवियों की स्मृति भी सुरक्षित हो जायगी। किन्तु यह तभी संभव है जब वे सब सज्जन जिनके पास कुछ कविता संग्रह हो उसे टूटोले और उसमें से टूट २ कर ऐसी कविता स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजने का कष्ट स्वीकार करें। आशा है हमारा यह विचार सबको पसंद आवेगा और आगामी अंक के लिये ऐसी कविता की हमें कमी न रहेगी। साथ ही हम यह भी चाहते हैं कि कविता के साथ ही कविका नाम शाखा व गाँव तथा हो सके तो कुछ जीवन वृत्तांत भी भेज देने की कृपा की जाय।

इसी अंक से कुछ ऐसी कविता जो कदाचित् कहीं छपी नहीं है उस से हम "चारण-वाणी" का प्रारंभ करते हैं।

### ओपाजी आढाकी कविता

ओपाजी आढा की कविता जितनी सरल है उतनी ही प्रासादिक एवं भाव-पूर्ण है। प्रायः इनकी कविता पारलौकिक ही सुनने में आती है। किन्तु कुछ छन्द और "त्याग" लेने वालों के मीठी चुस्की लेता हुआ एक उपदेश प्रद "गीत" भी सुना है, इस से अनुमान होता है कि उन्होंने कुछ सामायिक काव्य

रचना भी की होगी । अतः जिन सज्जनों के पास ओपाजी की बनाई हुई जो भी कविता हो वे कृपा कर भेज दें । हमारे पास उनके केवल दस-बीस “गीत” हैं । किन्तु उनकी कुछ ‘तुकों’ या शब्दों के अर्थ ठीक २ समझ में नहीं आते इसलिये जिनके पास “गीत” ही हों वे गीत भी स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेज दें ताकि कहीं पाठभेद से भी अर्थ की स्पष्टता संभव हो । अन्यत्र प्रकाशित तीन “गीतों” में भी पहले गीत के तीसरे ‘देहे’ के प्रथम दो चरण, चौथे ‘देहे’ का अंतिम चरण, पांचवें का दूसरा व तीसरा चरण और आठवें “देहे” का प्रथम चरण, संदिग्ध अर्थ का है, अतः डिंगल के जानकार महानुभाव या इन चरणों को शुद्ध जानने वाले सज्जन इन चरणों के अर्थ को या आगे भी ऐसे संदिग्ध अर्थ को स्पष्ट कर देने अथवा अशुद्ध को शुद्ध कर भेजने की कृपा करेंगे तो उनका आभार माना जायगा ।

ओपाजी के वंशज या और कोई सरदार ओपाजी का जीवन वृत्तांत उनके जन्म एवं स्वर्गवास की श्रृंगारिक तिथियों सहित सविस्तर लिख भेजेंगे तो बड़ी कृपा होगी ।



## चारण-वाणी

परम हार्मिक स्व. श्री. ओपाजी आढा (पेशुचा-सिराही) कृत—  
गीत

१

तुलम देह पाई भमे भाइके घणा दिन, हर समर हर समर मैं फर हूँ ।

कष्ट रा मूल अन्तर तणा काळिया, भाळिया तिके दिन कई भूँतो ॥ १ ॥

वसैं भ्रमवास दस मास ऊंघे वदन, भेटतो दने मळ-मूत्र भेळा ।

अवरके नीसहं तरे कहतोइ यूँ, वीसहं नहीं हर नमख घेळा ॥ २ ॥

जां नरां पाळिया संकट विखमी जिके, मनख रा पामिया जनम मोठा ।

नीत रा शबरका, याद आवे नहीं, दूधरा टबरका नीठ दीठा ॥ ३ ॥

पांतरे गये दुंख, खीर पीयां पहल, हां करै हमें तू धान हळियो ।

पांखियो दूध, रोटा करै पछाई, मनख थो खोर जिम लाभ माळियो ॥ ४ ॥

नार परणू नवी कहां मंदर नवां, आथ जोडे रहं फोथ आढे ।

आणग्री अगेहतो जणे इम ओरड़ी, गोरड़ी तणे कस नेम गाडे ॥ ५ ॥

सवारथ बठारो भूल सजियो नहीं, अठारो सवारथ कीध आंघै ।  
 चोळ रंग हुआ अंतर तणो चापड़ो, बापड़ो नत नवी आस बांधै ॥ ६ ॥  
 कठे गो बाप ने गयो दादो कठे, खंडगं जमराण रै जको खूटा ।  
 उयां बीसी जका थने दन आवसी, फोड़ मत हिया री हियाफूटा ॥ ७ ॥  
 कसी कोइ म कीजो काय अवगुण कदे, बुहां बंठां तजो बात बस री ।  
 "ओप किव" कहै मरदां ! प्रभू ओळखो, मानखो सुधारो होय मसरी ॥ ८ ॥

२

मूठी जीत लो जमारो नरां ! काय ग्रहो काठी मूठी;  
 पुर्न किया गांठी मूठी साबतो प्रमाण ।  
 मोटो धणी याद करो मूठी बातां लागै मती;  
 मूठी धूळ तणी थारी देह रो मँडाण ॥ १ ॥  
 हीर चीर हेमतार धड़ी में बिराणा होसी;  
 लाखां द्रव धंधो सब हाथी घोड़ा लांठ ।  
 धंधे भूठे लगा नरां ! भार रा कहावौ धणी;  
 गार रा मणा रै लागी वायरा री गांठ ॥ २ ॥  
 हूं करूं हूं करूं करे गाढा टेढ़ा कई हालो;  
 नमेल में गाढा टेढ़ा करै दीनानाथ ।  
 'मेदनी आकार दोलूं काळ तणा डाढा मोटा;  
 हेल मात्र गंदी काया साड़ा तीन हाथ ॥ ३ ॥  
 वेग तेग धपाड़ो जिमाड़ो कहै सारी दुनी;  
 'मीठा धोलो सांई मनो राखो मोटा मन्न ।  
 जाय आया बांधी मूठी खूटी मूठी परा जासो;  
 "ओपो आढो" कहै नरां ! बांटो मूठी अन्न ॥ ४ ॥



मन जाणै चढ़ं हाथियां माथै, खुर घासंतां जनम खुवै ।  
 नर री चींती बात न होवे, हर री चींती बात हुवै ॥ १ ॥  
 मन जाणै पदमण हूं मारुं, गो वंद बाधै पधरे गळै ।  
 मांडण हारे लेख मांडिया, मेठण वालो ण मळै ॥ २ ॥  
 यू जाणै पकवान अरोगूं, पापर मिळै न लूको धान ।  
 हचियो खाय काय हींचोळा, भोळा रे रचियो भगवान ॥ ३ ॥  
 दिल में जाणै पांव दवाऊं, औरां रा पग दावे आप ।  
 कछपै कसूं कसूं मन कोपै, प्राणी लेख तणो परताप ॥ ४ ॥  
 चित्त में जाणै हुकम चलाऊं, हुकम तणै वस नार न होय ।  
सांमा चा लेख लिख्यो उण सांई, काचा करण न दीसै कोय ॥ ५ ॥  
 धापै मन बैठां घोळाहर, तापै सुनो दूंद तडै ।  
 आदू रीत असी है “ओपा” । कुटी लिखी सो महल कठै ! ॥ ६ ॥

(कमशः)

अपने समय के सुप्रसिद्ध विद्वान्, कवि एवं इतिहास वेत्ता स्वः कविराजा  
 बांकीदासजी आशिया (जोधपुर) कृत—

गीत

१

वस राखौ जीम कहै इम “बांको”, कड़वा बोल्यां प्रभत कसी ।  
 लोह तणो तरवार न लागै, जीम तणी तरवार जसी ॥ १ ॥  
 भाई । अंगे अंगे मारय, हेकण जीह प्रभाव हुआ ।  
 मन मिळियोड़ा जिके मादुवां, नीम करै खिण मांह जुवा ॥ २ ॥

मैला मनख वचन रै माथै, वात वणाय करै विसतार ।  
 बैठ सभा विच मूँढा वारै, वचन काढणौ सोच विचार ॥ ३ ॥  
 मन में फेर धणी री माळा, पकड़ै नहँ जमदूत पलौ ।  
 मिलै नहीं वकणै सूं माया, भाया ! कम बोलणो भलौ ॥ ४ ॥

---

२

नहँ पंचां जाय लाकड़ी नाकै, धणी जोर सजगीर घणा ।  
 चरचा करै कचैड़ी चढ़िया, नीर ऊतरै तिकां नरां ॥ १ ॥  
 वणन-बैभौ हळ-हांसल विगड़ै, कुवद कमाई जगत कहै ।  
 झगड़ो लागौ जिकां मूं११३ं, रगड़ौ तलवां तणौ रहै ॥ २ ॥  
 महियळ कुशळ पराये मूँढै, सूंक हंमेस बांढणी सेस ।  
 कजिया रौ कीजै मुँह काळौ, कजिया में नित नवा कलेस ॥ ३ ॥  
 राखै संप जिके धन राखै, “बांको” आखै साच बधी ।  
 न्याव निवेड़ौ तिके निवेड़ौ, राज चढ्यां के तणी रधी ॥ ४ ॥

---

३

कुण जाय जिकण ठाली कोटड़ी, खान पान नहँ लियै खवर ।  
 जिण ग्वाड़ी देखर जग जावै, करवौ पावै कोड कर ॥ १ ॥  
 डोंधी पौळ दीसती डाकण, रोटी देण तलाक रही ।  
 फळसौ दीसै धणी फूटड़ौ, पोखीजै जिण माँह पही ॥ २ ॥  
 आयां मिलै नहीं अन आदर, धंवळहरां अळगा सूं धोक ।  
 क्यावर रा मूं११३ कांटाळा, लै बिसराम बटाऊ लोक ॥ ३ ॥  
 रोटी-राव-खाटली राली, मिळियां राखौ नको मणा ।  
 गाम धणी तो पाछै गणियै, घर रा धणियां रंग घणा ॥ ४ ॥

---

स्व. कविवर आशिया जवानसिंहजी ( मंगटिया-मंगवाड ) कृत—  
मनहर

१

होकर प्रमादवण मानै या न मानै तोह,  
जानै जिय जैसी कहै, मूँठ न प्रचार का ।  
शासन विहित लोक लाज सों ग्रहित सदा,  
पक्षपात रहित, ब्रह्म सहित विचार का ॥  
आदि अवसान मध्य नेक सब कहैं नर,  
एकहू न होय जामें बोल अनाचार का ।  
सेवक का काम यही उचित सज्जह देना,  
करना कुराना सो तो काम सरकार का ॥ १ ॥

२

उचित अनुचित को राखत विचार बड़े,  
स्यार छाँड़ि, सिंह वार करत करीन पै ।  
सेस सहै भार, चारि नरै बड़बागनि तैं,  
तदपि प्रहारत ना विपति परीन पै ॥  
निबल न गाहैं, राहैं चलत स्वधर्म धीर,  
युद्ध को उगाहैं वीर सबल अरीन पै ।  
नृपति कुलीन, मन करैं ना मलीन कदा,  
आश्रितन-दीन की जनीन उदकी न पै ॥ १ ॥

कविरत्न ठाकुर केसरसिंहजी बाख्खट ( केरा ) कृत—

शुभेच्छु चाबुक-सूरी

( वर्तमान राजाओंको लक्ष्य करके )

सोरठा

अवधी धन ओछीह; सोचीजे सह भूषणों !  
पड़गी पल पोचीह; नीत सलोची नहँ रखी ॥ १ ॥

## भावार्थ

भूतियो ! सोचिये, समय कम रह गया है । आपका पक्ष निर्बल हो गया है क्योंकि आपने अपनी नीति को लेखद्वार ( परिस्थिति अनुसार ) नहीं रक्खी ॥ १ ॥

साइयो वणकां साज; रजवट घट खोवे रघू ।

रहसी नहँ ये राज; आज लगा जिण विघ रखा ॥ २ ॥

आपने राजपूती शान को खोकर वनियापन का रूप सज लिया है; परन्तु अबतक जिस प्रकार रहे वैसे अब ये राज्य नहीं रहेंगे ॥ २ ॥

दुख सह केले देह; प्रजा पूत सम पाळता ।

(अब) भूँट प्रपंच सजेह; लूटीजै घर ही लखै ॥ ३ ॥

आप ही देखिये; पहले सब तरहके दुःख अपने शिर लेकर प्रजाका पुत्रवत् आग्रह पालन करते थे और अब भूँट एवं प्रपंचों के द्वारा उसके घर लूटे जाते हैं ॥ ३ ॥

हो न पराया, हेत; राजां यो घर राजरो ।

खाण लगा बयू खेत; बाड रूप वणिया रखा ॥ ४ ॥

आप गैर नहीं हैं, इसलिये कहते हैं कि राजाओं ! यह घर आप ही का है । आप जिस खेत के बाडरूप बने रहे थे उसीको क्यों खाने लगें हैं ? ॥ ४ ॥

पग पग जरबां पीट; नीठ आज लग यूँ निभी ।

पण अब परजा दीठ; खुली मीट संकर किना ॥ ५ ॥

पैर २ पर जूते खार्कर भी सब तक ज्यों-ज्यों कर प्रजा आपके साथ निभती रही । परन्तु अब उसका मानचभु संकरकी पलक के समान खुल गया है ॥ ५ ॥

परजा जितै अजाण; महिष हालिया मन-मते ।

वरतै मिन्त प्रमाण; पँदरह वरसां पूतड़ौ ॥ ६ ॥

प्रजा जब तक अवोध थी, आप लोग मनमाने चलते रहे । लेकिन, खया रखिये, हाशियार होने पर तो पुत्र के साथ भी मित्र के समान व्यवहार कर उचित होता है ॥ ६ ॥

निरभै हित निरभेळ; जे नर चाहै राज रो ।

वस चुगलां इण वेळ; जेल मांह पट्को निकां ॥ ७ ॥

जो लोग बिना किसी लागलपेटके निर्भय होकर राज्य का हित-साधन चाहें, उनको आप चुगलखोरों की बातों में आकर जेल में ड्रेस दंते हो ॥ ७ ॥

नभ सोभा निरस्वाय; ऊंचा नेणां आप रा ।

(पण) अब जहान अथड़ाय, आगे भाळो जघपत्यां ! ॥ ८ ॥

आपकी ऊंची निगाहें, ऊपर आकाश की शोभा देख रही हैं; किन्तु, अधि पतियो ! जरा आगे देखो, आपका जहाज अब टकरानेवाला है ॥ ८ ॥

ऊपर रै आधार; पग समेट मूलै पड्या ।

की जाणै करतार; (कद) खसक पड़े खतिया कड़ा ॥ ९ ॥

ऊपरके सहारे के बलवर आप पैर सिकोड़ कर झूठे में पड़े हुए हो, लेकिन जिन जंग खाये हुए कटों के भरोखे पर आप हो, वे ईश्वर जाने, न मालूम की खिसक पड़ेंगे—कुछ पता है ? ॥ ९ ॥

जीवन अहळो जाय; सहल तिकार सलाम में ।

मांटी मौज उडाय; परजा बिलखै पेट नै ॥ १० ॥

आपकी जिन्दगी दुआ-सलाम, सैर-सपाटे और शिकारमें बरबाद हो रही है जोंरावर लोग मौज उड़ा रहे हैं, और उधर प्रजा उदर-पूर्ति के लिये बिलख रही है ॥ १० ॥

हुकमत गी पर हात; घर में खूँ घालिया ।

बालक भी या बात; जाण चुक्या जग माहिने ॥ ११ ॥

अब यह बात वक़्त तक जान चुके होंगे कि आपकी हुकमत लोगों के हाथ में चली गई है और आप अपने ही घर के कोने में बिठा दिये गये हो ॥ ११ ॥

हाथ्यां बैठ हगाम; किना करै कठपूतली ।

देखीजै बिन दाम, अजब तमाशो आज रो ॥ १२ ॥

आजकल हाथियों पर सवार होकर जो आपके जुलूस निकलते हैं, वे लोगों की निगाह में कठपुतली के खेल के समान हैं, और बिना पैसों का तमाशा खयाल किया जाता है ॥ १२ ॥

---

दोहा

साद प्रजारो सींवियो; फिट कानूनां फांस ।

ज्वालामुख ज्यू जाणजे; सो धुँधवायो सास ॥ १३ ॥

वाहियात कानूनों में फांस कर आपने प्रजा की आवाज को सीं तो दिया है; परन्तु ध्यान रखना, वह घुटा हुआ द्यास ज्वालामुखी साबित होगा ॥ १३ ॥

---

कै जंगल रणवास कै; कै उडतां आकास ।

जाय जमारों राज री; न्हकै प्रजा निसास ॥ १४ ॥

आपका जीवन जंगल में, जनाने में या आकाश-विचरण में बीतता है और यह देखकर निश्वास छोड़ती है ! ॥ १४ ॥

---

रुस-चीन-जर्मन-तुरक; आदि हुता पतसाह ।

वे सिंहासन कित गया; सोचीजै नरनाह ॥ १५ ॥

नरपतियो ! जरा सोचो. रुस, चीन, जर्मनी और टर्की आदि देशों में जो शाहशाह थे उनके सिंहासन आज कहाँ हैं ? ॥ १५ ॥

---

परजा ही पलटाविया, अणचीत्या बिन फौज ।

काल्ह निके घर गंजता; आज मिलै नहँ खोज ॥ १६ ॥

कल तक जो पृथ्वी को रौंद रहे थे उनके तख्तों के प्रजाने ही अकस्मात् और बिना फौज़-फटि के, बदल दिये और आज उनका पता भी नहीं है ! ॥ १६ ॥

समै पलवतां जेज नहँ; जठे प्रजा जुँफलाय ।

धर-धूजण बस की चले, पल में महल दहाय ॥१६॥

जहां प्रजा झुंझला उठती है तो समय को बदलते देर नहीं लगती। भूकम्प होने पर क्या किसीका कुछ बचा चल सकता है-क्षणभर में महल ढह पड़ते हैं! ॥१६॥

सुखी समृद्ध विटानिया; जारज-सुतने जोय ।

ऊहिज मारग आदरौ, सुख री नीदां सोय ॥१७॥

खूब सुख निद्रा ले लेनेके बाद अबतो आपके भी उचित है कि आप समृद्ध और सुखी विटैनके जार्ज-सुतनके देखे और उसी मार्ग को ग्रहण करें। ॥१७॥

आछा कामां ऊधमौ; धनियां ! निज धन रास ।

नहँ तो नेड़ा आवणा; महल गजरां वास ॥१८॥

स्वामियो! अपनी धन-राशिको उत्तम कामों में खुले दिल से खर्च करा वरना महलों में मजदूरों के निचास के दिन नज़दिक़ प्रतीत होते हैं। ॥१८॥

### सोरठा

पितु-सम ताजी प्रीत; कर रानी परना करण ।

निभ जाभी सुध नीत; हँ बाजी हातां हणा ॥१९॥

पिता के समान अभिनव प्रीति से प्रजा को खुश करनेके लियेआप शु-उत्तम नीति का अवलम्बन करें तो अब भी बाजी आपके हाथ में है-॥१९॥

नर सुख गाफल नीद; जाखू कड़्यौ जागणो ।

(पण) बेलां चँवरी बीद; जोग हुवै जेम्हणो ॥२०॥

जानता हूँ कि गफ़लतकी नींद के सुख में मनुष्य को जगाना बहुत बुरा माल होता है। किन्तु क्या, सभी नहीं जानते कि लगन-समय पर तो बूढ़े को झटके देकर भी जगाना पड़ता है! ॥२०॥

सत्रयट मांहे सोद; देखे दुख पावै दुसह ।

(जद) चारण चुभती चोद; हिरदै सचरां री हणै ॥२१॥

चारण आपके हृदय पर सभी अपने शब्दों की चुभती हुई चोट पहुँचाता ।  
जब उसे आपके क्षात्र-धर्म में कमी नजर आती है और उससे उसको असह  
वेदना होती है । ॥२१॥

नृप ! नहँ व्हो नाराज, स्वीकारे सत सांपरत ।

आखी ईहग आज, हित री बातां हेत थी ॥२२॥

राजाओ ! नाराज मत हो जाना । प्रत्यक्ष सत्य को स्वीकार करके ही आपने  
लामकी बातें आज प्रेमके पश हो चारण ने कह दी हैं । ॥२२॥



## ❀ स्तुति ❀

बल के बल हो श्री जगदम्ब ।

अशरणशरण अधन के धन हो आरत के अवलम्ब ।

करे अकंटक जन, नसि वंकट संकट के निकुरम्ब ॥

निबलके..... ॥१॥

दुखी देव-लखि सदय पधारे मारे शुम्भ निशुम्भ ।

आरनजन पै करुणा धारे, हारे-बलेश कदम्ब ॥

निबलके..... ॥२॥

दुय कर करै कहा, जब रक्षक बाहू बीस प्रलम्ब ।

है विलम्ब-सुमिरन में राउर, करुणा में न विलम्ब ॥

निबलके..... ॥३॥



तब सुदृष्टि में विघ्न कि व्यापें, हे जननी हेरम्ब !

पालहि का न पतित पावन व्रत "अक्षय" हित अविलम्ब ॥

निचलके..... ॥४॥

—आर्यकुमार अक्षयसिंह रत्न, अलवर

## कविवर ठा० सा० श्री किशोरसिंहजी के स्वर्गवास पर शोकोद्गार

;( १ )

[ कवित ]

कारक स्वजातिन की सेवा को अथाक कर्म,  
धोरी पुरातत्त्व-रथ धारक धुरा गयो ।  
ध्वांत में स्वतंत्र मंत्रदायक महीपन कौं,  
दीपक समीर काल तंत्र में दुरा गयो ।  
गौरव ' हर्षार ज्ञाति युवक-जनिष्ट बनि,  
शत्रुजीत उन्नति को अंकुर स्फुरा गयो ।  
अकारण भित्र श्री किशोर प्रतिभा को चित्र,  
चिंतामणि चारण चरित्र को स्रुरा गयो ॥१॥  
पुहुमि प्रसिद्ध सिद्ध करिकें दिखायो जिन,  
सन्निभ-समाज मध्य राज पटियाला पुर ।  
जाके बल विपुल विकास यो स्वर्गजाति को,  
उलट अरातिन कौं सैले निमि सात्यो उर ।

१-उत्पादक । २-प्रतिक्षण नया नया प्रकट करनेवाली बुद्धि । ३-विघ्न उठ

काव्य-कृति कोविद 'हमीर' श्रीकिशोर वर्म,  
 नीक<sup>१</sup> निरभीक<sup>२</sup> स्थिर धी<sup>३</sup> के धुर्य<sup>४</sup> कीन<sup>५</sup> तुर ।  
 दृष्टयो आज ज्ञाति-धनु-रौदा<sup>६</sup> हाय ! काल-रूप,—  
 हस्तिन के हौदा चढि सौदा गो सभा में सुर ॥२॥  
 —निवेदक, कवि श्री हमोरदानजी लाखाजी मोतीसर,  
 पालणपुर.

(२)

[ कवित ]

जाति पथ-उन्नति सुधारक सिधार गयो,  
 हाहाकार ! भयो, परी दिल में दरार है ।  
 आज सोक-सिंधु<sup>१</sup> महँ बूढ़ियो समाज निन  
 नाव के तरैया हाय ! गयो नाक-द्वार है ।  
 मरुधर-मेन्नार औ हुंदार-कच्छ-काठीवार—  
 बासी चारनन-तन फरत अंगार है ।  
 'जैमल' स्वजाति के करेजो हो किसेर कवि,  
 ताहि छीन कीनी ईस ! क्रूरता अपार है ॥ १ ॥  
 नागर सभा के हो सुसागर धी-साहित के  
 कैवट कुसल हुतो जाति के जहाज के ।  
 चारनन-तारक प्रचारक त्यों 'चारन' के  
 तम के नसावन बचेया कुल-लाज के ।  
 दिल दरियाव पाज सर इतिहासह के  
 पंडित प्रखर त्यों करेया देस-काज के ।  
 "जैमल" जगत-स्वामी ! बूढ़े गुन-ग्रामी तैने  
 काहे कियो अंत वा किसेर कविराज के ! ॥२॥  
 —निवेदक, श्री जयमलदानजी शिवदानजी पायक,  
 लोदराणी (कच्छ)



डॉ. कवियर डाकुर किशोरसिंह जी सा. सी.डी. एम. आर. ए. एम.  
भूतपूर्व संवादक, "चारण"

जन्म

विक्रम संवत् १९३६

आश्विन शुक्ल १४

नाहपुरा (मेवाड़) में

मृत्यु

विक्रम संवत् १९९४

आश्विन शु. पूर्णिमा

पटियाला (पंजाब) में  
सहसा हृदय की गति रुक जानेसे.

[ भी खेतसिंहजी मिश्रण के ग्रन्थ-श्रवण से ]

# લાડકડો વર

સ્વયિતા

મક્તકવિ દુલાભાઈ ભાયાભાઈ કાગ

વહુ કોડ કુમાર જુવાન થયા,  
 નહીં ઘંટી છેડાવળહાર થયા;  
 હવે હાલી શકે નહીં. હાથડિયા.  
 ગ્રહી માત ની વાત વિચાર કરી,  
 વર રાજ હજાર તૈયાર થયા;  
 સુણી માંડવડા ની જ્યાં સાંમગરી,  
 લુગનો લલિયા પછી નાસી ગયા.  
 વરવા તળાં ખીપમ નીમ ગ્રહાં,  
 એણે માત હિતે વહુ દુઃખ સહ્યાં;  
 એનાં હાડ ને ચાંમ ઘસાઈ રહ્યાં.  
 વઝતી દઝતી જોઈ માવડલી,  
 એના આતમ ને સઠગાવી રહ્યાં;  
 નળનારી ના માત ને કારણિયે,  
 ન સહાય એવાં અપમાન સહ્યાં. ॥૨॥  
 વર : પાંત્રીસ કોડ નો તારક છે,  
 મુવ માર અપાર ઉતારક છે;  
 સત ધારક પાપ સંહારક છે.  
 નિજ શિશું શ્રીફલ હાથ લીધું,  
 શરણાઈ ને દોલ ના શોર થયા;  
 પતિતો તળો પાવન આ નવશા,  
 એણે પીઠી નાં કેસરિયાં કરિયાં. ॥૩॥  
 એને પોસ્વળ કાઠ તળા ગળ છે,  
 એનો માંડવડો પ મહારણ છે.

તલવારો તળા એને તોરણ છે.

જાનીવાસ તળા એ ઉતારા તળી,  
મહેમાનીમાં જેલ તળાં ઘર છે;

લલકારો સહુ એનાં ગીતડિયાં,

હિંદ માત નો લાઢકડો વર છે. ॥ ૪ ॥

દિન રાત ધખેલ હતી તપતી,

એળે કૈંક નમાવી દીધા નૃપતિ;

એવી નાઝ જંનાઝ કરાઝ હતી.

ભયકાર મુખે વિકરાઝ હતી,  
ઋગતી જમ આંચ ધી જામગરી;

એવી તોપને મોઢડે વાથ ભરી,  
પછી હાકલ દાગવવાની કરી. ॥ ૫ ॥

સઝગે એવી દારુની શેરી હતી,

એમાં આગ લગારેક મેરી હતી;  
મેઝી વાયુના કોપ ની લે'રી હતી.

વર કૈંક થયા પળ ભાગી ગયા,  
નમ મંડલ, માં એની ખાઝ ગઈ;

નિરખી મન મોહન મૂરતીઓ,  
ઉતપાત ની આગ ઓલાઈ ગઈ ! ॥ ૬ ॥

એક કાઝનો થાઝ ત્યાં પીરસિયો,

વિષ વાઝો કંસાર એ સ્વાઈ ગયો;  
પછી પેટડિયા માં પચાવી ગયો.

સુલકારી હતી ને કુમારી હતી,  
હતી નામે સ્વતંતરતા સુંદરી;

એને મોહની મોહનની પ્રગટો,  
વરમાઝ હસી કંઠ માંચ ધરી. ॥ ૭ ॥

## स्वागत

( कर्ता : आर्यकुमार अक्षयसिंहजी रत्न—अलवर )

समागत स्वागत चारण—पत्र ॥

बहुत बिछुड़े, अब फिर पगु धार ।

सँभालो निज भुज भार—सुधार ॥

तुम्हीं इस युग के महदाधार ।

करो हम पतितों का उद्धार ॥

चाहते हम तो छाया—छत्र । समागत स्वागत चारण—पत्र

समझ कर गन्ता देश विदेश ।

प्रकाशित करते दूरन्देश ॥

वही पूरा कर दो उद्देश ।

जाति जागृति का शुचि संदेश ॥

रूपा कर पहुँचा दो सर्वत्र । समागत स्वागत चारण—पत्र ॥ २ ॥

तुम्हारा वह किशोरपन रंग ।

ले गया वह किशोर ही संग !

जमेगा तो भी कुछ तो दंग ।

छिड़ेगा उन्नति—कथा प्रसंग ॥

इसीसे उत्सुक “ अक्षय ” अब । समागत स्वागत चारण—पत्र ॥ ३ ॥

७१/

## हम “चारण” कैसे हैं ?

( लेखक : शंकरदान जेठीभाई देथा, लॉडडी )

कवित

क्रीतपूत-कृत्रिम-कुक्षत्रि व्याल-नाल वाकों,  
 अति दुःखकारी हम लगे उरगारी हैं ।  
 क्षात्र-धर्म-पथ के पथिक शुद्ध क्षत्रिन कों,  
 संजीवनी-मंत्र जैसे हम सुखकारी हैं ।  
 शंकर भनंत जके अंतर में निरंतर ,  
 सुर-गुरु जैसे हम पूज्य-प्रिय भारी हैं ।  
 ऐसे देव-अंशी जो विशुद्ध राज-वंशी ताके ,  
 पुनित-पुराने हम चारन पुनारी हैं ॥ १ ॥

## सम्वाद

श्री० अलवरेंद्रकी महती उदारता

( लेखक : आर्यकुमार अक्षयसिंहजी रतू, मंत्री, अलवर राज्य चारण-मण्डल )

श्रीमान् महाराजाधिराज श्री. सवाई तेजसिंहजी वीरेन्द्र शिरोमणि अलवरेंद्र देव-पहिले से ही चारण जाति पर परम प्रेम रखते हैं । सिंहासनारोहण के पश्चात् श्रीमान् ने बलदेवदानजी कविया ( सेवापुरा ), जयसिंहजी कविया, करनीदानजी देवल ( नेतड़यास ) व रामसिंहजी रतू ( यमावली ) आदि सज्जनों को उत्तमोत्तम पदों पर राज्यसेवा में नियुक्त करने की अनुकम्पा कर अपने उस प्रेम का विशेष परिचय प्रदान किया है और ता. २२-५-३८ के श्रीमान् चिरंजीवी महाराज कुमार साहिब के शुभ जन्मावस्य के उपलक्ष्य में होने वाले दरबार में क्वैर बलदेवदानजी कविया को ५०७ मासिक की वेतनावृत्ति प्रदान की एवं इन्हे तथा पारहड बल-घन्तसिंहजी आदि चार स्थानीय महानुभावों को पुरस्कारादि से सम्मानित किया गया है ।

इसी शुभ प्रसंग पर की गई चारण-छात्रालय की स्थापना की प्रार्थना पर फरमाई गई और छात्रालय बनाने के लिये रपूजत बोर्डिंग हाउस के

पासकी भूमि प्रदान करमा रहे हैं और छात्रवृत्तियों आदि सहायता के लिये उ विचार होकर श्रीमान् के करकमलों से इस छात्रालय के शिलान्यास एवं स पर इसके उद्घाटन का पुण्यप्रसंग शीघ्र आनेकी आशा है ।

श्री. नयनशावतंस का यह परोपकारपूर्ण कार्य स्वर्णाक्षरों से उल्लेखनीय है और इसके लिये अलखरीय चारण जाति सदा आभारी रहेगी ।

श्री. अलखरेन्द्र का चारण-प्रेम अपने राज्य के चारणों तक ही सीमित न है प्रयुक्त समस्त चारण जाति के प्रति बड़ी उदारतापूर्ण भाव है । इसका प्र हमें श्रीमान् के उक्त-प्रसंग पर जोधपुर के श्री उमेद-चारण-छात्रालय को की सहायता प्रेषित करने से बखूबी प्राप्त होता है ।

जगद्गुरु ऐसे उदारचेता प्रजा-प्रिय नरेन्द्र के सपरिवार सुखी एवं चिरायु रक्

श्री भूपाल-चारण-छात्रालय, उदयपुर

श्री भूपाल-चारण-छात्रालय का उद्घाटन, श्रीमान् आर्य-कुल-कमल-द्विवा के करकमलों द्वारा गर वर्द्ध हुआ और राजकीय सहायता भी प्रदान की ग छात्रालय-फंड में इस समय करीब २ बारह तेरह हजार रुपये हैं जिन्में दश हजार तो सूद पर राज्य की मारफत दिये हुए हैं और शेष दो तीन ह रुपये खेमपुर डा. कर्णीदानजी दधिवाडिया के पास बिना व्याज पड़े हुए हैं छात्रालय की स्थायी मासिक आय कुल मिलाकर कम से कम अस्सी नवशे होमी और खर्च पचास का । ऐसी हालत में मासिक बचत का छात्रों के में की फीस में कमी करने के लिये उपयोग में लाने का उक्त डाकुर साहिब का धार कहा गया क्योंकि छात्रालय का प्रबंध आजकल इन्हीके हाथमें है और ये ऐसे भी इन्हींके पास । परन्तु न मालूम क्यों इस आवश्यकता की और वे उ बृद्ध कर भी ध्यान नहीं दे रहे हैं । बिना भोजन फीस में कमी किये छात्रों तादाद नहीं बढ़ेगी और फलतः छात्रालय का लाभ जैसा हो सकता है न होगा क्या, खेमपुर डा. सा. अपने कर्तव्य को समझ कर अपनी जिम्मेवारी पूर्ण करने ?

—आनकार

“श्री करनी चरित्र” छप गया

“चारण” के स्वर्गीय सम्पादक विद्वद्गुरु डा. किशोरसिंहजी सौदा द्वारा सम्पा योग माया श्री करनीजी की जीवनी छप गई है । मूल्य २॥) दार्द्र रुपये, पता—मेने राजस्थान रिविस् सोसाइटी, ७३, ५ चासा घोवा. पाड़ा स्टेट, कलकत्ता ।

## चारण जातिका प्रथम-कर्तव्य

(लेखक : डाकुर भगवती प्रसाद सिंहजी, बीसेन, राजस्थान-रिविस्-सोसाइटी, कलक

चारण जाति का साहित्य हिन्दू मात्र को एक-अपूर्ण देन है—हिन्दी म की वह बहुत ही उज्ज्वल सम्पत्ति है । हिन्दी में जिस चीज़की कमी है—वह उर पूर्ति कर सकता है । परन्तु तो भी हम इसकी चमक से प्रकाशमान न हो स यह विधि की विदग्धता नहीं तो क्या है ? आज जिनके मन में जो आता है



चारण जाति और उसके साहित्य के विषय में मनमाना लिख मारता है—परन्तु, उन्हें रोकने वाला कोई नहीं।

चारण जाति राजस्थान में मातवर है—लाखोंकी जागीर उसके पास है—क़रोंडों का साहित्य उसकी गोदमें है—अरबों के काव्यरत्न राजस्थानकी धूलि में लिपटे पड़े हैं—पर तो भी यह दैन्य की प्रमाद निद्रा के खुरदरे ले रही है। किन्तु समय जागने का है, एकदम ऊठ कर खड़े हो जानेका है—सोने का नहीं।

राजस्थान का राजनैतिक वातावरण बदल रहा है—दिन पर दिन उसमें नये नये परिवर्तन हो रहे हैं—नाना प्रकार के नये नये क़ानून गढ़े जा रहे हैं—न जाने किस समय क्या हो जाय ? हमें समय रहते सावधान हो जाना चाहिये। समय का भरपूर उपयोग कर लेना ही हमारा धर्म है।

जागीरें किसीका मुस्त में नहीं मिलीं—उनकी कविताओं, उनकी सलाहों और उनके बलिदानों का परिणाम ये जागीरें हैं। जागीरों के साथ उनकी अमर कीर्ति—गाथा गुंथो हुई है। पर आज परिस्थिति दूसरी है—जमाना रंग बदल रहा है—न ये राजा हैं और न यह परिस्थिति ही है। जागीरों का स्थायित्व नष्ट होता जा रहा है। साथ ही चारण जाति के संपूत अपनी साहित्य रूपी जागीर को भी खो रहे हैं। उनकी स्मृत्युक्ति आज उसे दीसकों का प्राप्त बना रही है—ये उसे कोठरियों में बंद किये बैठे हैं !

इस समय ज़रूरी था—आवश्यकता थी कि ये अपने साहित्य का भण्डार संसार के लिये खोल देते—उस के प्रकाश से सारे संसार को चमकृत करते। पर, गति दूसरी ही ओर है। चारण सम्मेलन की बैठकें हो रही हैं—चारण जाति में भी जागृति के चिह्न दिखाई पड़ने लगे हैं—पर प्रस्तावों, भाषणों के सिया होता क्या है ? सामाजिक सुधारों की ओर ही ध्यान दिया जा रहा है—पर उससे हमारा क्या होगा ? हमारे सामने इस समय सबसे बड़ा सवाल है अपनी रक्षा करनेका—अपनी धनराशी बंटारनेका—अपनी अमूल्य निधि को नष्ट होने से बचा लेने का। चारण जाति के लिये एक ही कार्य है—चारण-सम्मेलन का सबसे आवश्यक कर्म भी एक ही है—बढ़ है—घनाभाव से चाहे प्रकाशन अभी न हो सके पर अपने साहित्य का एक विशाल संग्रहालय निर्माण करना। साहित्य इस जाति के जीवन की रीढ़ है—इसकी स्थिरता ही इसका जीवन है। इसके बिना जाति का भावी जीवन अंधकार में ही समझना चाहिये।

आशा है, सम्मेलन के पदाधिकारों इस ओर ध्यान देंगे और अपने कार्यकी गति को इस ओर मोड़ कर अपने समाज के नष्ट होते हुए अक्षय भण्डार को बचाने में कृतसंकल्प होंगे।

[ लेखक महोदय सम्मेलन की रिपोर्टों को पढ़ेंगे तो उन्हें झूत होगा कि सम्मेलन का ध्यान इस आवश्यक कार्य की ओर आकृष्ट है किन्तु धन-जनाभाव ने विशेष कुछ हो नहीं रहा है। “चारण” में “चारण-वाणी” नामक एक स्थायी स्तम्भ रखना भी इसी दिशा में एक प्रयास है। क्या, हम आशा करें कि लेखक महोदय के सपरामर्श से सहमत होकर प्रत्येक जातिहितैषी इस संबंध में अपने स्तम्भ की जिम्मेवारी पूरी करेगा ? ]

અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલન (રાજકોટ) નાં સંસ્મરણો

(વિવિધ પત્ર-પત્રિકાઓમાં નીકળેલ લેખો, સમાચારો અને નોંધો)

## [૧] સંશોધન વગર ધૂળ ખાતું ચારણી સાહિત્ય

ચારણ કામના સંસ્કાર રક્ષાએ !

શ્રી દૂસા ભગત

અખિલ હિંદ ચારણ સંમેલન રાજકોટમાં તા. ૨૧-૨૨-૨૩ ના રોજ મળે છે. તેના પ્રમુખ શ્રી દૂસા ભગત એક મુકવિ છે.\*

બાર વર્ષ પર એને પહેલ વહેણ પિઠાન્યા. ત્યારેય એ ઇશ્વરના ઉપાસક કવિ હતા. રંગદંગે ખેડત હતા. આખ્ય જનતાના સલાહકાર, રંજનકાર, નવા વિચારો દેનાર 'બાલણુ' હતા. અને શુદ્ધ અન્નચીવૃત્તના ધારનાર હતા.

બાર વર્ષે એને આછે ફરીવાર તપાસું છું. આજે એને રામ મહારામ્નઓ શોધે છે. એના વાણી પ્રકારો સૂણવ તકસે છે, ને એને હજારોનું ઘન દહ કૃતાર્થ બનવા ક'ખે છે, છતાં દૂસા ભગત તો એના એ રામ, નિરભિમાની અન્નચીવ છે.

ઢાંગી નહિ. સાચા અન્નગી છે. આખ્ય રંગદંગના એવા ને એવા પ્રેમી છે, 'આંખ્ય જનતાના વધુ સમર્થ' દોરવનાર બન્યા છે, ને એની ઇશ્વરોપાસક કવિતાએ આજે રાષ્ટ્રોપાસનાની રેલમછેલ વહાવી છે. નૂતન યુગના એ સ્વાભાવિક પ્રીછણુદારે શુજરાતી કાવ્યમાં અનેખી. કંઈપનાઓ, ઉપમાઓ ને ભાવનાઓ ઊતારી છે.

એની કવિતાના પ્રેરક ગરવા ગાંધીય છે. ચારણ કામના નવ જગરણનો એને નાદ લાગેલ છે. આતમ જ્ઞાનથી ભરેલી એની મેઘનાદીથી વાણીને એ મહેસોથી કુખર્ષા સુધી વગર ભેદે વિણ સંકોચે અને બહોળા હાથે પીરસે જાય છે.

એમની દોરવણી હેઠળ ચારણ સંમેલન એક કામ તો અવશ્ય કરે: ચારણી સાહિત્યની પ્રાચીન હસ્તપ્રતોના દગજાને દગજા કવિરાજોના ધરોમાં ડુધા ખાય છે. એનું વેળાસર સંશોધન સંપાદન કરાવે. શુજરાતી ભાષા પર મહાન ઉપકાર થશે.

ચારણકામ આજે બહુ વાગોવાઈ છે. વિના કારણ વધુ પડતી બદબોલ એ કામની થાય છે. પ્રત્યેક કામ જ્યાં કર્તવ્યવ્રત બની છે ત્યાં આ બાપડી એકલીને કાં દંડીએ ?

તેમ એ કામને એની સ્થિતિમાં પણ કાં ચૂકીએ, કે જ્ઞેથી એનો વિદ્યાધનનો વારસોજ નષ્ટ થાય ? ચારણી કામનો એ પુરાતન સંસ્કાર ન ઉઠેદીએ. એનો એક જૂથ તરીકે મુખ્ય વ્યવસાય વિદ્યોપાસનાનો, સાહિત્યોપાસનાજ ટકી રહે. બેચક એ ઉપાસના યુગરંગો ધારણ કરે તેવી કાશીશો કરવી ઘટે છે. એને રામજોની સ્તુતિ અથવા બિશ્વા ત્યજ્નવોને પછી સંસ્કાર હીનતાના આજે સગળતા વેરાનમાં ધકેલી દેવાયી શો લાલ ?

—શ્રી ઝવેરચંદ મેઘાણી

( 'કૃષ્ણજન' તા. ૨૦-૫-૩૮ ના અંકમાંથી ઉધૃત )

\*અગાઉથી સંમેલનના પ્રમુખનો નિર્ણય થયોજ નહોતો. શ્રી મેઘાણીએ કામના કહેવાયી કે અનુમાનથી શ્રી દૂસા ભગત પ્રમુખ થવાના છે, એનું લખ્યું છે. બાકી રાજકોટ સંમેલન શ્રી ભગતજીની કૃપાથીજ ભરાયું હતું. તેમને લીધેજ રાજકોટ સ્ટેડ તરફથી બધી અવસ્થા થઈ હતી.

તંત્રી, શુજરાતી વિભાગ.

## [૨] ગુજરાતનાં અઠવાડિક આંદોલનો.

### ચારણોની નવ દષ્ટિ

રાજકોટ મુકામે અખિલ હિંદ ચારણ સંમેલન મળ્યું હતું. ટોળાં શાહીના રોગથી મુક્ત રહેલા એ સંમેલનમાં ચારસોથી વધુ ચારણો હાજર નહોતા. જે હતા તે વીણાઈ વીણાઈને આવ્યા હતા. એમના સંમેલનમાં મને ચારણોના નવયુગી સંસ્કારનું દર્શન થયું. વેદકાળ જેટલી પુરાતન વિદ્યાતિષ્ઠતાના એ વારસદારો પોતાની અત્યારની સ્થિતિથી લન્નિજત હતા. રાજસ્થાનનો રસ તેમને રહ્યો નથી. નૂતન રાષ્ટ્રભાવથી નીતરતી પોતાના નવોદિત કવિઓની વાણીપર તેઓ મુગ્ધ હતા. તેમની આંખો નવી સાહિત્ય વાટ તરફ મંડાઈ ચૂકી છે. તેમને આડંબર અને શબ્દ બનાવટ અણગમતી થઈ છે. તેમને સ્વભાવિક ઉર્મિનો નાદ લાગ્યો છે.

સંમેલનના રાત્રિએ ભરાતા દાયરામાં મેં તેમની કવિતાનું નવસર્જન દીઠું પુરાતન કવિતાનાં બજો તેમના રસ અને અભ્યાસની વાત બનેલાં બેજાં.

### રજપૂતાનાના શિક્ષિત યુવાનો

પાંચેક હતા. રજપૂતાનાથી આવેલા નવયુવાન ચારણો ખી. એ. અને એમ. એ. એલ. એલ. ખી. મુધી પહોંચેલા તેઓ પોતાના સાહિત્યની જુદી જુદી દિશાપર 'થેરીઝ નિબંધ' લખી લખી ઉપાધિ મેળવી ચૂકેલા હતા. તેમનામાં સમતોલ અને શરમાળ વિદ્વાતા દીકી. ચારણી સાહિત્યનો સંસ્કાર તેમનામાં એવી જુક્તિથી વ્યાપી રહ્યો હતો કે જેવી જુક્તિથી મેંદીના થાંદમાં લાલી વસેલી 'હોષ' છે. સોરઠી લોક કથાઓ તેમજ કાવ્યો દુહાઓનાં રાજસ્થાની પૌંડાંતરે તેમને જીંદગીએ હતાં. એ નોખા નોખા પાઠોની મેળવણીમાંથી એક નૂતન આત્મીયતા નીપજતી હતી.

### રાષ્ટ્રભાવનાને લડાવનારી શબ્દો

રાત્રિના દાયરામાં રાષ્ટ્રભાવની નૂતન લોકકવિતા રેલાવનારા એ ત્રણ 'પાતળી શબ્દો' વાળા 'સોરઠી ચારણોનાં નામતો નથી જૂઠવા જેવા. દૂલા ભગત, મેરૂલા અને ખેતસિંહ મીસણની ત્રિપુડી વ્યાસપીઠ પર પોતાના પરત્વિયા કઠોની મિલાવટ કરીને શા લાડકાડથી રાષ્ટ્રભાવનાં રમ્મ, ભયાનક, નાનુક તેમજ વિરાટ સ્વરૂપોને રમાડતા હતા !

“ ડોસાણની નોળત્યું વાગે છે,

“ લીલાં લીલાં માથડાં માગે છે,

“ સૂતેલાં માનથી જતે છે. ”

એ ગાંધી ગીતના ઝળકતા શબ્દો સાંભળી, વિરાટની આલ-પાતાળ અને દિગ્માળપર પથરાતી કદપના નિહાળી તમે નવિન યુજ્જ્વલ જરૂર પ્રસન્ન થશે કેમકે એમાં બનાવટ નહોતી. એમાંથી પણ ગાંધીજી વિષેની નિહાળી કદપના :

• શિષ કપાવે ને દેહ વેરાવે,

લૂંટાવે ઘરખાર;

એ અધુન વાણિયાઓ ભૂતકાળની તવારીખમાં કરતા આવેલ છે (સગાળશા વગેરે), પણ એકજ વાણિયો કદાચ નહિ કરે :

વાણિયો કે દિ'ય નમતી ધારણ,  
નહિ તોળે તલભાર.

એવી એવી કદમના ગૂંચણીમાં ગાંધીજીના રાજકારણનું એક ચમત્કૃતિમય અને ચોટદાર સ્વરૂપ ઊભું થતું હતું. વર્તમાન રાજસૂક્ષ્માવનાની એક પણ દૃષ્ટિ રેખા એમાં નહોતી જડતી.

## ગાયક ત્રિપુટિ

આ ત્રણે જણા ભેળા ગાતા, વચ્ચે વચ્ચે પ્રત્યેક ભાવને પ્રકાશિત કરવા માટે અનેક અન્ય કવિતા-દીપકો ધરતા હતા. માર્મિક ગદ્યનાં મોતી મઠતા હતા. દાયરો એકદીલ બનીને હલમશી જતો હતો. કોઈપણ શિષ્ટ સંગેજનને રસબોળ બનાવે તેવી આ 'કવિતા કહેણી' અને કંઈ 'ની સંપૂર્ણ' મિઠાવટ હતી. જનસમૂહને ડાકાવવાના શાબ્દિક ખેલોમાં ફસાઈ જવાની આજે બચારે બહારી દહેશત ઉભી થઈ છે, સારે બીજ બાલુ આ રાજદાંડવરી લેખે હીણાયેલી ચારણી કવિના નૂતન અર્થ ગાંધીયં ને કટલી આસાનીથી ધાવણ કરી રહી છે ! એ કવિતામાં તેમજ એ કવિતા પ્રત્યેના ચારણી સમૂહ-પ્રેમમાં એક મહાન વાતની પ્રતીતિ થઈ પડી છે કે, કુરુચિ તેમાં નહોતી; પ્રશસ્તિ રસ પ્રત્યે અણુગમેા હતો; નિર્મળ માનવ પ્રેમ હતો.

## એને 'મીશનરીઓ'જ બનાવળો

આ ચારણોનું સ્થાન આપણા સમાજની નવરચનામાં કયાં છે ? તેમના એક જાતિ તરીકેના વિદ્યા વારસાને ભોગે કશોજ જીવન-પક્ષો ન થવો જોઈએ એમ હું માનું છું. વિદ્યાનો સંસ્કાર વર્ષો જૂનો વડો છે; એને ઉચ્છેદીને એને સ્થાને આપણે જે શાપશું તેની ઘટા બંધાતાં કેટલીવાર લાગવાની ? એ આખી જાતિ વિદ્યાનીજ 'મીશનરી' રહે તેવો પ્રયત્ન શું મુશ્કેલ છે ?

## આફ્રિકા જઈ આવેલા મેરુલા

તાજેતરમાંજ એમાંના એક જોદ્ધાર ગાયક, મળું જેનું પાતાળકૂટ જળ વાપરી જેવું છે તે મઠવી મેરુલા, આફ્રિકાના નેતાઈયાં એ દરિયાપારને દેશ લાગટ ત્રણ મહીના સુધી શહેરે-શહેરે લોક સાક્ષિ સંભળાવી આવ્યા, અને આપણાં દેશપાર બાંધવ જતોએ એ મેરુલાની વાણી દ્વારા જનમહમિનું સંસ્કાર દૂધ પીધું. આફ્રિકામાં તેમજ આપણી અન્ય વસાહતોમાં અભારે કોણ કોણુ જાય છે ? સંસ્થાઓના ફંડકાળા કરનારાઓ, વકીલો, આપારીઓ, પ્રચારકો, ચળવળીઆઓ. નયો જતાં કેવળ સંસ્કારના પ્રતિનિધિઓ, વધી જતા કેવળ શાયરો, ગાયકો, કથાકારો, સરસ્વતીના સંદેશવાહકો. જઈને ઝટ ઝટ ફંડકાળા આટોપી પાછા વળી આવનારાઓથી શું વળે ! આ મેરુલા, આ દૂલા ભગત, અને એના સંસ્કારોના અનુગામી એકસો ચારણુ પુત્રો હિંદ તેમજ હિંદ બહારની યુર્જર વસાહતે વસાહતે ધૂમી વળે ત્યાં પેઠાન પેઠીનાં પ્યાસી પડેલાં સ્ત્રીઓ, બાળકો અને ધધાર્થી પુરુષોને દેશનાં દીલ ખોલડાં કંદસ્થ કરાવતા પરિભ્રમણુ કરે, એ શું એક મહાન જ્વરિયાત નથી ?

## એ કંઠોને ન ગમાવશો.

આજે આપણી પાસે તૈયાર તાલીમ બદ કંઠો કયાં છે ? ગળાં આપણાં ખોખરાં બોલે છે. આપણી તળપદી ભાવનાઓને સજીવન કરનારી સ્વર-શક્તિઓનો નાશ ન કરશો સુધારણુને નામે એનો ઉચ્છેદ ન આચરવો એનું જીવની જોમ જતન કરવો.

મી. હવેરથંદ મેધાણી

( ' જનમહમિ ' ( દૈનિક ) તા. ૨૬-૫-૩૮. ' કલમ અને કિતાબ ' શિર્ષકમાંથી ) ૨૧

## [૩] ચારણ સંમેલન, રાજકોટ.

રાજકોટમાં ગયા અઠવાડિયામાં એક સાથે બે સમારંભો થયા. એક ચારણ સંમેલનનો અને બીજો હતો આર્થ સંમેલનનો.

‘ચારણ’ શબ્દની સાથેજ વાતો, દુહા અને રાજપૂત યુગની ઝાંખી ચવા માંડે. એ રીતે ચારણી સંમેલનનું આકર્ષણ અનન્ય હતું. ખુદ સ્વાગત પ્રમુખની ગુલામી પાઘડી આપણી ગત પેઢીના પહેરવેશની વાતો કરતી હોય એવું લાગે. આ બધા જૂના અને રંગ બેરંગી પહેરવેશ પાછળ નવા યુગનો પ્રાણ ધગકતો થયો છે, એવો રહેતાં રહેતાં ખચકાત પડી.

### ચારણ કોમનું ઐક્ય

સ્વાગત પ્રમુખશ્રી રામદાનજીના ભાષણમાં સંમેલનનો હેતુ અને લક્ષ્યર્થિન્દુ સ્પષ્ટ તરીકે આવતાં હતાં. તેમણે જણાવ્યું કે ચારણ કોમ રાજસ્થાની હિંદ, એટલે મુખ્યત્વે રાજપૂતાના અને કાઠિયાવાડમાં છે. તેમની વચ્ચે ભાષા અને ભૂગોળનું અંતર ગમે તેટલું હોય પણ સાંસ્કૃતિક અંતર નથી; બધેકે ઐક્ય છે. એટલે સમસ્ત ચારણ કોમ પોતાનાં જુદાં જુદાં અંગો સર્થિ સહકાર સાથે એ જરૂરી છે. એ સહકારનું દ્વંદ્વંત આપતાં કહ્યું કે સદાપતો અપાતાં. હોય ત્યાં વ્યક્તિગત સાધુઓને લોટ કે પાશેર ખીચડી મળે, પણ સૌ પચાસ સાધુઓ કાંઈ મહંતના નેતૃત્વ નીચે ગામમાં દાખલ થાય તો તેમને પાકાં સીધાં મળે.

### જોગેંદ્ર જેવા પ્રમુખ

જેવા એક આગેવાન તરીકે સંમેલનના પ્રમુખસ્થાને રાજપૂતાનાના રાષ્ટ્રભક્ત ચારણ-યોગી કાકિારશ્રી કેસરીસિંહજી હતા. તેમનું વ્યક્તિત્વ પણ પ્રખળ હતું. ચારણો તેમના પ્રત્યે આદરભુક્તિથી જોતા હતા. તેમનું કૃશ છતાં નિર્માળ, શુદ્ધાત્મી-ઝાંચ પાડતું શરીર, ભગવંતું પહેરણ, ટુંકું ધોતિયું, ઉમ્મઝા પગ અને માથે રેશમી લાંબા કેશ સૌ કોઈનું આકર્ષણ હતાં.

આ વ્યક્તિત્વ પાછળ તેમણે રાષ્ટ્રકાળે આપેલો ભોગ હતો એ વસ્તુ તો તેમની જોળખાણુ આપનાર એક મારવાડી ચારણ કવિએ કહી સારે ખચર પડી. એક પદ્યન્ત્ર કેસમાં તેમને ૨૦ વરસની સજા થયેલી. તેમના જીવાન પુત્રનું કોષ્ટક ક્રાંતિકારી ચળવળમાં લાગીદારી લેવાના સંશય તળે જેલમાં કમોત યઇ ગયું. સાહુપુરા (મિવાડ)માં આપેલો તેમનો હજારોનો ગરાસ જમ કરવામાં આવ્યો, મકાનો જપ્ત થયાં, પણ જેલમાંથી પાંચ વરસ પછીજ તેમનો છૂટકારો યઇ ગયો. સારથી તેમનું નિસ્પૃહ જીવન શરૂ થયું.

રાજપૂતાનાના આજે એ લોકસન્માનિત પુરૂષ છે. તેમણે ભાષણને બદલે થોડા ઉદગારોજ કાઢ્યા એમ કહીએ તો અવાસ્તવિક નહિ જણાય. તેમાંના કેટલાક આ રહ્યા: “હું તો એકંતવાસમાં રહેવા માગું છું, પણ મારી પાસે સ્ત્રીનાં કાર્ય માટે એક વર્ષ આપવાની માગણી યઇ; અને મારે તાબે થવું પડ્યું. પણ એટલેથી તમારી ફરજ પૂરી થતી નથી. તમે મને મદદ આપશો તોજ હું માથે નાંખેલો ઓળો ઉપાડી શકીશ.”

x

x

x

સભાનો પ્રાથમિક વિધિ શરૂ થયા પછી મસજીત સમિતિ રચાણી. તેમાં ગુજરાત, કાઠિયાવાડ તથા રાજપૂતાનાના પ્રતિનિધિઓ ચૂંટાયા. સમિતિમાં મુખ્ય ચર્ચા જીનું ‘ચારણ’

માસિક શરૂ કરવા અને તેના સ્થાપક સ્વ. કિશોરસિંહજીનું સ્મારક રચવાની વાત હતી. કિશોર-  
સિંહજી પ્રમુખના નાના ભાઈ હતા, અને પ્રસિદ્ધ પુરુષ અને ઇતિહાસકાર ગણાઈ ગયા છે. કહે  
છે કે સૌરાષ્ટ્રના સ્થામજી કૃષ્ણવમનિ ઉદ્યપુરનું દીવાનપદ અપાવનાર તેઓ હતા.\* રજવાડી  
પોશાકમાં શોભતા રાજપૂતાની ચારણુ યુવકોએ આ ચર્ચામાં કીક ભાગ લીધો, પણ પ્રમુખે તો  
એવા સ્મારકકાર્યને વ્યક્તિગત રીતે સહુ ભાઈઓ બિપાકે અને સરસા ઉપર તેનો ભાર ન  
પડવો જોઈએ, એમ કહી ચર્ચા સમેટી લીધી.

## જનગૃત બનતા ચારણો

પાંજળથી જાણુવા મળ્યું કે, 'ચારણુ' માસિક શરૂ થશે, એમાં પણ કામનાં દૂધણો ન  
પેસવાં પામે એ માટે જે દલીલો યદ્ય તોતો ચારણોને પોતાની અવનતિનું કેટલું ભાન છે,  
પોતાનામાં શુભપણો કરવા કેટલા ઇતેન્નર છે તે અતાવનારી હતી. તે બતાવવા જુના સંસ્કાર  
અને નૂતન કેળવણીનો પણ સંગ્રામ જણાયો.

રાજપૂતાનામાંથી આવેલા કેટલાક ચારણો તો બી. એ. અને એમ. એ. થયેલા હતા.  
અહીંના કરતાં ત્યાં ચારણોને રાજ્યાશ્રય ઓછો મળતો હોય એમ લાગ્યું. કદાચ એટલાજ  
કારણે ત્યાં સ્વાશ્રયી બનવા તેઓ ક્યારેક બિપાધિ મેળવતા થયા હશે. તેઓ બધા વિદ્વાનો  
હતા, સંશોધકો હતા, સ્વ. કિશોરસિંહજીના શિષ્યો પણ હતા. પણ દૂલા ભગત કહે છે તેમ  
ચારણુ પાસે કંઠ, કવિત્વ અને વક્તૃત્વ હોવાં જોઈએ એટલા પ્રમાણમાં ઉત્તરના ચારણોમાં  
જેવા ન મળ્યાં. આપણા દૂલા ભગત, ગદવી મેરલા, ઠારણુભાઈ, રામેદાનજીભાઈ, ખેતસિંહજી  
વગેરેને સાંભળ્યા પછી ચારણી કાવ્યશક્તિનો ખ્યાલ આવે.

## ઢાયરો જોઈ લ્યોં !

સમીક્ષનનો રજ કાઢ સલા કરતાં ઢાયરો જોવો વિશેષ લાગે. ત્યાં પુરશી વગેરે નહોતું.\*  
એક મોટો શમિયાનો ઉમો કરેલો. જમીન ઉપર જળજમ અને ગાદલાં ખીજાવેલાં. ઢાયરામાં  
કમુંઆ તો નહોતા ઘોળાતા પણ હોકા ન હોય તો વાતાવરણ લૂખ્ખું સૂકું લાગે ને ?  
એટલે તે પણ પ્રમુખની પાસેજ ગમડતો હતો. અને ઢાયરો હોય ત્યાં ગમડ્યા વગર રહે નહિ !  
પુદ માજી વાઇસરાય કર્જનના દરબારમાં પણ જુનાગઢ નવાજ હોઝો ચુંચુંડાંઆ સિવાય રહી  
શક્યા નહોતા. કર્જન રાતો પીગો થયો પણ ત્યાં કરે શું ? તેણે પણ કાકી રજવાડાંનો ઢાયરો  
જમાવ્યો હતો.

## ઢાયરાની મઝા

આવા ઢાયરામાં ભાગણો કરતાંય વાતો અને આજુબાજુ થતા મર્મો સાંભળવાની મઝા  
છે. પ્રો. દવેનું ભાગણુ ચાલતું હતું ત્યારે એક ભાઈ બેચી ડોક કરીને તે સાંભળવા લાગ્યા.  
આ જોઈ એક ચારણુથી ન રહેવાયું. તેણે ઢાયરું મોં રાખી તરતજ કમું ભાઈ, આ તો સલા  
છે. આમાં સાંકિયા જેવી ડોક કરીને કાઢની આડે આવતું એ રીત ન કહેવાય.

\* અહીં ખચરપત્રી મહારાજની જૂઝ થાય છે. કાકુરથી કિશોરસિંહજીએ નહિ, પરંતુ  
કાકુરથી કેસરીસિંહજીએ જ્યારે તેઓ મહારાણી ઉદયપુરના સત્રાહકાર તરીકે ઉદયપુરમાં હતા,  
ત્યારે પોતાના જેવા ક્રાંતિવાદી વિચારો ધરાવતા સ્થામજી કૃષ્ણવમનિ ઉદયપુરનું દીવાનપદ  
અપાવ્યું હતું.

—ત્રી, ગુજરાતી વિભાગ.

સંમેલનમાં ખીન ચારણ વફતાઓને પણ બોલવાની તક આપવામાં આવી હતી, તેમાં પ્રો. દવેનું ભાષણ ગમી જાય એવું હતું. તેમના ભાષણમાં કોઈની ઉપેક્ષા નહોતી. તેમણે કેટલું કે, ભણેલા અને ઉપેક્ષા વર્ગના માણસો સંસ્કૃત ભાષા વાપરે છે, અને આમર્ગ પ્રાકૃતભાષા બોલે છે, તેવીજ રીતે કાવ્યમાં પિંગળના ઉપાસકો સંસ્કૃત જનતાને પહોંચી શકે અને ડિગ-ળના ભકતો-ચારણો આમ જનતા સુધી પહોંચાડી શકે છે.

## આજના રાષ્ટ્રભાવી ચારણો

ચારણ એટલે રાજાઓના ખુશામતખોરજ સમગ્રમય. પણ અહીં એ બ્રમ ભાંગી જાય એવું હતું. રજવાડાંઓ પ્રત્યે એક પણ શબ્દ ખુશામત કે વાહ વાહનો ન મળે, એટલુંજ નહિ પણ શ્રી દૂલા ભગત અને મેરલા જેવા કવિઓએ તો તેમને હળવા ચામકા માર્યા હતા, અને ચારણો તો પોતાના એ માનસ-દૂષણને દર પળે કાઢી નાખવા તૈયાર હોય એમ જણાતું હતું. તેનું સ્થાન અણીશુદ્ધ રાષ્ટ્રભાવનાએ લીધું હતું, પણ એનું વાહન તો ચારણી સાહિત્ય રહ્યું છે. એ તો દૂલા ભગતે 'ગાંધી મારી દીકરી' ગાઈ જતાં જ્યારે તો સહુને પ્રતીતિ થઈ.

## તેમનાં આનંદ અને ખુમારી

એ સાહિત્યના ખીન ચારણી સરોધકો અને ઉપાસકો પ્રત્યે પણ ચારણાનું પોતાના જાતભાઈ જેટલું મમત્વ બધાનું હતું એ પણ અહીં જેવા મળ્યું.

રાજપૂતાનાના ચારણોને પણ શ્રી ઈસરદાસજી જેવા કવિ વિશે શ્રી. મેઘાણીએ પૂછેલા મારીક પ્રશ્નોથી તેમના સાહિત્યમાં આટલે સુધી ખીજઓ પણ રસ લઈ રહ્યા છે એ જોઈ એ આનંદ અને ખુમારી અનુભવતા હતા અને એ સાથે સહુ ચારણો વીખરાયા.

— 'કુલજાળ' ના ખાસ ખબરપત્રી તરફથી.

( 'કુલજાળ' તા. ૨૭-૫-૩૮ ના અંકમાંથી ઉધૂત ).

## [૪] શારદા પુત્રોનું સંમેલન

(લેખક: શ. શ. ગોકુળદાસ દ્વારકાદાસ રાયચુરા, તંત્રી 'શારદા')

ચારણ ચોથો વેદ, વણ પઢિયો વાતું કરે;

ભાષે આગમ ભેદ, જેને જીભે જોગણી.

x x x x

ચારણ, સતીને ગંગજળ, ઈંદ્ર સભા અનુમાન;

કરે કપૂરે કોગળા, શિર ખેડે લોખાન.

Charans are born poets; Poetry is their sacred inheritance. They have the poet in their souls and their hearts are ever green haunts of the poetic music.

Kedarnath Tewari, M.A., LL. B.

કાઠિયાવાડને આંગણે તા. ૨૧ મી મે ૧૯૩૮નો દિવસ વર્ગો સુધી યાદગાર રહેશે. એ દિ-  
વસે કાઠિયાવાડના પાટનગર રૂપે ઝોળખાતા રાજકોટમાં શ્રી અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનની  
બેઠક ઠાકુર શ્રી કેસરીસિંહજી જેવા સમર્થ ચારણના અધ્યક્ષસ્થાને મળી હતી. અખિલ  
ભારતીય ચારણ સંમેલનનું આ પાંચમું અધિવેશન ગુજરાત, કાઠિયાવાડ, કચ્છ અને  
મારવાડના સરકારી ચારણોની હાજરીથી સહુ કોઇનું લક્ષ્ય ખેંચતું હતું. આ સંમેલનનું પ્રથમ  
અધિવેશન પુષ્કરરાજમાં, બીજું દેશણાડમાં, ત્રીજું પુષ્કરરાજમાં અને ચોથું જોધપુરમાં  
મળેલું. જોધપુરના એ સંમેલનમાં કાઠિયાવાડ તરફથી કાઠિયાવાડી ચારણોના પ્રાણસમા  
શ્રી પિંગળશીલાલ પાપક, શ્રી ગદની મેરલા મેવાણુંદ તથા શ્રી ખેતસિંહજીએ આમંત્રણ  
આપેલું. એ આમંત્રણ આપનારાઓને પણ આ અધિવેશન આંટવું બધું સફળ થયે,  
એમ એ વખતે લાગતું નહોતું. પણ તા. ૨૧-૨૨-૨૩ એ ત્રણ દિવસો કાઠિયાવાડના ચારણો  
માટે અભિનંદનીય હતા, એટલુંજ નહિ પણ રાજકોટની જનતાને એ દિવસો સદૈવ યાદ  
રહેશે. સંમેલનો તે રાજકોટને આંગણે ધણાય ભરાય છે અને ભરાશે, પણ શારદા પુત્રોનું  
આ સંમેલન તે કાઠિયાવાડને આંગણે એક ભવ્ય પ્રસંગ હતો. ચારણોની જન્મભૂમિ મારવાડ.  
મારવાડથી તેઓ કચ્છમાં આવ્યા અને જૂનની વજાલામાંની પાંદરાળા એમની જ્ઞાનદાત્રી સંસ્થા\*  
બની, એટલે એની જ્ઞાનભૂમિ કચ્છ જન્મું. \* કચ્છમાંથી જન્મ રાવજના વખતથી ચારણો  
કાઠિયાવાડમાં આવ્યા; અને કાઠિયાવાડના એ ઇતિહાસ પ્રસિદ્ધ બડેજી રાજવીએ, એ શારદા  
પુત્રોને સન્માન્યા એટલે કાઠિયાવાડ એમની વસવાટ ભૂમિ બની. આજે ગાંધીજીના મુગમાં  
ગુજરાત ચારણોને સાંભળવા આવે જન્મું છે. અને મારા હૃદય પંદર વર્ષના અનુભવ  
પરથી હું કહી શકું છું કે, ચારણી સાહિત્યે ગુજરાતનાં શિષ્ટ ગણુતાં નરનારીઓને પણ મુ-  
ગ્ધ કરેલ છે. આજે ગુજરાત એ રીતે ચારણોને સત્કાર છે એટલે ગુજરાત એ ચારણોની  
નવી સત્કારભૂમિ બનેલ છે.

\* અહીં લેખક મહારાષ્ટ્રની ભૂલ યાચ છે. ત્રિવંગ દેશનો વસવાટ મુકા પછી  
ચારણોએ સર્વપ્રથમ સૌરાષ્ટ્ર દેશને પોતાની નિવાસ ભૂમિ બનાવ્યાનો ઉલ્લેખ મળે છે,  
અને તેથીજ રાજપૂતાનામાં આવેલ કાઠિયાવાડને ‘ચારણો રા પીઠર’ તામથી પૂજ્યભાવે  
સંભારવામાં આવે છે. નિકમની આડમી સદીમાં ચારણ જાતિમાં પ્રધાન આરાધ્યા દેવી આ-  
વડ (ઉપજાટ) તે જન્મ થયો. એ દેવીએ પોતાનું નિવાસસ્થાન રાજપૂતાના અને સિંધની  
સીમાપર બનાવ્યું હતું, તેથી સૌરાષ્ટ્ર તેમજ તેની આસપાસના પ્રદેશમાં વીખારાયેલી ચારણ  
જાતિએ એ મહારાષ્ટ્રના પ્રભાવથી પ્રભાવિત બની રાજપૂતાના પ્રદેશના પશ્ચિમી ભાગમાં  
પોતાનો વસવાટ કર્યો. અને ત્યાંથી પાછી આ જાતિ ગુજરાત, કાઠિયાવાડ અને કચ્છમાં  
આવી. એ રીતે રાવજ જન્મની પૂર્વે પણ કાઠિયાવાડમાં ચારણોના વસવાટના ઘણા દાખલા  
મળી આવે છે. જૂનની પાંદરાળા તો ફક્ત દોઢસો વર્ષ પૂર્વે સ્થાપિત થયેલી છે, અને તે  
ગુજરાત, કાઠિયાવાડ તેમજ કચ્છ પૂરતીજ જ્ઞાનદાત્રી સંસ્થા રહી છે. રાજપૂતાના ને તેમાં  
સંમિશ્રિત કરી શકાય નહિ. એ દેશમાંનાજ જોધપુરના કનકકુશળ નામે ગોરજીએ જૂનની  
પાંદરાળા સ્થાપી હતી. એટલે કે રાજપૂતાનાના ચારણોને તે તેમના દેશમાં જ સાહિત્ય જ્ઞાન  
મેળવવાની સદાયથી સવડ રહી છે.



દેશના કેટલાયે આગેવાન નેતાઓએ મારી પાસે એક માગણી કરી છે કે ગદવી મેઘાણું દ્વાર, કવિશ્રી દ્વાભાષ કાગ તથા ગદવી મેઘલા નેત્રા ચારણો ગુજરાતને ગામડે ગામડે ફરી રામકથાની પરબો ગામે ગામ માંડે તો ગુજરાતની રાષ્ટ્રભાવના ને આજે છે એથી વિશેષ જરૂર જાણ્યું અને.

એવા ચારણોની હું શોધમાંજ રહું છું, અને આજે જ્યારે આ અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનમાં કવિ દ્વાભાષ તથા ગદવી મેઘલાની બેઠકીએ ‘માતાજીની નોખતુ વાગે છે, એ ગીતને યાગ્ય’ ત્યારે ચારણોએ પ્રાચીનકાળમાં દેશની ને સેવા સાધી છે એમાં આ નવયુગમાં આવી ચારણ બેઠકીઓ રાષ્ટ્રની સેવા સાધી ચારણ જ્ઞાતિને ઉજ્જવળ બનાવશે એ મારા સ્વપ્નાઓ સાચાં પડતાં લાગ્યાં.

રાજદરબારના એ કવિઓ આજે લોક દરબાર જગાવી રહ્યા છે, નવયુગની પ્રેરણાની ઝડી એમની ઝમકદાર ભાષા અને જોરદાર વાણીમાં વરસાવી રહ્યા છે. એને માટે શબ્દોનાં વણનો અધૂરાં છે. એતો લોકોએ સાંભળતું જોઈએ.

અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનમાં કેટલીક વિશિષ્ટતાઓ હતી. એમાં ખાસ કરીને શબ્દસૂતાનાના ચારણ અધુઓનું જ્યારે મારી સાથે મિલન થયું; ત્યારે એક વિશિષ્ટતા પહેલીજ વખત જીવનમાં અનુભવી. ચારણો જિંથી જગવણી લઈ આગળ વધે એ જોવાના અભિલાષ તો મને વર્ષોથી છે. પણ ચારણ ચારણ ન મટે એ જોવા માટે હું આતુર રહું છું. મારવાડના શિશિત ચારણ ભાષાઓને જોયા તો એમાં આજની હંચી જગવણીની જ્ઞાનગંગા અને ચારણોની ચારણ તરીકે વિશિષ્ટતાઓની રસગંધાના સંપ્રભ જોઈ મારી આંખો ફરી છે.

મારવાડ અને રજપૂતાના મળી લગલગ સત્તર ચારણો આજે જોઈએ છે. એમાંના ચાર ખી. એ. એમ. એ. એલ. એલ. ખી. ચારણો રાજકોટના આ સંમેલનમાં ભાગ લેવા આવ્યા હતા. ચારેની પ્રતિભા, ચારેનો જ્ઞાતિપ્રેમ, ચારેની કવિતા અને ચારેની સાહિત્ય લક્ષિત અનુભવવાની આવી સુંકર તક મને પહેલીજવાર સાંપડી.

શ્રી સત્યદેવ આદા, ખી. એ. એલ. એલ. ખી. મારવાડના ગામ પચિટિયાના મૂળ રહીશ છે. ૨૩ વર્ષની જિંમર છે. પતિયાળા રાજ્યના માનીતા ઇતિહાસકારક ઠાકુર શ્રી હિં. શોરસિંહજીની સલાહથી આજે તેઓજ “પશ્ચિમ ભારતના ઇતિહાસમાં ચારણોનું સ્થાન” એ વિષે હિંદુ વિશ્વ વિદ્યાલયની એમ. એ. ની ડિગ્રી માટે થીસીસ લખી રહેલ છે. અકબરના જમાનામાં પ્રસિદ્ધ રાષ્ટ્રીય સાયર તરીકે પંકાયેલ કવિ દૂરસાજ આદાની બારમી પેઢીએ તેઓ થાય છે. એમના પિતા મારવાડના પ્રસિદ્ધ કવિ ઠાકુર શ્રી શંકરદાનજી આદા અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનના એક સભાપતિ હતા. એમના આ સ્વપુત્ર સત્યદેવજી આદા કાશીમાં રાજસ્થાન એસોસીએશનના મંત્રી છે.

શ્રી જયકર્ણજી બારહડ, ખી. એ. એલ. એલ. ખી. એડવોકેટ મારવાડમાં સોજત ગામે વકીલાત કરે છે. એમના પિતા શ્રી શકિતદાનજી બારહડ ચારણ જ્ઞાતિમાં સરકૃતના અદિતીય વિદ્વાન તથા કવિ તરીકે પ્રસિદ્ધ હતા. શ્રી જયકર્ણજીની ઉંમર ૩૦ વર્ષની છે, જગીરદાર છે, વકીલાત કરે છે અને કવિતાને પણ આરાધે છે.

શ્રી આધદાનજી બારહડ ખી. એ. એલ. એલ. ખી. હિંદુ વિશ્વ વિદ્યાલયના પહેલા વર્ષમાં પ્રવેશ છે. જોધપુરમાં આજે ગ્યાયાધીશ છે. મારવાડ જગીરદાર સભાના તથા મારવાડ

પ્રાંતીય ચારણ સંભાના મંત્રી છે. ૨૬ વર્ષના એ જુવાને કોલેજની કારકીર્દીમાં પણ જાહેર સંસ્થાઓના મંત્રી તરીકે નામના મેળવેલ છે.

શ્રી શુભકર્ણુજી કવિયા એમ. એ., એલ એલ. બી. દિંદોના મહેતા એમ. એ. છે, એલ. એલ. બી. માં ફર્સ્ટ ક્લાસ તથા એમ. એ. માં સેકન્ડ ક્લાસમાં આવેલ છે. 'ડિંગ' સાહિત્યમાં લાક્ષિ કાવ્ય' એ યોસીસ એમણે એમ. એ. માં લખી હતી. દિંદુ યુનિવર્સિટીના રિસર્ચ સ્ટીડર તરીકે એમનું નામ સુપ્રસિદ્ધ છે. ૨૪ વર્ષની એમની ઉંમર છે. કવિત્વ ક્ષેત્રે છે અને બોલવાની દૃઢ પણ સારી છે. અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનના તેઓ સહકારી મંત્રી છે. ઉત્સાહી અને યુવાનીને શોભાવનારા છે.

આ ઉપરાંત બીજા પાંચ એલ એલ. બી. અને સાત ગ્રેજ્યુએટો મારવાડમાં છે. એ મનો મરિચ્ય સાધવાના પણ અજિજ્ઞા છે. આ બધા લાઇઓને પચાસ હજારથી માંડી નાની રકમની જગીરો છે. મારવાડનાં લગભગ ૩૦૦ ગામેમાં કુલ પાંચ લાખની ઉપજ આ રણેને મળે છે. મારવાડમાં ચારણોની વસ્તી પંદર હજારની છે; પણ એ લોકોમાં લાખેકો ધારણ માગે છે. માગું એ એમના શબ્દકોષમાં નથી. ચારણને માગણ તરીકે ઓળખનારાઓ ચારણ જાતિને પિઝાનતાજ નથી એમ કહી શકાય. કમનસીબે કાઠિયાવાડ-ગુજરાતમાં ચારણોમાંના કેટલાકો મોતામજું બૂટ્યા એટલે આજે એની માગણમાં ગણતરી થઈ. ચારણોને તે રાગઓ ગામ ગીરાસ આપતા અને શીમતો એની વિદ્યાને પોષતા. ચારણોની એ ઉચ્ચ સ્થિતિનો ખ્યાલ મારવાડના ચારણો આજે આપી શકે છે.

આ સંમેલનની વિશિષ્ટતાઓમાં રાજકોટની ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજની મુખ્ય આચાર્ય શ્રી ડી. એન. દવેનાં ચારણોની ઉપતિ અને સ્થિતિ વિશેનાં વિદ્વાત્કાર્યાં લાખેકો મુખ્ય સ્થાન લાભ્ય છે. જૂનાગઢના માણ પોલીસ સુબી. વીરના વરેલા શ્રી છેલ્લાંકરબાબ દવે, શ્રી જવેન્દ્ર્ય મેઘાણી, શ્રી ત્રિભુવન ગૌરીશંકર વ્યાસ અને માસ્તર વસંત વગેરેનાં પ્રવચનો, કાગો અં સંગીત પણ આ સંમેલનની ઉપયોગિતામાં વધારો કરનાં હતાં.

ખાસ કરીને બે દિવસ સુધી રાત્રે દાવરાની જગેશી રમજીત. તેમાંય કવિશ્રી દૂલાલાલ તંથા મદરી મેઘલા, તંથી મેઘાણીની અને કવિશ્રી ત્રિભુવન વ્યાસ તથા માસ્તર વસંતની પ્રસાદ તો રાજકોટ વર્ગો સુધી યાદ કરશે.

આ સંમેલને કાઠિયાવાડ, ગુજરાત, કચ્છ અને મારવાડના ચારણોને સંગઠિત બનાવ્યું છે. ચારણ જાતિના કેટલાક સામાજિક દિવાળે પણ સુધારણા માગે છે. આ સંમેલને સાહિત્યની ચર્ચા સાથે સમાજ સુધારણાને પણ પ્રગથ રચે છે.

કાગોમાં 'ચારણ' ત્રિમાસિક મત્ર પ્રગટ કરવાનો ફરાવ અતિ જરૂરનો છે. ચારણો વિં સાચી સમજ જનસમૂહને આપવા માટે આવા પત્રની જરૂરિયાત છે. મહાગુજરાત ચારણી સાહિત્ય અને ચારણોમાં રસ લેવું થયું છે, એવે વખતે આવું પત્ર જરૂર આવકારદાયક થઈ પડશે.

આ સંમેલનના અધ્યક્ષ હાકર શ્રી કેસરીસિંહજી એક રાષ્ટ્રીય ચારણ તરીકે મશહૂર છે એમના નેતૃત્વ નીચે ચારણો રાષ્ટ્રધર્મને સ્વીકારે એવા અભિજ્ઞા આજે સહુ કોઈ સેવે છે.

—'શારદા' જુન ૧૯૩૮ માંથી ઉદ્ભૂત

ગઇ તા. ૨૧-૨૨-૨૩ એ ત્રણ દિવસો રાજકોટ માટે સંઘ સમરણમાં રહે તેવા નોંધવા જેવા હતા. એ દિવસોમાં અખિલ સાર્વત્રીય ચારણ સમિતિનું પંચમ અધિવેશન ભરાયું હતું. જેમાં કચ્છ, કાઠિયાવાડ, ગુજરાત, મારવાડ અને રજપૂતાનાના સરસ્વતી પુત્રો-સાચા ચારણો એકઠા થયા હતા. આ સમિતિને કાઠિયાવાડમાં લાવવાનું માન સ્વાગત પ્રમુખ શ્રી રામદાનજી ટાપરિયા, શ્રી દારણભાઈ મહેડુ, લીંબડીવાળા શ્રી રાંકરદાનભાઈ, શ્રી દૂલાભાઈ કાગ, શ્રી પિંગરીભાઈ પાયક, શ્રી મેરૂમા-મેઘાણુંદ એ સર્વ કાઠિયાવાડના આગેવાન શારદા પુત્રોને ફાળે ગય છે. અને એ સમિતિની યંત્રણી વ્યવસ્થા કરવાનો યથા પણ એજ સોરઠી શાયરોનેજ છે. એ સોરઠી કવિઓ કાઠિયાવાડનું પરમ ધન છે. એમણે અખિલ ભારતના ચારણોને કાઠિયાવાડમાં નોતરી સાચા ચારણી સંસ્કારનો દર્શન સહુને કરાવ્યાં છે. એટલુંજ નહિ પણ ચારણો એટલે 'ખુશ-મંતપોર' એ આદેષ' મૂકનારાઓ ખોટા છે, એ સિદ્ધ કરી બતાવ્યું છે. જેણે જેણે આ સમિતિમાં હાજરી આપી છે એ અમારી સાથે પોતાનો સર પુરાવી જરૂર કહેશે કે, ચારણોમાં યુગ કવિ, રાષ્ટ્ર કવિ યજ્ઞ શકે તેવા સમર્થ શારદા પુત્રો છેજ.

‘શારદા’ ના તંત્રી મહાશયની વિચારનોંધ. ‘શારદા’ જુન ૧૯૩૮.

## સાહિત્ય અને જાતિ સેવાનો તપસ્વી.

લેખક:—શ્રી હવણસાલ નાથાભાઈ વરસડા, ભાદરવા.

સરસ્વતી, લક્ષ્મી અને ઉચ્ચ અધિકાર જેમની સેવામાં હાજર હતાં છતાં જેઓ સ્વાર્થનું ધાવી પૂતળું બન્યા નહોતા : જેમણે સા વિદ્યા યા વિમુક્તયે ના મંત્રો ઝીલી સાહિત્ય અને આત્મ સમર્પણ ધર્મ અદા કર્યો હતો : જેઓ પ્રારબ્ધ તેમજ સ્વપુરુષાર્થથી પ્રાપ્ત થએલ જીવનનાં મીઠાં ફૂલો બીજાઓને વહેંચી શ્રેયસ્તા ભાગીદાર થયા હતા : એટલુંજ નહિ, જેમણે પોતાના દેશ અને જાતિ બંધુઓના કલ્યાણ માટે-સ્વામિ ધર્મ માટે-સ્વ સંસ્કૃતિના સર્વનાશને અટકાવવાને માટે-રાષ્ટ્રની અધિવેદીપર પોતાના સર્વસ્વની અને પ્રાણની આહુતિ આપી હતી : જેઓ સુખ ભોગવવાને સર્જ્યાં હતાં છતાં રાષ્ટ્રની ઇજ્જત અને આગદી માટે દુઃખના પહાડ નીચે દબાયા હતા; એવાં પવિત્ર પુરુષોના વંશમાં જન્મ થયો એ પણ એક પૂર્વના પુરુષનું ગ્રયણ પ્રમાણપત્ર છે.

આતું પ્રમાણ પત્ર ધરાવનાર એક માનવંત મહેમાન બહદુર ગુજરાતને આંગણે આવવાનો હતો. તેનાં દર્શન માટે ગુજરાતની ચારણ જનતા આતુર નયને રાહ જોઈ રહી હતી. એક તરફ અખિલ ભારતીય ચારણ સમિતિનું પંચમ અધિવેશન ગુજરાતમાં ભરાવાનું હતું. તેમાં પ્રમુખ તરીકે તેને હાજરી આપવાની હતી, બીજી બાજુ ચારણ દેવી બહુચરાજીના પ્રસ્તનની ચર્ચા માટે શ્રીમંત ગાયકવાડ સરકાર વિજ્ઞાપતથી પંધારે કે તેના અધ્યક્ષપણ નીચે વિદ્વાન ચારણોનું એક ઉપયુક્ત વડોદરામાં આવવાનું હતું એટલુંજ નહિ, ચારણ જાતિને તવ યુગના સંદેશ સાથે અતીત સ્મૃતિની યાદ આપવા માટે સમિતિના મુખ્ય પત્ર ‘ચારણ’ ને પુનર્જીવિત કરવાની પણ તે તૈયારી કરી રહ્યો હતો. સર્વ કાર્યક્રમ ગોઠવાઈ ગયો હતો; ગુજરાતના ચારણ યુવાનો પોતાના યુવક ધર્મના ત્રણ અદા કરવાની ફરજ સમજી તેની સેવામાં હાજર રહેવા અંધીરા બન્યા હતા; પરંતુ કાળની ગતિ વિચિત્ર છે ! અચાનક એ મહા મોંઘા નર

રાત્રી કાકુર કિશોરસિંહજી સોદાનો હૃદયની ગતિ, અંધ, પડી નેત્રાથી દેહાંત, થયાના માહા સમાચાર આગ્યા ? બિગળી વેગે ઉત્સાહના વાતાવરણમાં ગમગીની છવાઈ ગઈ : મનના મનોરથ મનમાં જ રહી ગયા, વખત વીતી ગયો ! સ્વાગતને બદલે એને અંગલિ અર્પવાનો હુ.બદ પ્રસંગે આવ્યો !

એ નર શાફેલનો જન્મ વીરશ્રુતિ મેઘાડ. (રાજસ્થાન) માં થયો હતો, પ્રથમ અલ્પર સ્ટેટમાં અને છેલ્લાં પંદરેક વર્ષથી તેઓ પતિયાળા રાજ્યમાં ઇતિહાસ કાર્યાલયના અધ્યક્ષ તરીકેનું સ્થાન શોભાવતા હતા. મોટા મોટા રાજ્ય મહારાજાઓ અને વિદ્વાનો સાથે તેઓ મૈત્રી ધરાવતા હતા. સંસ્કૃત અને અંગ્રેજી સાહિત્યના શ્રેષ્ઠ ગ્રંથકાર અને કાવ્ય શાસ્ત્રના પરમ મર્મજ્ઞ વિદ્વાન તેમજ ડિગ્રેડ, ગ્રગભાષા અને ખડી બોલીના દિવ્ય પ્રતિભાસંપન્ન કવિ હતા. ઇતિહાસ એ તેમનો ખાસ વિષય હતો, ઇતિહાસના વિદ્વાનોમાં તેમનું ખાસ સ્થાન હતું. કાળના કાળની નવાનૂનીઓ તેમણે જોઈ હતી. તેમના વિચારો અને દિશા—સૂચનો અગ્નિપરીક્ષામાં સિદ્ધ થયેલ શુદ્ધ મુરલું જેવાં અનુભવસિદ્ધ હતાં. રાષ્ટ્રની આગલી માટે તેમનો આત્મા તણસતો હતો. રાષ્ટ્રભાવથી પ્રેરિત બની કેટલાંક વર્ષ પૂર્વે તેમણે ‘નર રાજસ્થાન’ પત્રનું સફળ સંપાદન કયું હતું. તે વખતે તેમના વિચારો રાજ્યોની અખતૈમાં ઘણા કડક હતા, તેઓ વૃદ્ધ થયા હતા, પરંતુ તેમનો આત્મા ‘કિશોર’ હતો. તેમનું નામ પણ ‘કિશોર’ હતું અને તેમની પવિત્ર ભાવનાઓ ‘કિશોરજ’ હતી. તેમની કુશીનતા માત્ર ‘નામની’ ન હોતી; પરંતુ ઉદયપુરના શિંદુમુર્ખ મહારાણાના પૂર્વજોના આક્રમક ધર્મ વખતે અગ્ર સાથ દેનાર, સ્વધર્મનાં કવચ પહેરી આત્મસમર્પણ ધર્મમાં તેમની સાથે સાથે અભિદાન બનનાર આહુતિ રૂપે હતી.

ધર્મરક્ષાનાં પણ લેનાર : રાષ્ટ્રની વેદી ઉપર સમિધ બનનાર કુળમાં આવો એક ‘કિશોર જન્મે તેમાં નવાઈ શી ? કારણકે એ સોદા કુળમાં કર્મવીર યોદ્ધાઓ, આગલીના પ્રેરક સંદેશો આપનારા કવિઓ અને સર્વસ્વનો ભોગ આપનારા કાવિવાદીઓ તેમજ દેશભક્તો પેદા થયા છે. આજે પણ એમાંના એક પુરુષ દેશભક્ત કાકુર શ્રી કેસરીસિંહજી (કાકા) હયાત છે, તેઓ એ કિશોરના મોટાભાઈ સાથે.

જે કુળમાં આત્મસમર્પણનો ધર્મ વહેતા જળધોધ જેવો હલુ નજરે જોવામાં આવે છે; જ્યાં દેવી સપત્તિના ઝરણાં સમા રાતની તૃણ છીપાવનાર, સંસ્કૃતિની વાડીને નવપદ્મવ બનાવનાર અમર પુરૂષો આજે પણ વિદ્યમાન છે. એવા પ્રાચીન કાળના ચારણોના પ્રતિકસમા યુગજૂતા જોરવને સાચી રાખનાર, વિદ્યા અને સંસ્કારના ખગ્નના રૂપ પવિત્ર કુળમાં એ વિદ્યાધર કિશોર જન્મ્યો હતો. તેનું જીવન પણ કેનું ‘કિશોર’ હતું !

આજે મૃત્યુબાદ તેનો વાસના દેહ યુવાનોના હૃદયમાં ત્રિલુપ્તનો પ્રકાશ અર્પતો વિદ્યમાન છે. એ કર્મવીર હતો; આત્મમગ્ન અને નિર્લયતાની એ પ્રતિમા સમેા હતો. મૃત્યુનો એને ડર ન હોતો; એને પક્ષપાત અને વ્યસનનો અણુમો હતો. એક અમીરને જાણે તેનું ખંભીર ધરાવતો હતો; જતાં તે મોટાદોના ધર્મંડી છુરખો પહેરી ફરતો ન હોતો. ‘વિદ્યા’, ‘લક્ષ્મી’ અને માન મરતખો એને વર્ષા હતાં જતાં રેણ અને દંત્રીપણું એ દાખવતો નહિ.

એનું જીવન સાદાઈ અને માનવપ્રેમથી ભરપૂર હતું. વિદ્વાન હોવા છતાં તેનામાં નમ્રતા હતી. આગ્રહ પાસેથી પણ જ્ઞાન લેવાની એને ધમત્ત હતી. એના મનોરથો મોટા હતા; આશાઓ ઉત્તમ હતી. યુગને ઓગળવાની તેનામાં આવડત અને સમાજને દોરવાની શક્તિ હતી. એ સમાજમાં નેતા થવા માટે સમર્થો હતો આવતા યુગને અને ભૂતકાળને બેનારી દિવ્ય પ્રતિમા એના માંડેનાકમાં ઊભેલી હતી. વર્તમાનનો સદુપયોગ કરવાની એની કળા આકર્ષક અને દુઃખીને દિશાસૂચક તથા મુખીને આશાની ફૂલો કળી વાડી સમાન હતી. જીવનથી કંટાળેલા—સમાજની ચક્રકોમાં પીસાયેલા વર્ગને માટે તેને દ્રવ્યમાં ઊંડી સદાનુશ્રૂતિ હતી. એને યુદ્ધ માનનાર વર્ગ પ્રત્યે પણ એ સમાનતાનો દાવો રાખતો હતો. યુવાનોનો એ સાચો મિત્ર અને સહાહકાર હતો. એની દ્રષ્ટિમાં ગરીબ અને તવંગરના બેદો ન હોતા. એની આંખમાં અભિધારા હતી.

રાજ્યોની સિંહાસનોની જામણી બૂળ અને એસનારો એ માણસ, વિદ્વાનોની સભામાં ઝગમગ કરનારો એ વ્યક્તિ સ્ત્રી સમાજ અને દલિલોનાં ઊંડી હાથ લખાં દુઃખો સાંભળી તેને માટે ખુશી દલીલો કરતાં સંકલ્પિતો નહિ. ત્યાં એને કુલીનતા અને નિદ્રતા વિમ્મરૂપ રહી ન હોતાં; કારણકે તે સત્યનો હિમાયતી હતો; ઇશ્વરદાત્ત શુદ્ધિનું અનુશીલન કરનારો હતો; તેનું ખૂન કરનારો ન હોતો. વિદ્વાન હોઈ વિદ્યાને વેચનારો ન હોતો. તેનો આત્મા ઊંધતો ન હોતો—જાગૃત હતો. તેના પરિચયમાં આવનાર સર્વને તે જાગાડતો હતો—વ્યક્તિસ્વાતંત્ર્યનો મૂલ્ય સમજાવતો હતો. એ સત્ય જ્ઞાન અને શુદ્ધ પ્રેમ ઉપર ‘પાગલ’ બનનારો શુદ્ધ ‘આદર્શતત્વ’ હતો.

એની મનોકામના ઇશ્વરે આપેલી શક્તિના સદુપયોગ દ્વારા સંસારમાં રહી કર્મયોગ સાધક શ્રેયમૂળે પથે દોરનારી હતી. સમાજની મુક્તિમાં પોતાની મુક્તિ એ જ્ઞાનદૃઢ કિશોર ઇચ્છતો હતો. સંસારના સળગતા પ્રશ્નો પ્રત્યે ઉદાસીનતા એની ઇશ્વરના દરબારમાં પોતાના માટેજ મુક્તિનો એક વગાવવા આગળ દોડનારાઓમાંનો તે ન હોતો. તેને વિમાનમાં બેસી ૪૮ ઊંડી જવાનો મોહ ન હોતો; કારણકે તેને કર્મયોગના નાવમાં બેસી નિષ્કામ સુકની અને સહુની સાથે પોતાનો ન્યાય માગવો હતો. એકલી મુક્તિ એને અપતી ન હતી. એને તો શ્રેષ્ઠ કિશોર અને વરુણેય કુટુંબકમ્ ના આદર્શો સિદ્ધ કરવાના લડકોડ હતા. સર્વભૂત દિત્તેના: નો એ પ્રચારક હતો. એ સિદ્ધ ન હોતો પણ આત્મવત્ સર્વભૂતેનું ની ભાવના જીવનમાં ઉતારી વ્યાવહારિક વેદાંતના પોટો સમાજને લાણાવનાર આદર્શ સંસ્કૃત્ય હતો. એના સ્વર્ગવાસથી આજે રાજસ્થાનની વીરશૂનિએ એક નરત્ન અને ચારણ જાતિએ પોતાનો યુગ પુરૂષ ગુમાવ્યો છે ! પાર્થિવ શરીરનો ત્યાગ કરી આપણી પાસેથી એ તેજોમય પ્રદેશની લાંબી મુસાફરીએ ગયો છે ! સમય ધર્મ સમજ એણે જન્મ દષ્ટને જેનું અગિયાર માસનું અયપણુ પણ ‘હોન હાર ચિરવાનકે હોત ચિકોને પાત’ ની પેં દીપાવર્યું હતું; અને એને દસ વર્ષની લાંબી ઊંધ લેવા દીધા પછી જાગૃત કરી ઉછેરવાના વધુ લાડકોડ હતા, તે ‘ચારણ’ ના પુનર્જાગરણ પ્રસંગે—તેના પ્રથમાંકમાં તેના એ સ્વર્ગગત જનકને અંજલિ અર્પી પરમાત્મા એ દિવ્યાત્માને વધુ દિવ્ય તેજ અને શાંતિ બક્ષો એવી પ્રાર્થના પૂર્વક વિરંમું છું.

અને કવિઓને છ'છેડયે શું પરિણમે ઓના ઉત્તરો પે-તમ ઇતિહાસમાં ઓછા નથી. તમ ફરતાંયે અધિકા જગ જાણીતો ફિરસો ફિરદૌસીનો છે. આજ એક હજાર વર્ષેય ફિરદૌસીનો કસીદો શાહનામાના જેટલેજ જગત્ પ્રખ્યાત છે.

પણ આપણાજ દેશે કવિવરો લોકપ્રીય હતા કે દુનિયાના દેશ દેશમાં ? જ્યાં બુદ્ધિનાં તેજ પહોંચતાં નથી એ હૈયા ગુફાના દિશા લોકમાં, જ્યાં સુરજનાં ફિરજો પ્રવેશતાં નથી એ અગમ નિગમના અગોચર દેશમાં કવિઓ કાવ્ય વિદારે સંચરે છે. 'સ્વયં' પરબ્ધનું એક વિશેષણ કવિ છે: કવિ પુરાણં અનુશાસિતારમ્ વિ- જ્યાં જ્યાં માનવી હ્રદય છે, ત્યાં ત્યાં એ હ્રદય રાજવીનાં રાજ્ય છે. હ્રદય શ્વેતો હોય એ કવિઓને ઉપદાસે. દુનિયાના દેશ દેશમાં કવિઓ પ્રજાના મુગટ મનાતા. કવિ એટલે પ્રજાની પ્રેરણા.

ગ્રીસમાં હોમરયુગથી લોક સમારભો કવિ લક્ષકારથી ગાજતા. ઇસ્લામી સંસ્કૃતિ કવિ મેળાવડાઓ-મુશાવરાઓથી ગોરવવંતી હતી. ઉજ્જયિનીમાં કવિવરને પટ્ટબંધ બંધાવી, રથમાં પધરાવી, નગરીની વિજય યાત્રા કરાવીને સન્માનતા. ચિટનમાંનો એક દાખલો જરા વિગતેથી નોંધો.

ખયા સૈકાનીજ વાત છે: ચિટનના રાજકવિ વડંજવર્ધી કે રાજકવિ ટેનીસન, જ્ઞાડસ્ટન કે વિક્ટોરિયાથી લોક હૈયે નીચેને પાટલે વિરાજતા નહોતા. એક સમાનો યોગ હતો ને જ્ઞાડસ્ટન ને ટેનીસન એક ઠાંકા આગમોટ બારે કરીને ટ્રેટચિટનને કાઢે કાઢે તખ્તિયતની શોધમાં સાગર સફેરે નીકળ્યા. ફરતા ફરતા એ મહાપુરો સ્ટ્રાટ્સેડના જ્ઞાસગો શહેરમાં જઈ ચડ્યા. જ્ઞાસ-ગોની જનતાએ આંગણ આપ્યા મહાપુરોનો સન્માન-સમારંભ ઉજવ્યો, અને બ્રિટિશ મહા-રાજ્યના રાજમંત્રીને ને રાજકવિને સમાનપત્રો સમર્પ્યા, બન્ને મહેમાનોની વતી ઉત્તર આપવાને બ્રિટિશ મહારાજ્યના મંત્રીશ્વર ઊભા થયા. જગત્-ઉચ્ચ પાયલોના વિધાતા એ મંત્રીશ્વરે શું કહ્યું ? જાવ ને વાંચો, ઇતિહાસને પાને લખેલું છે કે પચીસ-પચાસ વર્ષે જ્ઞાડસ્ટનને પ્રજા ભૂલી જશે, ને પૂછશે કે જ્ઞાડસ્ટન કેણુ હતો, ને એણે શું ક્યું ? પણ આ આપણા કવિવર ટેનીસન: એમના કાવ્યગ્રંથો તો અંગ્રેજી ભાષાના જીવન-તારોમાં ચૂંધાયેલા છે, અંગ્રેજી ભાષા જેટલા અમર છે.

ગ્રીસ ને રોમના સામ્રાજ્યો આજ નથી; પણ ગ્રીસ રોમના કવિવરોનાં સામ્રાજ્ય હજી આચર્યાં નથી. વિક્રમ કે દર્શનનાં ચક્રવર્તીત્વ આજે ક્યાં છે ? પણ કાલિદાસનાં ને બાણનાં ચક્રવર્તીત્વ જગત્-વ્યાપેલાં છે.

રાજપુરોના રાજમુગટ નાશવંત છે: કવિઓના કાવ્ય-મુગટ ચિરંજીવ છે. આજે કેણુ સજીવન છે ? મદમ્મદ વિગ્નવીનો રાજમુગટ કે ફિરદૌસીનો કાવ્ય-મુગટ ? પૃથ્વીરાજનું દિશી-પતિત્વ કે ચંદનું કવિતા સ્વામિત્વ ?

ઉદ્યાચ્ચે ચડી મહાપ્રજાએ કવિ-પ્રેરણાને પ્રજા-મુગટ પહેરાવે છે.

બારોટો અને ચારણો બન્ને દેવીપુત્રો છે, મારે મન તો એક મર્મની બે ફાડ છે. રોટો ને ચારણો દાનિપવટની વાડીના માળાઓ હતા. રાજદેહના બે પાયસ્તંભ હતા. આજ માળા ચિના વાડીઓ સુકાઈ ગઈ; પાયસ્તંભો પડી ગયે દેહસ્તંભ પડી ગયો.

અને તમારો કાવત-પ્રવાદ ? મંગા-પ્રવાદ સમો તમ કવિત-પ્રવાદ વદતો. શિમાદિના અડકો ઉપરથી પડતા ધોધસમો ગાજતો; કનખળ અને વનલક્ષ્મીનાં સોદાગી રૂપ ધરતો; વારા-

શુરીને ઘાટે સાગર—ગંભીરો વહતો. ચંદ રાસો એટલે માત્ર વીરરસનું મહા કાવ્ય •  
 વીર—કર્ણુ—સૂંગાર—અદ્ભુતના ઓધ વહતું મહાકાવ્ય. સૂરદાસ, કેશવદાસ, બૂખણુ  
 મતિરામ, દર્શા આદો,<sup>૧</sup> કર્ણુદાન,<sup>૨</sup> અભાનંદ,<sup>૩</sup> એ અને એવા તમારા ગ્રંથો અં  
 હતા. પ્રતીજ્ઞાગર તે તમશૈલીનો, મધ્યયુગના ગુજરાતનો મહાગ્રંથ. ગુજરાતી સાહિ  
 ત્યે છે ને ત્યાં મધરાતે માવદાનજી સદ્ગુરુ અભાનંદ સ્વામીનો રેણુકી છંદ કપાવે  
 છે ત્યારે એ સાહિત્યમંડળ, સુધર્તેશમાં ચંદ્રતેજ અંખવાદ જાય એમ અંખવાય છે.  
 જંગ જનમે ત્યાં તો રસ, માધુર્ય ને પ્રસાદ હોય તે જીતે.

યહી વાન સોહાન ! રામ રાવન હથેલો !

ઉધડકેજ એ છપ્પ ગળન ધડાકા સમે ગાજતો નથી ? ધોડીવાની છત્રગો  
 જતા ચંદના બૂજંગપ્રવાત ને મોતીદામ નવ કવિતામાં જાગ છે ?

શિવાજી ન હોત તો સુન્નત હોત સવકી !

એવા ઇતિહાસ ગાજતા કાવ્ય બોલની કવિતા કથાકે તો લખાવ. કડીગ !  
 હુમ નિશાનડકા ગાંજે એમ તમ કાવ્યસ્તોત્રો ગાજતાં, તે પ્રગ હિંચે કંઠા વાગતા

કવિ ગંગ કહૈ, સુતુ શાહ અકબર !

માથે ઢિપૈ ન મમૂત લગાયો !

એના વિધાતાના આંકડાના અક્ષરો કેટલાકે ઘુંટયા ?

ઘણ રવ પટ ફરર ઘરર પટ ઘૂઘર,

રંગમર સુંદર દયામ રમે,

જિય રંગમર સુંદર દયામ રમે !

એક સફીયા ગુજરાતભરમાં ગાજતો, લાડુ ખારાટ (શ્રી અભાનંદ સ્વામી\*)-  
 કીનો કવિત રણુકા ગુજરાતીમાં જિતપો છે ખરો ? વૈરાગ્ય પણુ તમારોજ છે.

પેટ કટારી રે કે પહેરી સ-મુખ આલે,

સાચા શુરા રે, જોનો વેરી ઘાવ વખાણે.

સદ્ગુરુકા વંદા વ્રજાનંદ સાચ કહંદા સવ હંદા. એના બોલંદિયામાં  
 દળ જોવા નથી વાગતા ?

સીત હરી દિન એક નિસાચર,

હંક હરં દિન પેસોહિ આયો !

; એક દિના દમયંતિ તજી નલ,

એક દિના ફિરહી મુલ પાયો. ||

એક દિના ઘન પાંડવ ને અહ.

સોચ પ્રવીન ! કહ્યું ન કરો,

કરતાર યડો વિધિ खेल रचायो ॥

પ્રવીણસાગરના એ સરૈયાએ આચાર્યાનાં છાંટણાં છાંટી કેટ કેટલાંને સજીવન કીધાં છેઃ  
એતના પાછ છે.

તમારી કટારોએ તો રાસા શોધાળ્યા, રાસમાળા લખાવી, ગુજરાતનો ઇતિહાસ સજીવન કીધો, ફારગસને પ્રેરણા પાછ ગુજરાતનો ટોડ સરળ્યો.

જ્યાં સતીમાતાને સત ચડતાં, જ્યાં લગ્નાણીઓ બેઠર ખેલતી, જ્યાં ક્ષત્રિય બાપાઓ કેસરિયાં ધૂમના, ત્યાં ત્યાં દેવીના બિરદાઇઓનાં ગીત-રણશીંગડાં વાગતાં. મરણને તમે હથેળીમાં લઇ ફરતા. કસુંબો પીવો ને મૃત્યુ પીવાં તમારે સરખાં હતાં. હાહાકારી કરવી એતો તમારનમાં આજ પ્રત્યેક સજીવનની સુગન્ધતા છે.

ब्रह्मादपि कठोराणि, मृदुनि कुतुमादपि ।

વજ્રથી કઠોર ને કૃત્રથી કુમળા તમે હતા. કાળના ખડકો તમે હતા. કાળની ફૂલ-વેણી જે તમે હતા, વીર ધૂંટતા એટલો શૂંગાર ધૂંટતાઃ વૈરાગ્ય ધૂંટતા. એટલો ભક્તિરસ ધૂંટતા. પ્રજાના, સૂર્યે તમે હતા ને ચંદ્રે તમે હતા. તવખંડ સમા નેવે કાબરસમાં તમારી પગલીઓના પડછંદા પડતા.

—‘પ્રજાખંધુ’ના તા. ૧૮-૪-૩૮ ના અંકમાંથી ઉદ્ધૃત.

ભક્ત કવિ દૂલાભાઈ ભાયાભાઈ કાગ :

લેખક : શ્રી. ગોકુલદાસ દ્વારકાદાસ રાયચુરા

ભગવત ક્ષિપ્રિયો ભાગ, કોયલ કઠો ૨૬ ક્રિયા;

ચારી-કેવી વાણી કાગ ! દુનિયા વશ લી દૂલિયા !

x x x

બોલે કોયલ ખાગ, મીલ ભર્યો સુણવે મિનક;

ચારી-કેવી વાણી કાગ ! દુનિયા સુણ લી દૂલિયા !

x x x

ગોવિંદ નિજ કુલકો ગહત, રખત રાખ-અતુરાગ;

કૃષ્ણાર્પણ દિય કરત તુ, કાગ ! અહો બડભાગ.

મારવાડના મુખ્યિદ આરણ્ય કવિએ: શ્રી મુખેશ્વરનાથ વણસર તથા શ્રી ઇશ્વરનાથ આશિપાએ સોરઠી શાયર ભક્ત કવિથી દ્વાભાષ ભાભાભાષ કાગ મારે દૂદા લખનાં લખનાં



ઉપરની રિશ્તની વાણી ઉચ્ચારી છે.\* એક સમયે સોરડી ચારણ કવિની પ્રશંસા એમના માર-વાડનાં જાતભાઈઓ તરફથી આ રીતે થાય એ અનેક રીતે શોભાસ્પદ અને ગૌરવભર્યા પ્રસંગ બન્યા. હજુ હમણાંજ રાજકોટમાં મળેલા અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનના પ્રસંગે માર-વાડના ચારણ વિદ્વાનોએ કવિશ્રી કાગની પ્રશંસા કરતાં એમને 'કાં ઇસરા કાં પરમેશરા' એ શબ્દોથી અમર અનેલા ભક્તકવિ ઇસરદાસજીના અવતાર તરીકે ઓળખાવી સોરઠના એ સંત કવિની સાચી પિછાણ કરાવી હતી.

અને ખરેખર કવિશ્રી દ્વાભાઈ કાગની પિછાણ સમગ્ર મહાગુજરાતને થાય એ અતિ જરૂરનું છે. આજના યુગના એ સમયે ચારણ કવિ છે. ચારણી ભાષા પર તો એમને પ્રભુત્વ હોયજ, હિંદી અને વ્રજભાષાનાં લાલિત્ય તો એમને વૈરંગાંજ છે, પણ સાથે સાથે ચારણ કવિઓમાં ઝડપમકભરી, મીઠી અને જોરદાર શૈલીમાં ગુજરાતી ભાષામાં કાવ્યો રચનાર તરીકે કવિશ્રી કાગ અન્નૈક અને અદિતીય છે.

રાખૂભાવતાને રંગે રંગાયલા ચારણ કવિઓ બહુજ થોડા છે. જે થોડા છે એમાં પણ સમયે શક્તિશાળી અને સરેકારી થોડા છે. એ સર્વના મુકુટમણિ તરીકે શોભતા ભક્તકવિ દ્વાભાઈ કાગ, આ યુગના સમયે, શક્તિશાળી અને સરેકારી રાષ્ટ્રીય શાયર છે.

જ્યારથી 'શારદા'માં એ સોરડી શાયરનાં કાવ્યો પ્રગટ થયા હાજ્યાં ત્યારથી અનેક મિત્રો, સ્નેહીઓ અને 'શારદા'ના હમ્મરા વાંચકો એ કવિની કાવ્યકલા ઉપર મુગ્ધ થયા છે. સહુ કોઈ એમની કવિતા સાંભળવા આતુર રહે છે. એટલુંજ નહિ પણ એમના પરિચયના અભિલાષ પણ કેટલાક મિત્રો સેવી રહ્યા છે.

બડભાગી ભાવનગર રાજ્યના પોર્ટ નિકટર પાસે આવેલા મળદર ગામના એ રહીશ, સોરઠજીમિનું એક અણુભાગ રત્ન છે. જનની અને જન્મજમિને અમર કરનાર એ સમયે કવિ આજે 'ભગત'ના નામથી એમના આખા પંથકમાં મશહુર છે. કૃષ્ણગીત્ત્વંસરીના સદ્ સાંભળનાર ગોપાંગનાઓ જેમ એ સૂરને તાને તાને મસ્ત જનતી તેમ કવિશ્રી કાગની વાણી સાંભળનાર સદૈવ એની મસ્તીમાં રમ્યા કરે છે.

હરિપુરાં કેથેસર્માં આ સોરડી શાયરને પ્રથમવાર સાંભળનાર ગુજરાતના અનેક યુવાનોને કવિશ્રી કાગની વાણીમાં મેં મસ્ત થતા જોયા છે. હરિપુરાની વ્યાસપીઠ પરથી જ્યારે આ દેવીપુત્ર 'દેશ જો જો ગાંધીજીની દીકરી' એ ગીત સંભળાવ્યું, ત્યારે હમ્મરા ગુજરાતીઓ અને ગુજરાતજો એ ગીતને ચરજે ચરજે મુગ્ધ થતાં ગયાં. અને એ પછી જ્યારે કવિએ 'મેમીડા' નામક મહાત્માજીની પિછાણ આપતું કાવ્ય જમાવ્યું ત્યારે તો આખીયે મેદની એને તાલે તાલે કંઈ અજ્ઞ મર્દાં, અજ્ઞ મસ્તી અને અજ્ઞ ઉત્સાહને હેલે ચડી હતી. જે

\* રાજપૂતાનાનાં આધુનિક સમયે કવિ દાકુર શ્રી. કેસરીસિંહજી સોદા ( સોન્યાણ ) એ પણ શ્રી. દ્વાભાઈની કવિતાની પ્રશંસા કરતાં કહ્યું છે:

સુંદર-રચનાં હૈ સરસ, તેસેંઉ ઉતમ છંદ;  
કવિતા દ્વા ભગતશી, સોનોં આર-સુગંધ.

—તંત્રી, ગુજરાતી વિભાગ.

એને પોંખણ કાળ તણા ગણુ છે,  
એનો માંડવડો એ મહા રણુ છે;  
તલવારો તણાં એને તોરણુ છે.

ઉપરાંત કવિ બ્યારે આગળ વધીને કહે છે કે, એ વરરાખએ કન્યાને માંડવે જઈ—

દિન રાત ધખેલ હતી તપતી,  
એણે કેંક નમાવી દીધા નૃપતી;  
એવી નાળ જાંજળ કરાળ હતી.

ભયકાર મુખે વિકરાળ હતી,  
ઝગતી જમ આંખ શી જમગરી;  
એવી તોપને મોઢડે બાથ ભરી,  
પછી હાકલ દાગવાની કરી.

તોપને મોઢે બાથ ભરીને પછી ‘હાકલ દાગવાની કરી’ આ રાખેદોમાં કવિએ મહા-  
ત્માજની અદિસા એ સાચી વીરતા છે, એ સરસ રીતે સાબીત કરી આપ્યું છે.

કવિ શ્રી દાગે ‘ત્રેમંડ ડોલે’ નામક એક કાવ્ય હમણાં લખ્યું છે. આજે દેશની  
દુર્દશાની વાત કોઈ પૂછે તો કહેતારના દાગેલા દિલમાં કેટલું દુઃખ છે, એનો  
સાચો ચિતાર આ સોરઠી શાયરે આપ્યો છે, તેવો દાવના કોઈ કવિએ આપણને આપ્યો  
નથી. કવિતામાં રસ અને કલાની જમાવટ ત્યારે થાય કે બ્યારે કવિનું દિલ એ કવિતામાં  
રહે. આ કાવ્યમાં કવિનું દિલ દ્રવતું દેખાય છે.

ત્રેમંડ ડોલે :

ન પૂછો કોઈ દાગેલાંની વાત,  
વાતડીએ ત્રેમંડ ડોલેર.  
મારી વાતડીયું ફરણી એ સાંભળે,  
એની ક્યુંના ડુંગરા ડોલે;  
વાતડીએ ત્રેમંડ ડોલેર.

મારી વાતડીયું ચઢેા બે સાંભળે,

એના તનડાની ટાઢકું ત્યાગે;

વાતડીએ વ્રેમંડ ડાલેરે.

મારી વાતડીયું વનરાયું સાંભળે,

એનાં ખીલેલાં ફુલ ખરી જાસે;

વાતડીએ વ્રેમંડ ડાલે.

મારી વાતડીયું દરિયો બે સાંભળે,

એની મોટાઈની માઝા મૂકે;

વાતડીએ વ્રેમંડ ડાલેરે.

મારી વાતડીયું હેમાળો સાંભળે,

એ હેમાળો આગળીને હાલે;

વાતડીએ વ્રેમંડ ડાલેરે.

મારી વાતડીયું દેવળએ સાંભળે

એ દેવળનો દેવ ભાગી નાસે;

વાતડીએ વ્રેમંડ ડાલેરે.

તાત્પર્ય કે સાચી કવિતાનું દર્શન કરાવવામાં કવિ શ્રી કાગ એક સફળ કવિ તરીકે અગ્રસ્થાને છે.

કવિમા હોર અને મસ્તી હોય એ રીતે કવિ શ્રી કાગની કવિતાઓ જુદા જુદા પ્રકારમાં અગ્રગ્ન સફળતા મેળવી ગય છે.

દાખલા તરીકે કવિશ્રી 'મનખડાં મેળે' નામક ગીત અતિ લાવચી આવેખતાં ગાય છે કે:

હાલો હાલો માનવીયું મેળે,

મેળામાં મારાં મનડાં માનેલ છે.

ધરે મેળામાં કાઈ આંટિયાંળી પાપડી,

એના આંડિયાંના ડાઢપર તનડાં આવારિ;

મારાં મનડાં નીચાંવું—માનવીયું મેળે.

ધરે મેળામાં કેકે ધૂમાવે ઘોડલાં,

એનાં ડાખલાનાં તાલ મારાં હૈડાં હરાવે;

મારાં મનડાં નચાવે—માનવીયું મેળે.

છરે મેળામાં કેંક પાવાની જોડ છે,

એના પાવાના સાદ બહુ મીઠા;

વરસ દિ'એ દીઠા—માનવીયું મેળે.

કવિશ્રી પ્રાસંગિક ગીતોમાં પણ પરતુને અચ્છો દે-સાફ આપી રહે છે. દાખલા તરીકે, કવિશ્રી એ 'શ્રી દિલહરકુંવરઆ' વિષે હમણું એક ગીત લખ્યું છે. વાત એવી છે કે વાંસદાના ફટાવાને વાવડીવાળા શ્રી વલુભા ગોહિલનાં કુંવરી શ્રી દિલહરકુંવરઆ આખ્યાં હતાં. પોતાના પતિદેવ યુવરી જવાયા અન્ન જળનો સાગ કરી વીસેક દિવસે બાવીસ વરસની ઉંમરે એ બહેને શરીર છોડી દીધું. કવિ શ્રી એ વિષે ગાય છે કે :

દેવી દિલહરકુંવરઆ રે વરી એને કાજ મરી,

પતિ પરલોકે જતાંરે, કાયા કુરખાન કરી—ટેક.

એને બૂપણ વીંછીના ભાર થયા,

એને ભોગ ભયંકર રોગ થયા;

એને મે'લ રંગેલ મસાણ થયા.

અબધૂતણ બેઠીરે, મસાણું માં મે'લ કરી—દેવી૦

એનો આતમ—સ્વામી જ્યાં ઉડી ગયો,

એનો ક્યાંય ન જીવડો થીર થયો;

એને સપ્તગો સંસારિડો શાપ થયો.

એનો ચૂડો અડીખમ રે, ઉતરવા મનાઈ કરી—દેવી૦

છેલ્લી સાથરી નાથ તણી સંધરી,

ધોળી ધરણી માતા સામે રોષ ધરી;

વજ્રમાલ ગોહિલ તણી કુંવરી.

સ્વામી—બાળણહાર નુંરે સંધેલું હરામ કરી—દેવી૦

દુઃખી દેખી દિલે દુઃખીયારી થતી,

રંગમે'લ હતી હસતી રમતી;

બીજા દિને થોડી એની ખાખ હતી.

વિધવા પણ—સાગર રે ગઈ એની નાવ તરી—દેવી૦

૧—પોતાના પતિના સંધરનારી ધરતી (વાંસદા) નો ત્યાગ કર્યો. ૨—ભાવ એવો છે કે, જે અગ્નિએ પોતાના પતિને બાળી દીધો તે અગ્નિ વડે સંધેલું હરામ કયું.

૩—પૈષ્ય રૂપી સમુદ્ર. ૪—જીવન રૂપી માળી.

આ પ્રકારે કવિશ્રી, જીવનનાં જુદા જુદા ક્ષેત્રમાં અજગ્ય રસ જમાવી શકે છે. રાજકારણ, સંસાર, વીર-શૃંગાર-ભક્તિ : એ સર્વમાં કવિની કૃતિ જુદી રીતે ખીલી ઉઠે છે. કવિશ્રીના આખોય ભંડાર અણમૂલ રતનોથી ભરેલો છે.

કવિશ્રી જેમ કવિ તરીકે ઉત્તમ છે તેમ સુજનતાં, ભલાઈ, સાદાઈ અને ભક્તિમાં આજે એક અગ્રેડ પુરૂષ તરીકે સહુનો પ્રેમ સંપાદન કરી શક્યા છે.

એમની એક વિશિષ્ટતા છે કે, તેઓ 'અપાયક ચારણ' છે. ચારણોમાં 'નરા' શાખના જેટલા ચારણો છે, એ અપાયક હોય છે. 'નરા' શાખની એ વિશિષ્ટતા કંઈએ અખંડ રીતે જાળવી હોય તો તેમાં ભક્ત કવિશ્રી દલાલાઈ કાગ મોખરે છે.

એમની એ 'અપાયકવૃત્તિ' નો એક ખાનગી પ્રસંગ એમની માશી માગીને અને આપી દેવાની લાલચ હું રોકી શકતો નથી.

દેશની રાજકારણમાં ફેરફાર આજે સર્વનું લક્ષ્ય બેઝી રહેલ છે. એ વખતે ફેરફાર વિષે જે કાંઈ કવિએ કવિતામાં કહ્યું હોય તો એનું માન સમગ્ર ભારતવર્ષમાં સહુથી પહેલું આ સોરઠી ચાવર શ્રી, દલાલાઈ કાગને ફાળે જાય છે. આ 'ફેરફાર' વિષેનું ગીત સાંભળી કાઠિયાવાડના એક આગેવાન રાજપુરુષે આ સમર્થ કવિ પાસે એક ખીડેલ કવરમાં રૂપિયા આંચું દગ્ગરનો એક ધર્પો, એક જોઈ કવિ હસે છે, અને એ પુરૂષ સામે હાથ જોડીને કહે છે કે, "આપ કૃપા કરી મારી અપાયક વૃત્તિને ડાગવાનો આવો પ્રયાસ ન કરો એવી મારી વચનંતિ છે." એ રાજપુરૂષના અનેક પ્રકારના આગ્રહ છતાં કવિએ એક ન સ્વીકાર્યો, ત્યારે એ આગેવાન પુરુષે તોષવા જેવા શબ્દો ઉચાર્યા કે, "સોનાને કસવા માટે પત્થર જોઈએ અને માણસને કસવા માટે સોનું જોઈએ."

સોનાથી કસાવણ આ સોરઠી ચાવર આજે સર્વ સ્થળે પૂજ્ય છે, એનું મુખ્ય કારણ એમની અપાયક વૃત્તિ છે.

'પ્રભાસ' નામના એક કવિ કવિશ્રી દલા કાગ માટે જે સ્થૂં લાગ્યું તે કવિતામાં ઉતારતાં કહે છે કે :

જની રંગે રંગે નીચતા નીતરે,  
ઝેરી આંખમાં મધની લાસી ઝરે;  
વિષથી ચિતે નિત્ય વિકાર કરે.

એવા ક્ષત્રિય-કુળ-કલંકની કેવાતી

કીર્તિ તણાં કવિ ગાન કરે !

પાપી પેટના પૂરવાં એ પતિતોનો

પૂજા કરી શી ઉપમાથી સ્તવે !

જનું દૂષિત જીવન પાપે ભર્યું,

\* મુરખી શ્રી. રાયચુરાભાઈ પાસેથી જાણવામાં આવ્યું કે, પ્રભાસ પાટણના એક દેસાઈ અટકધારી નાગર યુવાન 'પ્રભાસ' ઉપનામથી કાવ્યો લખે છે. તેઓ ટ્રેન્યુએટ હોઈ હાલમાં જૂનાગઢ સંસ્થામાં કૃતિયાલા મંદાલના પરીવટકાર છે.

જેનું નામ જ્યે અતિ દુષ્ટ હતું;

જેનાં કામમાં કાણું કલંક ભર્યું.

અપનાવી એવા મહા પાપી પતિતને,

પુનીત ને પુણ્યલોક કહે;

ગિરદાવી એવા બદમાશ ને બાદશા—

શાહ કહી કવિ ચર્ણુ ચૂમે.

૨

સૂણી રંકની રીડ ન પાઈ ધરે,

જને દ્વારથી પાછો લિખારી ફરે;

કોડી કોડી ગણી જેનાં દિલ ઠરે.

એવા સૂમ તણા સરદારને કર્ણુ—

તણા અવતાર કહી તરણે;

અન્ન-પૂરણુદાર કરી અળગો,

વળગે એવા ‘શ્રીમંત’ને શરણે.

૩

‘પણ આ કવિતો—

જેની ખાનીમાં શૌર્યને સત્ય તરે,

જેના કાવ્યમાં દુઃખીની દાઝ ઠરે;

જેની વાણીએ શારદ વાસ કરે.

જણે રાયથી રંક અધિક ગણી

ગાયાં ગીત ગરીબી તણાં કવને;

જેના હૈયામાં જાની વરાળ ભરી,

તણે તાપ ગરીબ તણાં તપને.

૪

ગાય રંકની રીડને કાજ ખીજ,

પરપીડ વિદારવા વાણી વીંઝે;

ન્યાય-લીખ માંગી એનાં દિલ રીંઝે.

બ્યારે રાજ રીંઝે ત્યારે જાત ભૂલી,

માગે ચારણોદ્ધારનો ભાગ મીઠો;

ભૂલી સ્વાર્થ રમે પરમાર્યમાં,

(એવો) પરદુઃખ નિવારણ (ચારણ) ‘કાગ’ દીઠો.

૫

આ સોરઠી શાયરે આજે સોરઠી કવિતાને જોમ આપ્યું છે. પોતાના લુક્કે મીઠા કંઈથી એ જ્યારે પોતાનાં સ્વ રચિત કાવ્યો લેખકોને છે, ત્યારે હંમેશાં શ્રોતાઓ મંત્રમુગ્ધ થઈ જાય છે.

મારા અભિજ્ઞાનોમાં એક અભિજ્ઞાન એ છે કે, મહા-ગુજરાતની સાહિત્યસભાઓમાં કવિશ્રી કાગ અને ગઢવી મેરલાની જોડીને લઈ જઈ સોરઠી કવિતાની સાચી પ્રસાદી અપાવું. અત્યાર સુધીમાં હું એક પાંખે ઉડતો હતો, આજે મને બે પાંખો આવી છે, એટલે મહા-ગુજરાતના સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં સેરા આપવાના અભિજ્ઞાન પૂરા થશે એ વિચારે સંતોષ થાય છે.

ચારણદ્વારા, ચારણી સાહિત્યદ્વારા, ગુજરાતના સાહિત્યના ક્ષેત્રમાં સાચી કવિતા ઉતારવાનું સદ્દલાખ કોણ નહિ ધરે ?

કવિશ્રી કાગનાં બે પુસ્તકો તૈયાર થાય છે : ‘કાગવાણી’ ભાગ ૧ લાની ખીજ આવૃત્તિ અને ‘કાગવાણી’ ભાગ બીજો. આ બન્ને પુસ્તકો ગુજરાતને, ચરણે આ સમયે સોરઠી શાયરની કાવ્ય-પ્રસાદી અર્પણે એવી શ્રદ્ધાથી સોરઠના આ રાષ્ટ્રીય શાયરનો ટુંક પરિચય આપતાં મને આનંદ થાય છે.

—‘શારદા’ના ઓગસ્ટ ૧૯૩૮ના અંકમાંથી કિંમિત ફેરફાર સાથે ઉદ્ધૃત.

## કાવ્યકુક્ષ.

### દેવીપુત્ર ચારણને

[લેખક-કવિશ્રી ત્રિશુવનભાઈ જોરીશંકર વ્યાસ, રાજકોટ]

હરિગીત છંદ

(૧)

રે ! દેવીપુત્ર પવિત્ર વંશજ સુજશ મુખ ઉચ્ચારણ,  
રે ! યુગ યુગાંતરના અડીખમ સાક્ષીભૂત ઇતિહાસના;  
કંઈયે રાખી વીરકથાઓ લાખીં ભારે રસભરી,  
એ જિહ ચારણ ! જિહ તારી જિંઘ ને અળગી કરી.

(૨)

દ્વિજ, ધર્મ, પેત્ર, આશ્રિતો શિરસાદ જે રહે સદા,  
ભાંતિ અને વળી ન્યાય પથથી કગ ન છડે જે કદા;  
એ ક્ષત્રીવદ ત્રી સતત દીપી ચોકી જેણે આકરી,  
એ જિહ ચારણ ! જિહ તારી જિંઘ ને અળગી કરી.

(૩)

શુભ આર્ય સંસ્કૃતિના પ્રવાહો જેમણે સંચાલ્યા સદા,  
 ને લોકભાષામાં વહાળ્યા પ્રબળ વેગે સર્વદા;  
 કે કલેશમાં વચ્ચે પડી કુરબાન કાયાઓ કરી,  
 એ જિઠ ચારણ ! જિઠ તારી જિંધને અળગી કરી.

(૪)

કે ભાન ભુલ્યા ભૂપતિને આપી જેણે શુભમતિ,  
 કેને ઉગાર્યા અધમતાથી દૂર કરીને દુર્મતિ,  
 જેના વચનથી ભીરુમાં પણ શક્તિ સાચી સંચરી,  
 એ જિઠ ચારણ ! જિઠ તારી જિંધને અળગી કરી.

(૫)

જેણે રચ્યા અદ્ભુત રાસા કવિતળી શ્રેણી સહ,  
 ગાણ રહ્યા પડછંદ જેના છંદના આગે હહ;  
 જેણે દુહાની બાનીમાં વેધક અજબ કવીતા ભરી,  
 એ જિઠ ચારણ ! જિઠ તારી જિંધને અળગી કરી.

(૬)

રહેણી અજબ ગૌરવ ભરી કહેણી છટા નવરસભરી,  
 જેની પ્રતિભાથી દબાયા ભૂપ બંકા ભય ધરી;  
 જ્યાં ભેગમાયા જેવી સતિઓ નંગોં ઝાઝી સતભરી,  
 એ જિઠ ચારણ ! જિઠ તારી જિંધને અળગી કરી.

(૭)

તણદે પ્રશ્નમદ્દ દુહયથી સજ સત્યવાણી સર્વદા.  
 જગદીશ એકજ ઈંટ ભજ ધર ટેક તારી ધન સદા;  
 રજતું કરી ગજ રાણવાની અણુસમજને પરહરી,  
 એ જિઠ ચારણ ! જિઠ તારી જિંધને અળગી કરી.

(૮)

તું છોડ વ્યસનો લીખ તંજ રજવાડો આળસ દુર્ગુણો,  
 વિદ્યાતેજો બ્યાસંગ કર ભર અંતરે તું સદ્ગુણો.  
 પંડિત ત્રતાની બેડી સરખી અભણ હાલત-પરહરી,  
 એ જિઠ ચારણ ! જિઠ તારી જિંધને અળગી કરી.



(૯)

મધુકંઠ માહિ હલક છે ને જીભમાં હજી અમક છે,  
હજીએ પુરાતન ખમીરની તુજ નેત્ર માહિ અમક છે;  
તો સજ્જ થા એ શસ્ત્ર-લઈ નવયુગના વાધા ધરી,  
એ ઊઠ આરણ્ય ! ઊઠ તારી જીંધને અજળી કરી.\*

## આરણ્યની શક્તિ

લેખક:—રાજકવિ શ્રી હરદાનમાર્ષ મિંગળશીલાલ નરેલા, લાવનગર

છંદ—મૂલણી

આરણ્ય સત્ય સંતાન શિવ શક્તિના,  
હવન નિર્દોષ તે દેવ જાણે,  
હિમાલય શિખરો મધ્ય રહેતા હતા,  
પ્રગટ સાક્ષી પુરે છે પુરાણો.  
હિંમતી વિમાને ચડી ફરતા હતા,  
દિવ્ય જેની હતી દીર્ઘ દ્રષ્ટિ;  
ધર્મના કાર્યમાં ધ્યાન ધરતા હતા,  
વિજય કરતા હતા પુણ્ય વૃષ્ટિ.  
દેવ ને કલેવથી દૂર રહેતા હતા,  
કાયમી જગત કલ્યાણ કરતા;  
અખંડ શાન્તિ વિષે બનાવી આશ્રમો,  
હોંશથી દુખીનાં કષ્ટ હરતા.  
આગંજણ સ્વિકારી યજ્ઞમાં આવતા,  
પૃથુ ભગવાનને હતા ખ્યાલ;  
કોઈદી કોઈનું ભુટું કરતા નહીં,  
સર્વ કરતા બને તે સુધારા.  
પ્રથમથી ક્ષત્રિના પૂજ્ય ઉપદેશકો,  
વારિ ગંગા સમી વિમલ વાણી;

\* ઉપરોક્ત કાવ્ય કવિ શ્રી ત્રિભુવનશાહએ અખિત ભારતીય આરણ્ય સંપ્રદાયના પાંચમા અધિવેશન ( સંજોડા ) વખતે રચીને સમામાં સંભાળાવું હતું. આ કાવ્ય ' સારદા ' પત્રિકાના જુન ૧૯૩૮ ના અંકમાં પ્રજા-પ્રકાશન થયું છે.

અતિ નૃપ લાલ આખ્યા અને અપાળ્યા,  
નેક ઇતિહાસમાં છે નિથાની. ૫

નિત્ય એને હૃદય હતી નિઃસ્વાર્થતા,  
પુશામત કરીને નહીં ખાતા;  
સ્વારપણુ ધર્મનો મર્મ સમજાવતા,  
મહદ જેની સદા શકિત માતા. ૬

શુદ્ધ ભાવે હતી પ્રસન મા ચારદા,  
બાણતા વેદના લેદ ઝાઝા;  
ગુણી જન અંથ રચતા હતા જ્ઞાનના,  
ફીઝતા એ થકી પ્રજા-રાજા. ૭

દિવ્ય અવતાર લેતી હતી દેવીઓ,  
કેંક મહિપાલને મદદ કરતી;  
સ્થાનકે સ્થાનકે થતી'તી સ્થાપના,  
ભાવના જગત ભંડાર ભરતી. ૮

કોઈની દેવ\* પરવાહુ કરતા નહીં,  
સ્વતંત્ર રહેતા સત્ય સાથી;  
આપ નિઃશંક અંકુશ રૂપી હતા,  
હિન્દ દ્વિત્રિયો મદમસ્ત હાથી. ૯

વાત એ ગામી છે પણાયે વર્ષની,  
પ્રાણની ગતી છે ગહન દેવી;  
બાળવી રહ્યા એ છતાં પણ ભોમને,  
દિવ્ય છે સતી ને સંત દેવી. ૧૦

આશિર્વાદ મહાત્મા વડીલો આપશે,  
ધાળણીવાળીઓ મદદ ધરશે;  
કરી વંદન કહે આજ હરદાન કવિ,  
કૃષ્ણ સર્વને સુખી કરશે.† ૧૧

\* ચારણદેવ.

† આ કાવ્ય શ્રી હરદાનભાઈએ અખિત્ર ભારતીય ચારણ સમ્મેલન (રાજકોટ અધિવેશન) પ્રસંગે સત્રમાં સંભળાવ્યું હતું.

## જનગૃતિનું ચિત્ર-દર્શન

લેખક : શ્રી ભગવતીદાનજી મનુભાઈ રેણુકિયા, શેરડી (કચ્છ)

[ આ જનગૃતિ અને સમૂહગૃતિનો યુગ છે. સંસારની પ્રત્યેક જાતિ તેનું વહન્ય સમજને પોતાને શક્તિ સંપન્ન અને હિન્નતિશીલ બનાવવાનો પ્રયત્ન કરી રહી છે. પરંતુ આજની જનગૃતિ અને સમૂહગૃતિનો પાથો વિજ્ઞાન-જરૂરવાદના સિદ્ધાંતો પર અવલમ્બિત હોવાથી તેનું વહન્ય સમજને સમ્ય અને શક્તિશાળી બનેલી એક જાતિ તેનીજ જાતિના એક સુધારણામાં પાછળ પડેલું તેને આદર્શ રૂપ માની તેના જનગૃતિના સંદેશ ગ્રીહનાર સમૂહને આગળ લાવવાને બદલે પોતાનો ગુલામ બનાવવામાં એ જનગૃતિ અને સમૂહગૃતિનો ઉપયોગ કરે છે. છટલી એળીરીનીવાને ગળી ગયું એ વાત બે વિલિન પ્રમનની હોવાથી જામૂએ મૂકીએ તોયે રૂપેનેનો આંતર-ક્રમ, હાત્રમાં જમંતોએ એક પ્રજા સામે ઊપાડેલાં શસ્ત્રો અને સુધરેલાં જાપાનીઓ તરફથી સુધારામાં કાંઈક પાછળ તેના જન ભાઈ બીનાઓને પરાધીન બનાવવાનાં જે વર્ષથી થતા પ્રવર્તે આ વાતની સાક્ષી પૂરે છે. યુગમળની પ્રેરણાથી આજે ચારણ જાતિમાં જનગૃતિનાં મંડાણ મંડાઈ ચૂક્યાં છે. પરંતુ જનગૃતિમાં સૌથી આગળ તેનો એક પ્રાંત તેને આદર્શ રૂપ માની તેના સંદેશ ગ્રીહનાર જીવંત પછાત ચારણ પ્રતિભે આગળ લાવવાને બદલે તેમની ભર્ત્સના કરશે, તો એ જનગૃતિ અને સમૂહગૃતિથી ચારણ જાતિને ક્રોધ લાભ નથી. જો કે હાત્રમાં આપણે એવો ડર રાખવાની કાંઈ જરૂર નથી; છતાં આ લેખમાં તેના વિચારશીલ લેખક આજની સંસાર માન્ય જનગૃતિનું સ્વરૂપ દર્શન કરાવી તેનાં ક્ષણે ચારણ જાતિની જનગૃતિમાં પેસવા ન પામે તેની ચેતવણી આપી છે. તે પર જ્ઞાન આપવાની સહુને જરૂર છે.—તંત્રી, જુજરાતી વિભાગ. ]

**માનવ દેહની સંપ્રાપ્તિ એજ જનગૃતિનું મુખ્યદાર છે; એમ વિશ્વના મહાપુરુષો ઉપદેશ છે. માનવીની વિશિષ્ટતા—જિજ્ઞાસા જેનાં એ ઉપદેશની તથ્યતા પરથી આપણને સ્પષ્ટ શ્રદ્ધા થાય છે. કુદરત પણ પોતાના સિદ્ધાંત ક્રમથી અવ્યક્તમાંથી વ્યક્ત કિંવા સુષુપ્તિમાંથી જનગૃતિનું અભિનવ સ્વરૂપ પ્રતિપાદિત કરે છે. આ ક્રમને વ્યાપક શબ્દોથી કહેવા માંડીએ તો એમ કહી શકાય કે: જનગૃતિ એ જીવના ગત્ય રૂપથી અદોભાગ્યની અંતિમ અવસ્થા છે. નીતિ સામ્યન વચન છે, “ નાસ્તિ જનગરતો ભય ” અર્થાત્ જનગૃતિના પુણ્ય ક્ષેત્રમાં ભયનો ( પતનનો ) સંભવ રહેતો નથી. માટેજ એ દિનદા-સુખદા-દેવપ્રદા જનગૃતિને સશ્રેમ અપનાવથી એ મનુષ્ય તરીકે આપણું પરમ કર્તવ્ય ગણી શકાય.**

**વર્તમાન વિશ્વનું અવસોકન કરતાં આપણા કુલ્પપટ પર એવા ગયનબેદી આવળો આવ્યા કરે છે. “ અમે જનગૃતિના ઉપાસકો બન્યા છીએ. ” એટલુંજ નહિ પણ વિચાર વાણીમાં વહેતો જનગૃતિનો પ્રવાહ હાત્રવચ પરિદોષ ભરાય છે: સમાજ, રાષ્ટ્ર અને ધર્મના અભ્યુદયની વિચારણાઓ થાય છે; વ્યાખ્યાનો, ઉપદેશો અને એવી એવી વિવિધ પ્રવૃત્તિઓ આદરાય છે. આવા ભરગઝ જનગૃતિના ઉપાસના યોગમાં જનના જનગૃતિનો જે રસાસ્વાદ લે છે, તેનું અદ્ય વર્ણન આંખે જાણ શબ્દોમાં કરીએ તો તેથી આપણા અંતઃકરણને સંતોષ પહેંચે: આપણા વરનપર શોડલી કાગળ થેરી છાયા ગથરાત્ર તપ. કાંસણ, આજની હનનન: દેશપ્રેમી ૧૮૬ જનગૃતિના વિપ્રલોધી માનવ સમજનો ભયંકર સંહાર આપણે જોઈએ છીએ. તે પણ એટલો બધો સંહાર કે જેની બરોબરીની સંખ્યા જનના જનકાળના ઇતિહાસમાં ભાગ્યેજ મળી શકશે. પૂરી થતી વીરાળી સડીનાં અનેક વિગ્રોળો પૈકી એક વિગ્રોળ કે જેથી**

તે જાગૃતિના મધ્યાહ્ન તરીકે સંબોધાય છે. આપણે જરા ઊંડા ઊતરી સ્થિત દ્રષ્ટિથી એ જાગૃતિના પ્રદેશને નિહાળીએ: સૌથી પ્રથમ તો પશ્ચિમના સર્વ પ્રદેશો જે સર્ગર્વ વાણીથી જાગૃત હોવાનો દાવો કરી રહ્યા છે, અને તેનાજ ધર્મકર્મો માનવકુલનો હલ્લાકાંડ કરવામાં પોતાના સમગ્ર સામર્થ્યનો ઉપયોગ કરે છે. નિર્દોષ માનવીઓના જન સેવામાં નિરપરાધ આપાત વૃદ્ધ જનતાની કનક કરવામાં એઓ આનંદ માણી રહ્યા છે: સ્વતંત્રતા ભોગવતી પ્રજાઓને પરતંત્ર-ગુલામ કરવામાં એઓ પોતાની રાક્ષસી મહત્વાકાંક્ષાને પોષી રહ્યા છે: પ્રયોગો, કારસ્થાનો, ફૂટનીતિઓ, દાવપેચો અને કુશુક્તિ વડ્યનો એમના જાગૃત હૃદયમાં આહોનિશ અવનવા સ્વરૂપે રચાતાં જાય છે. એકંદરે થોડા શબ્દોમાં કહીએ તો, ઘેર અનિ-જ્ઞતા એજ તેમની જાગૃતિનો આદેશ છે, અને આપણા ભારતવર્ષની સ્થિતિમાં પણ એ જાગૃતિએ અજ્ઞ અંધારા આપ્યા છે, મે આપતી જાય છે.

આ કૃત્રિમ જાગૃતિમાં સચવા, નીતિમત્તા, વિશ્વવૃત્તા અને નિષ્કામતા જેવા જીવનના પ્રાભાવિક સંસ્કારોનો અસ્ત હોય એ ખુલ્લું છે.

જાગૃતિ તેજ રહો કે; જેમાં સંપત્તિમાન. મનુષ્યો સંપત્તિનો સદૈવ લોક કલ્યાણમાં વ્યય કરી તેના પર મમત્ત્વ ન ધરાવે. શુદ્ધિમાન મનુષ્યો મન, વાણી અને ક્રિયા દ્વારા જનતાને સ-માર્ગનો સદ્બોધ આપના રહે. સચ્ચારિય એજ જીવનની સાચી મહત્તા છે; એવા ઉચ્ચ મનોરથોથી પોતાની શુદ્ધિને સેવા માર્ગમાં અચલ રાખે, સત્તાવાન પુરુષો સેવક બની દુઃખ-ઉપદ્રવ-ઉત્પાત કરનારા આતતાથી જનોને જીવન મુધારણના માર્ગમાં તેમના અંતઃકરણોને યાજી તેમનું મનુષ્યત્વ દીપે તેના ઉપાયો યોજે.

તસ્મિન્: આગલી જાગૃતિમાં તો નિર્દયશીલ યેન કેન પ્રકારેજ સત્તાઈ. થવાની આશા પાડે કરી લોક કલ્યાણની ભાવનાને જેર કરવા ભોધા પર જુલમના કારણો વીંઝે છે. નિષિકારી વિદ્વાનો સ્વમંતવ્યતા વિજયમાં શુદ્ધિની વિવિધ રંગી દંદિળજી ઊભી કરી એમણે રમેશા સિદ્ધાંતોથી ભરે સત્યનો નિર્દેશન યોગ દેખ જનાં તેની પરવા કીધા વગર પોતાના મદોન્મત સ્વભાવને વેગવાન રાખે છે.

ગ્રૌહ ગણાતા મુસ્તફાઓ વાણીના અદુર્ય માનવી મામને ભૂમથાપ આપવામાં પાવરધા અને છે, અને તેમનાં ગળાં રહેસતમાં રાક્ષસી કાવા દાવાની પ્રપંચ-જાળ રમે છે.

નિઃકુર ધનપતિઓ સાખા માણસોના પરસેવાથી ઉત્પન્ન થતી આવકને ઓશિયાં કરી. અમન જમન ઊણવવામાં જીવનની છેલ્લી ધડી સુધી કસાઇ જેવા રહે છે.

આપણી દૂર કૃત્તિઓ જાગૃતિ નામક આ માણસી ગુપ્તમાં જાને છે. જેને જેઠ કાળ મેંદ હૈયાને પણ કંપારી લાગે ! આવી કૃત્રિમ જાગૃતિથી અભિમાન લેતા કોઈ પણ સમાજ કે રાષ્ટ્રનો ભયંકર વિનિપાત છે; એ કહેવું ન્યાય પુરઃસર છે. ચારણ દેવેનો કાળ લુનો અલકાર: 'જાગૃતિના વિધાયક' તરીકે શાસ્ત્ર સંમત છે. આપણા એકેક સમર્થ પૂર્વજના જીવનમાં લાક્ષણિક સસ જાગૃતિનાં દર્શન આપણને યાય છે, એમના જીવનની સૈદ્ધાંતિક લાક્ષણિક જાગૃતિ હતી. ત્યારજ તેઓ મદાંધ નૃપતિઓને કાચથી કટુ વચનો કંઠી સકતા. સંભ્રામને મોખરે ખાડ થઈ શિર આપવા ઉત્સુક જનતા. સુવાળો રાજધર્મ જાગવી સ્વાર્થ સંપાદન કરવો એ દુર્યોજને તેઓ સતત ચિકારના.

આપણા પૂર્વજોને એ પ્રતાપી વાસ્તો શોભાવવા આપણે પણ જાગૃતિના પ્રદેશમાં પગલાં ભરવા કટિબદ્ધ બન્યા છીએ. પરંતુ એ જાગૃતિમાં કૃત્રિમતા ન પ્રવેશે એ આપણા અત્યારથીજ જીવન સંકલ્પ છે, એવી દૃઢ પ્રતિજ્ઞા પૂર્વક આપણે આપણા ઉત્કર્ષમાર્ગમાં આગળ વધવું જોઈએ.

## બૃહદ ગુજરાતના જ્ઞાતિ-સમાચાર

૬૨૭ બૂજર્ગાં અમદાવાદ મિલ કામદાર યુનિયનના શ્રીયુત મનસુખભાઈ ગઢવી (કચ્છી) એ બૂજર્ તાલુકા બેહુત સધે સ્થાપ્યો છે.

આગામી કાર્તિક માસમાં શ્રી. કૃષ્ણકુમાર ચારણ વિદ્યાજ્ઞપના કાર્યવાહકોની ભાવનગરમાં બેઠક મળશે. વિદ્યાજ્ઞ સંબંધી જેમને કંઈ સૂચના કરવી હોય તેમણે પહેર દિવસ અગાઉ તેના ગૃહપતિ ઉપર લખી મોકલવી.

ભાવનગરમાં હાલમાં ગ્રેસ કામદારોની લડત ચાલતી હોવાથી ચારણ હિતવર્ધક સલાના અતુર્થ અધિવેશન (રાન્ડકોટ) નો રિપોર્ટ પ્રસિદ્ધ થવામાં રહેજ નિવંધ થશે. જે ભાષ્યોની ચાલુ વર્ષની મેમ્બર શી બાકી હોય તેમણે તદ્દાગ્ર તેના મંત્રીશ ઉપર મોકલવા તજનીજ કરવી કે જેથી તેમનાં નામ રિપોર્ટમાં જાણી સકાય.

સમસ્ત ચારણ કામમાં પટેલવહેલી વિચાયતની પદવી મેળવનાર પીંચળાવાળા શ્રીયુત કૃષ્ણભાઈ કાળુભાઈ પાલિયા, બી. એ. ડી. ડી. (ઇંગ્લેન્ડ) વડોદરાની બી. ડી. કોલેજમાં ૧૩. ૧૨૦ થી ૨૦૦ ની ગ્રેડમાં પ્રોફેસર તરીકે નીમાયા છે.

ચાલુ વર્ષે વડોદરા કોલેજમાંથી બી. એસ. સી. ની પદવી પ્રાપ્ત કરનાર રામભાઈવાળા શ્રીયુત મનુભાઈ રવાભાઈ વરસાડાની નાર હાઇસ્કૂલમાં અધ્યાપક તરીકે નીમણુંક થઇ છે.

વડોદરાની પુરણ અધ્યાપન પદ્ધતિ પાઠશાળાના અધ્યાપક ચરાડાવાળા શ્રીયુત કાળિદાસ હાલાભાઈ બાદીની ચાલુસ્માં મરાઠાની તાલુકા સ્કૂલના હેડ માસ્તર તરીકે બદલી થઇ છે.

શ્રી મેશલા લીલા (જનાવા) વીસેક દિવસ પૂર્વે મુંબઇ જઇને કેટલાંક લોક ગીતો અને ચારણી છંદોની રેકોર્ડે બિતરાવી આવ્યા છે.

સંધ્યાવદર (વાંકાનેર) વાળા શ્રીયુત નારણભાઈ મેકરણભાઈ રાહડિયા, બી. એ. હાલમાં કુંડલા હાઇસ્કૂલમાં અધ્યાપક તરીકે કામ કરે છે.

મેળદડ (લીંબડી તાલુકો) ના કરણસિંહ તેજમાલજી દેયા ૧૯૩૮ ના એપ્રિલમાં મુંબઇ વેલ્ફેર કોલેજના છેલ્લા વર્ષમાં ફર્સ્ટ ક્લાસ ફર્સ્ટ પાસ થયા છે. તેમને વડોદરા રાજ્યના વડનગર ગામમાં વેલ્ફેર સર્જન તરીકે રૂ. ૧૦ થી ૧૨૦ ની ગ્રેડમાં મૂકવામાં આવેલ છે.

સુપ્રસિદ્ધ લક્ષ્મી કવિ શ્રી દલાભાઈ કાળનાં કાળોનો સંગ્રહ 'કાળવાણી' ભાગ ૧ લો (બીજી આવૃત્તિ) અને ભાગ ૨ બે ગ્રેસમાં જાપાય છે. દરેક ભાગનું મૂલ્ય સવા રૂપિયો છે. કુલ પાંચ હજાર નકલો નીકળશે. તેમાંથી ત્રણેક હજાર નકલના તો અગાઉથી આદેશ થઇ ગયા છે.

ચારણી કવિતાને નવી દિશા તથા જોગ આપનાર કવિ શ્રી કાળનું એ પુસ્તક બખી વાંચી જાણનાર પ્રત્યેક ચારણ બંધુના ઘરમાં હોવું જોઇએ.

# चारणा

अखिल भारतीय चारण सम्मेलन

का

ॐ नैमासिक सुखपत्र ॐ

१]

चतुर्थ-पंचमी

क्रि.श. संवत् १९९५

[ अंक २

सम्पादकः

ठाकुर ईश्वरदान आशिया

सहकारी सम्पादकः

मैयूर शुभकर्ण कविग्या, M. A., LL. B.,

गुजराती विभाग सम्पादकः

खेतसिंह नारायणजी मिश्रण

प्रकाशकः

ठाकुरदान जेठभाई देवा, लायडी

[ एक अंक के III]

सं०	विषय	
१	प्रार्थना (कविता)—श्री अक्षयसिंहजी रत्न	१
२	सम्पादकीय विचार—	२
३	भावो महायुद्ध—सम्पादकीय	३
४	चारण-वाणी (कविता-संग्रह)	८
५	चारण वन्धुओं से—श्री रामनारायणजी चौधरी	१६
६	काव्य-कुञ्ज—	१८
७	कविराजा वाकीदास—पं० श्री गौरीशंकरजी होराचंद ओझा	२०
८	डिगल साहित्य में हास्यरस—भैरव उदयसिंहजी दधिपार्इया	२५
९	सम्पादकीय टिप्पणियाँ—	२९
१०	समाचार संग्रह—	३५
११	"चारण" का अनिमित्त प्रकाशन (सम्पादकीय)—	३५ टाइल पृ०

१	आरखु पत्रने (कविता): श्री अणेसिंह अणेल, डेढ	१
२	आरखु भति: तेनी पउतीना आरखु अने उपायो: श्री नारखुलाध देहडिया, भी० जे०,	२
३	आरखु देवे आवे ! (कविता): संज्ञाकवि श्री हलाबाध डोग	७
४	कुदानमां धार अपमान: श्री लागवतीदान देहडिया	४
५	शूरवीराने पखु प्रेरणा देती आरखु डोगनी जयलत गाथा:	११
६	मेवाड रत्नयनां पुस्तकालयो अने अयुक्त्रियम: स्व० सुनिश्री डिभांशुविजयल न्यायकाव्यतीथ	११
७	हर था हर था दुष्ट दाई ! (कविता): कविश्री त्रिभुवनलाध व्यास	२१
८	युग-संदेश: श्री लखलाल नायालाध परसर	२८
९	गुह्य शुश्रूषतेनां ज्ञाति समाचार:	३१
१०	शोक-समाचार:	३१

ॐ

श्री जगदीश्वरी विजयते

## चारण

अखिल-भारतीय-चारण-सम्मेलन  
का

त्रैमासिक-मुखपत्र



सत्य अभय स्वातंत्र्य उपासक,—सिखा परणू-जीवन का मर्म ।

क्षात्रधर्म-उद्बोधक चारण,—रहा सदा साधक युगधर्म ॥

वर्ष १ ]

वसंत-पंचमी

विक्रम सम्वत् १९९५

[ अङ्क २

## प्रार्थना



( कर्त्ता—श्री० अक्षयसिंहजी रत्नू, अलवर ),

जगदम्ब ! अब तो जल्दी इस जाति को जगा दो  
फर नित्य तेम तत्पर कुलप्रेम में पगा दो ॥

गैरा से बढ़के आगे चलना तो खुद है मुश्किल ।

बढ़ते हुआँ के लेकिन कुछ साथ तो लगा दो ॥

भर पाये इसकी ऐसी गंभीर धीरता से ।

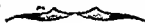
हुक भाव-धीरता भर, भय-भीड़ता भगा दो ॥

जब जब विपद् पड़ेगी रक्षा करेगी आकार ।

प्रण यह विस्तार करके तुम तो न मा ! देगा दो ॥

परतंत्रता के रुज से मुंह बंद हो चुके हैं ।

“अज्ञेय”—स्वतंत्रतामय सञ्जीवनी सुंघा दो ॥





## सम्पादकीय-विचार

### हमारी मौजूदा हालत

अपने इतिहास के जानना बुरा नहीं परन्तु हम क्या थे या गुजरे हुए ज़माने में हमारी स्थिति क्या थी इस विवेचन की अपेक्षा अधिक लाभकारी यह मालूम होता है कि हम अपनी मौजूदा हालत को ठीक २ जाने । यों, जाहिर तौर पर इस बात का विचार करने की कोई ज़रूरत नज़र नहीं आती क्योंकि सब कोई अपनी २ हालत के बखूबी जानने का दावा रखता है । लेकिन दर असल बहुत कम लोग ऐसे होते जिन्होंने जाति की सारी मौजूदा हालत पर एक साथ गौर किया होगा कि उसकी सामाजिक, धार्मिक या राजनीतिक स्थिति क्या है ?

चारणजाति इस देश के राजपूताना-मालवा और गुजरात-काठियावाड़ प्रांतों में बसती है जहां का अधिकांश भूभाग राजपूत नरेशों के अधिकार में है । गुजरात-काठियावाड़ में बसने वाले अपने जाति समुदाय की परिस्थिति का विवेचन इस पत्र के गुजराती विभाग के सम्पादक महोदय के ज़िम्मे छोड़ कर हम राजपूताना-मालवा के स्वजाति समुदाय के संवर्ध में ही अपने विचार प्रकट करने का प्रयत्न करेंगे क्योंकि 'उधरकी परिस्थिति का ग्रामाणिक' परिचय वे ही दे सकते हैं ।

"चारण" के इस अंक में हम अपनी सामाजिक दशा पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे ।

हमारी जाति गाँवों में बसती है जो सैकड़ों वर्षों से उसी के अधिकार में चले आ रहे हैं । इन्हीं गाँवों में से कुछ लोग राजाओं और उनके जागीरदारों की सेवा में भी रहते हैं और इनेगों लोग व्यापार व्यवसाय के क्षेत्र में य एटिश सरकार में भी नौकर होते ।

जो लोग राजाओं और जागीरदारों के पास रहते हैं उनके लिये उस प्राचीन दोहे के शब्दों में ही कहना कार्प होगा कि-

"हय जोड़ा रहिया हमै,  
गढ़वी काज गरथ ।

ये 'राजड़' छत्रधारियां,  
गो, जोड़ावण हथ ॥"

यही बात डिपार्टमेंटल नौकरों की या ऐसे ही अन्य लोगों की सो वे अपनी २ नौकरी करके और लोगों की तरह अपने विवाह की चिन्ता में लगे हुए रहते हैं । बहुत कम लोगों का जाति-सेवा की लगन या अपनी जाति की हीन-दशा का ध्यान है और जिनको है भी तो उनमें अधिकांश प्रायः हतोत्साह एवं निराश हैं ।

अब रहे ग्रामवासी जातिबंधु । पहिले इनमें से भी कइयों का राजदरबार या जागीरदारों के ठिकानों में आना जाना रहा करता था और विवाह अवसरों पर ठिकानों में समूह रूप से जाने के अवसर

जाते रहने से शहरी तहजीब कुछ २ आ जाती थी। रहन सहन और बाल चाल ग्रामीण जनता से कुछ ठीक ढंग की होती थी। अब यह प्रायः बंद हो जाने से कई चारण ग्रामों में जाने पर पूछने से ही पता लग सकता है कि अमुक व्यक्ति चारण है। अन्यथा किसी साधारण ग्राम-वासियों और उसमें कोई स्पष्ट अन्तर नजर नहीं आता। पहिले जोधपुर नरेश्वर श्री मानसिंहजी के शब्दों में कहें तो, चारण प्रायः "राजाओं में शोभित देने वाले—देह दराज दीसता डारण" होते थे और इस लिये अन्य लोगों से अपने आप ही विशेषता लिये हुए होते थे। परन्तु आज, 'हा! वे गये दिव्य वपुधारी'। आज एक साधारण ग्रामवासी बालक और चारण बालक-बालक ही क्यों बूढ़े और जवानों तक में भी कोई अन्तर नजर नहीं आता। वही भद्दा रहन सहन, वही बोलचाल, वही रंगढंग! पहिले हर गांव में जहां सुबह शाम पिता अपने २ बालकों को पुरानी उत्तम बातों के साथ गीत, दोहे, छंद, छन्दय जो भी उन्हें आते, अकसर सिखाते हुए देखे सुने जाते थे और इस तरह लिखना पढ़ना न जानने पर भी बहुतांशों को सैंकड़ों गीत, दोहे, छंद आदि कविता कंठाम होता थी और वे बहुत-सी पुरानी बातें इस परिपाटी से जान जाते थे। शाम को सब बालक इकट्ठे होकर याद की हुई कविता बोला करते थे। अब वह प्राचीन परिपाटी तो लुप्तप्राय हो गई है और उसके स्थान पर बालकों की शिक्षा का सब जगह कोई खास इन्तज़ाम न होने से परिणाम वही हुआ जो ऊपर कहा गया

है। इस तरह यह बुद्धिजीवी जाति ग्रामीण श्रमजीवियों के रूप में आ जाती हुई मातृम हो रही है।

ग्रामीण होना, किसान होना या श्रम-जोशी होना बुरा नहीं, बल्कि आजकी दुनिया में तो इस प्रकार के जीवन ही मानव जाति के कल्याण की दृष्टि से अनुकरणीय एवं आदर्श माने जा रहे हैं और अन्य देशों के समान हमारे देश में भी राजसत्ता का प्रथमाधिकार इस प्रकार का जीवन बिताने वालों ही के हाथ में आता हुआ दिखाई दे रहा है। अतः यदि हमारी जाति भी ग्रामीण श्रमजी-वियों के रूप में जीवन बिताये तो वह अवांछनीय तो न होगा। अभीष्ट यह है कि वह अपने बुद्धिबल के पैतृक उत्तम संस्कारों को कायम रख सके और समय के अनुरूप उन संस्कारों का लाभ अपने साधियों को पहुँचा कर अपनी विशेषता बनाये रहे तो और भी अच्छा है। इसका एक मात्र उपाय उपयोगी शिक्षा का सुलभ प्रचार ही है।

ग्रामीण सजातीयों में खेतीवाड़ी व पशुपालन का धंधा ही निर्वाह का प्रधान साधन है। परन्तु बहुत कम लोग ये काम ठीक तरह से करते हैं। ज्यादातर लोग अपने समय का बहुत कुछ हिस्सा सुस्ती में बैठे २ गप्पशप लड़ाने में, तम्बाकू फूंकने में और जो ख़ा पो सकते हैं या व्यसन के चक्र में आ गये हैं वे अफीम व शराबखोरी में बिता देते हैं जिसका अनिवार्य परिणाम सर्वत्र दिखाई देने वाली गरीबी और कर्ज़दारी है। सौ में से दस परिवार भी मुश्किल से ऐसे मिलेंगे जो कर्ज़दार न हों या अच्छी

हालत में हों। इस आर्थिक दुरवस्था में 'कोढ़' में खाज की कहावत के अनुसार परस्पर के ईर्ष्या-द्वेष, अनुचित स्वार्थ और अज्ञान अहंकार के कारण बढ़ी हुई मुकद्दमेबाजी और झगड़े बखेड़े हैं जो गरीबी और कर्जदारी के सहायक हो रहे हैं। वन्द्युप्रेम और सहायभूति-सहयोग मिटता जा रहा है। याचनावृत्ति के पुराने पाप से स्वभिमान लुप्तप्राय हो गया है। जाति के अधिकांश व्यक्ति खुद ही अपने आप को हीन अनुभव करते हैं। फिर, भले ही भले राजपूत उन्हें 'पूजनीक' कह कर भी क्यों न सम्बोधित करें। अलवत्तह सम्मेलन की शुभ प्रेरणा से 'त्याग' का परित्याग हो जाने से और किंचित् शिक्षा के प्रचार से साधारणतया सारी जाति में और विशेषतया शिक्षितों में यह बात अब बहुत कुछ मिटती जा रही है। शिक्षित युवक समझने लगे हैं विद्याप्राप्ति का जितना आवश्यक गुण है उतना ही स्वभिमान की भी।

अंध विश्वास के कारण रूढ़ियों के गुलाम हम भी उतने ही हैं जितनी कि हमारी साथी अन्य जातियाँ। हिन्दू माध के जीवन में शादी और गमी के ही मौके पेसे हैं जो खास तौर पर रूढ़ियों के आधार कहे जा सकते हैं। हैसियत न हो तो भी इन मौकों पर कर्ज लेकर भी खर्च करने का हरक व्यक्ति रूढ़ियों के कारण मजबूर होता है।

पिता या भाई आदि की बीमारी में जो पुत्र या भाई आदि निकट संबंधी एक घड़ी भी हमदर्दी के साथ रहल-बंदगी में नहीं रहता और रात को उस के पास सोता तक नहीं और न इलाज

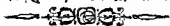
के लिये कुछ खर्च करना आवश्यक समझता है वही, जब इस परिस्थिति में बीमार चल बसता है तो, घरधंधा छोड़ कर मातमपुर्सी के लिये आने वालों की आवभगत करने का घेड़ जाता है। इतना ही नहीं द्वादशे के लड्डू बनाने के लिये कर्ज देने का बोहरे की खुशामद कर-कर के अपनी जमीन उसके यहाँ गिरवी रखना है और लड्डूप्रेमी भी लोगों की निंदा से बचने के लिये अपनी बर्बादी अपने हाथों मोल लेता है। उसे यह भाव भी दबाना है कि मृत व्यक्ति ने और मैंने भी तो पेसे ही लड्डू लोगों के यहाँ खूब उड़ाये हैं तो अब उन लोगों का फसे नहीं बुलाया जाय। पेसे पुत्र की माता भी उसकी जननी हो वैसी ही होती है। कहने सुनने या समझाने से वह इस बर्बादी से बचने का आमादा हो भी जाय तो माता नहीं मानती। पति के जीते जी बीमारी में उसके इलाज के लिये अपने पैरोंकी कड़ियाँ या एकाध जेवर जो उसके पास हो उसे बेच देने की उसे नहीं सख्ती पर उसके द्वादशे के तो लड्डू ही बनें इसके लिये ज़र-ज़मीन सब कुछ दे देने का अपना कर्तव्य समझती है और बड़े सवेंर जग कर वा शाम बगैर के मुकुररा बत्तों पर अरसे तक अपने और पति के पारस्परिक स्नेह और वियोग के विलाप चिल्ला चिल्ला कर रोते हुए करने में ही अपनी कुलीनता की रक्षा मानती है। कुटुम्ब की खियाँ भी, आंसू भले ही एक भी न आवे राने के लहजे में शोर मचा कर उसका सहयोग देती हैं। मातमपुर्सी के लिये किसी के आने पर राने के लिये

झियों के सूचित करना जरूरी समझा जाता है। करें भी तो क्या? इन बातों में थोड़ी सी भी कसर रह जाय तो निष्ठुर रुढ़िप्रेमी लोगों की निंदा का डर और पीढ़ियों के जमे हुए संस्कार सब को दबाये हुए हैं। आवश्यकता है, सम्मेलन के प्रस्तावों के अनुसार ध्यान देकर हानिकर रुढ़ियों को उठा देने वाले साहसियों के आगे आनेकी जो ऐसी बातों में निंदा की परवाह न करें।

शादियाँ भी बहुत कम जगह अपने नाम के सार्थक करती हैं। सम्पूर्ण जीवन के इस प्रेम संबंध के स्थापित करनेकी शुरुआत ही आजकल भावताव छड़ाने की धुरी से होती है। बरकतिया की सगाई में ही पेंचातानी शुरू हो जाती है जो शादी के एक तक तो बाज २ जगह लड़ाई का स्वरूप धारण कर लेती है। जहाँ एक दूसरे को देख कर प्रफुल्लित होना चाहिये वहाँ बरकतिया पक्ष में कई जगह स्थायी घैमनस्थ हो जाता है, अधिकांश विवाह अनमेल स्वभावादि के तो होते ही हैं क्योंकि सगाई के समय बरकतिया के स्वभाव-साम्य आदि बातों की तरफ ऊपर कलह हुए कारण से किसीका खयाल ही नहीं होता—बाज़ २ विवाह अनमेल उम्र के भी होते हैं। जो कुलिन माने जाते हैं और कुछ अच्छी आर्थिक दशा वाले हैं या जिनके कुछ बड़ी जागीर है वे अपनी या अपने पुत्र आदि की सगाई में कन्या पक्ष से जितने रुपये जिस नाम से पेंठे जा सके उतने पेंठने में कोई बात उठा नहीं रखते। और जिनको कुलीनता का निधनता ने दबा लिया है और जो लड़की के पैसे लेना अपना खिजा ही मान बैठे हैं वे

लोग परस्पर लड़कियों के पैसे दे ले कर शादियाँ करते हैं। यह लड़कियों की खरीद फ़ोखत अब उन लोगों में भी कुछ २ शुरू हो गई सुनी जाती है जो लड़की के पैसे देकर या लेकर शादी करने-कराने में अपनी कुलीनता को बड़ा लगाना समझते थे और बिना शादी किये ही उम्र बिता देना अच्छा मानते थे। परन्तु आज कल कैसे भी हो, कहीं भी हो हरेक व्यक्ति शादी कर लेना चाहता है। यह प्रवृत्ति भी हमारी बढ़ती हुई गरीबी और मानसिक पतन का स्पष्ट सूचित करती है।

राजपूताने में इन शादी-गामी की हानिकर रुढ़ियों को बंद करने के उद्देश्य से स्व० महामहोपाध्याय काधिरासा श्यामलदासजी दधिवाड़िया (उदयपुर) के अनुरोध पर राजपूताने की सब रियासतों के राजपूत-चारण-शैतिनिधियों की राय से तत्कालीन ५० जी० जी० कर्नल बाल्देर मंडादय की प्रेसिडेंटशिप में “बाल्देर-कृत राजपुत्र हितकारिणी सभा” के नाम से एक सभा अजमेर में स्थापित की गई थी जो नाम रूप से अब तक भी है, और जिसकी शाखा-सभा हरेक रियासत में है। परन्तु, कहते दुःख होता है, संगठनादि संबंधी कुछ मौलिक श्रुतियाँ शुरू में ही रह जाने से उक्त सभा अपना उद्देश्य अपने जीवन के इतने दीर्घकाल में—हर तरह की साधन सुलभता प्राप्त होने पर भी अब तक पूरा न कर सकी! इस असफलता के संबंध में यहाँ विस्तृत रूपसे लिखना विषयांतर-सा होगा, अतः जितना सा संबंध चारण जाति से इसका है और जो दख इसने इसके संबंध में इच्छित्यार किया मालूम होता है उसीके विषय में यहाँ संक्षेप से कुछ कह देना अप्रासंगिक न होगा।



## भावी महायुद्ध



चौबीस वर्ष पूर्व जैसा भयंकर महा-युद्ध छिड़ा था और जिस में इस देश के भी लाखों योद्धा अंग्रेज सरकार की तरफ से बड़ी बहादुरी के साथ लड़कर काम आये थे और देश को अरबों रुपयों का व्ययभार उठाना पड़ा था वैसा ही या उस से भी अधिक भयंकर संसार-व्यापी युद्ध छिड़ने की आशंका बड़े २ राजनीतिज्ञ वर्गों से करते आ रहे हैं। इंग्ली, अविस्त्रोनिया की लड़ाई, स्पेन का गृहयुद्ध, चीन जापान समर और जेको-स्लोवेनिया पर जर्मनी का प्रभुत्व आदि के कई अवसर ऐसे आये कि जब मालूम होता था कि युद्ध छिड़ने ही वाला है। किन्तु कई गुप्त एवं प्रकट कारणों से अभी तक महायुद्ध दलता जा रहा है। परन्तु हर वक्त बना हुआ है इसलिये देश के बड़े २ देश अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाने और आत्मरक्षा के उपायों को जुटाने में पानीकी तरह धन बहा रहे हैं। इस देश में भी अंग्रेज सरकार इस निमित्त करोड़ों रुपये हर साल खर्च कर रही है। परन्तु देश की जनता की तरफ से राष्ट्रीय महासभा-कांग्रेस इस का विरोध करती है और उस ने तो स्पष्ट ही कह भी दिया है कि अगर हिन्दुस्तान की सम्मति बिना अंग्रेज सरकार किसी युद्ध में कूद पड़ेगी तो पहले के समान यह देश धन जनादि से अब उस की सहायता नहीं करेगा। खैर। अब चूंकि अंग्रेज सरकार का कांग्रेस के हाथ में देश की कुछ हुकूमत भी दे देनी पड़ी

है और उसका प्रभाव प्रताप भी दिन दिन बढ़ता जा रहा है इस लिये उस की बात को वह एकदम सुनी अनसुनी नहीं कर सकती। हाँ, राजा लोग हर समय हर बात में हर तरह उस की मदद करने को तय्यार हैं क्योंकि वे खुद अपने और अपने लोगों के बल बुद्धि पर विश्वास न कर उसी के भरोसे पर अपना अस्तित्व समझते हैं।

अब हम पाठकों की जानकारी और मनोरंजन के लिये सहयोगी 'राजपूत' से निम्नलिखित अंश उद्धृत करते हैं जिस से उन्हें ज्ञात होगा कि उन देशों में भावी महायुद्ध के समय आत्मरक्षार्थ कैसी कैसी तय्यारियाँ हो रही हैं—

“.....चायुधानों से कम बरसा २ कर किसी भी देश का भीषण रूप से नाश किया जा सकता है; पर जब तक स्थलसेना सीमा पार कर देश पर कब्जा न करे, तब तक अधिकार तो हो नहीं सकता। किन्तु युरोपियन देशों ने अपनी २ सीमाओं पर इसी लिये अमेध्य किले-बंदियाँ कर रखी हैं। फ्रांस ने अपनी सीमा पर दुश्मन को रोकने के लिये, जमीन के नीचे, जो अमेध्य किलेबंदी की है वह भावी विश्वयुद्ध के इतिहास का गुप्त अध्याय है। इसी संबंध में किसी अंश तक प्रकाश डालते हुए 'संडि एक्सप्रेस' के सम्पादक ने लिखा है—फ्रांस की किले-बंदी की यह दीवार-जिस का नाम मैग-नेट लाइन है—जमीन के नीचे होने के

कारण अदृश्य है। यह स्विस् सीमा तक ६०० मील तक दुश्मन के आक्रमण से फ्रांस की रक्षा करती है।

यदि कोई अजनबी फ्रांस की सीमा से गुज़रे तो उसे क़िलेबंदी का कोई भी चिह्न दिखाई न देगा सिवाय तोपों रखने की बुजों के जो कई सौ गज़ के फासलों पर बनी हुई हैं। यदि युद्ध छिड़ा तो तोपों बटन दवाते ही जमीन के भीतर से अपने स्थानों पर ऊपर आ जायेंगी और विजली की सहायता से लोग भूगर्भ से उन्हें अभूतपूर्व तेज़ी से चला सकेंगे।

शान्ति के समय मैगनेट लाइन के ६०० मील के फासले में एक लाख व्यक्ति १४००० प्रधान तोपों पर सदा मुस्तैद रहते हैं। इन तोपों का नियंत्रण जमीन के नीचे जिन लोगों के हाथ में रहता है वे हर प्रकार से सुरक्षित हैं। उनके सिर पर ४० इंच मोटी विशेष रूप से तय्यार की हुई सीमेंट की छत है, जिस पर कोई गोला, बम या मशीनगन की गोलियाँ असर नहीं कर सकतीं।

इसके अलावा गैस भी इन अदृश्य गोलम्दाजों का कुछ बिगाड़ नहीं सकती। तोपों की जो बुजें दिखाई देती हैं, उन में कुछ तो जमीन के नीचे १०० फीट तक चली गई हैं। इन में नीचे गोलम्दाजों के सोने, रहने, खाने और मनोरंजन का पूरा प्रबंध है। दीवार की चारों तरफ मीलों तक अदृश्य आँखें रात्रि दिन देखती रहती हैं। रात के वक्त सामने और पीछे के प्रदेश में वैज्ञानिक किरणें फैली रहती हैं। किसी आदमी के आते ही खतरे की घंटी प्रत्येक बुज में बज जायगी और सभी लोग सतर्क हो जायेंगे।

यह है फ्रांस की मैगनेट क़िलेबंदी, जिस का उद्देश्य आक्रमणायक न हो कर रक्षात्मक है। सीमा की दूसरी तरफ इसी तरह की क़िलेबंदी जर्मनी ने की है। सैवियर रुस ने भी उत्तर से लेकर कास्पियन सागर तक अपनी पश्चिमी सीमा पर यही किया है। यही हाल जेकोस्लोवैकिया की जर्मन सीमा पर था, लेकिन अब वह सीमा ही नहीं रह गई।

इस स्थल पर जर्मन सीमा की फौलादी दीवार का कुछ ज़िक्र कर देना आवश्यक होगा। जर्मनी ने भी फ्रांस की मैगनेट लाइन के मुकाबले में बेलजियम से लेकर स्विस् सीमा तक क़िलेबंदी की है। इस लाइन को तय्यार करने के लिये हर हिटलर ने हुकम निकाला था कि समस्त किसान १/५ अगस्त तक अपना फसल काटने का काम ख़तम कर दें ताकि काफी तादाद में मज़दूर इस लाइन को तय्यार करने के लिये मिल सकें। सारे जर्मनी की फैक्टरियों से कहा गया था कि ९/५ की सैकड़ों मज़दूरों को इस लाइन पर काम करने के लिये छोड़ दें। दो लाख से अधिक मज़दूर इस लाइन पर काम करने में लगे रहे हैं। इस दीवार के साथ ही मशीनगनें, टैंक तथा विध्वंसक मशीनें चढ़ाई जा रही हैं। पर सब काम ऐसी गुप्त रीति से हो रहा है कि इसके बारे में कुछ विशेष पता नहीं चलता।

यद्यपि जर्मनी इस दीवार का निर्माण आत्मरक्षा के बहाने से कर रहा है पर यह बात कौन नहीं जानता कि जब तक जर्मनी स्वयं आक्रमण न करे, कोई भी उस पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकता।”

## चारण-वाणी

(१) ओपाजी आढा के गीत

( गतांक से लागे )

४

जोवन काज मोहाणो उठ जासी, याद भजन तणो अभियास ।

वळे न आवै कदै पामणो, वळे न बीजो वागड़ वास ॥ १ ॥

होय सनाथ जनम मत हारे, नाथ समर त्रयलोक नरेस ।

लाखां देतां मिळै न तोई, बीस कोड़ देतां लघुवेस ॥ २ ॥

सूने गाम न पाड़ संतोड़ो, गाफल हिवडै राख गियास ।

“ ओपा ” ये दिन कद आवसी, भजसां वळे कदे भगवान ॥ ३ ॥

परसराम भज चाख अमृतफल, जनम सफल हुय जासी ।

पाछो वळे अमौलक पंछी, इण तरवर कद आसी ॥ ४ ॥

५

कर जाणो तो कोई भलाई कीजो, लाह जनम रो लीजो लोय ।

पुरखी दो दन तणां पामणा, कणी सूं मत्ती बिगाड़ो कोय ॥ १ ॥

जाणो छै जाणो छै जाणो, समझो ओ भीतर व्है सान ।

वे दन काज जहर क्यूं धोलो, मरदां दूर तणां मजमान ॥ २ ॥

यूं करतां हीं जावै ऊमर, परम क काल परार क पोर ।

आंपां वात करां औरां री, आंपां री करसी कोई और ॥ ३ ॥

गिरवा<sup>१</sup> हुवा हरी गुंण गावो, छीलर ज्यूं मत दाखो छेह ।

आज क काल पियाणौ ‘ओपा’ ! दीहर्स गया ज्यूं ताली देह ॥ ४ ॥

[ प्रथमांक में प्रकाशित ओंपाजी के तीसरे गीत के तीसरे व चौथे दोहे के बीचके अन्य दो दोहे श्री खेतसिंहजी मिश्रण को उनके गांव के पास के ब्राह्मणवाड़ा ग्राम निवासी कवि शार्दूलजी गांगड़ा<sup>१</sup> से इस प्रकार मिले हैं—

मन में जाणै पिऊं पय मिसरी, छास सोम री<sup>२</sup> मिलै न छांट ।

बलिया सूं पाछी कुण बाळै, उण घर रा लेखण री आंट<sup>३</sup> ॥

ॐ

ॐ

ॐ

ॐ

ॐ

मन में जाणै पै'रूं महमूदी, फाट्या धावळ लियां फिरै ।

किसूं कळपै माणस रो कीधौ<sup>४</sup>, करै जिको करतार करै ॥

ॐ

ॐ

ॐ

ॐ

ॐ

[ “चारण वाणी” की कविता में जहां २ अर्थ की अस्पष्टता होगी वहां भविष्य में उन शब्दों पर देखा कर दी जाया करेगी जैसी कि इस अंक में भी की गई है ! अतः जो सज्जन अर्थ की स्पष्टता कर सकें वे ध्यान दें और सूचित करने की कृपा करें—सम्पादक ]

१. बड़े दुःख का विषय है कि, हमारी पित्रोपार्जित निधि डिंगल-साहित्य के अखूट भंडार-स्वरूप इन महानुभाव का विगत पौष शुक्ला १५ का ६२ वर्षकी उम्र में देहावसान हो गया ! समस्त उत्तर गुजरात एवं बड़ियार प्रांत में प्राचीन पीढ़ी के ये अंतिम कवि थे । इनकी याद-शक्ति अपूर्व होने से हजारों कविताएं इनके कंठाग्र थीं । कविता बोलने एवं कहानी कहनेका इनका ढंग अपूर्व था । बड़े सरल हृदय और भावुक व्यक्ति थे । २. हमारी समझ में यहां “छास छाग री मिलै न छांट” पाठ होगा । छाग=वकरी । ३. हमारी समझ में इस दोहाद्वि का भावार्थ है—“उस बलिष्ठ घर अर्थात् ईश्वर के घर की लेखनी के अग्रभाग को कौन वापस लौटा सकता अर्थात् रोक सकता है ?” ४. इस चरणार्द्ध का भावार्थ हमारी समझ में इस तरह है—“मनुष्य के कल्पना किया करने से क्या हो सकता है ?”

—सम्पादक, गुजराती विभाग



## (२) कविराजा बाँकीदासजी आशिया के गीत ( गतांक से आगे )

४

आयो अंगरेज मुलक रे ऊपर, आहँस लीधा खँच उरा ।

धणियां मरे न दीधी धरती, (वां) धणियां ऊमाँ गई धरा ॥ १ ॥

फौजां देख न कीधी फौजां, दोयण किया न खळां डळां ।

खवाँ खाँच चूड़े खाँच रे, उणहिज चूड़े गई इळा ॥ २ ॥

छत्रपतियां लागी नँह छाणत, गढपतियां धर परी गुमी ।

बळ नँह कियो बापड़े वोतां, जोतां जोतां गई जमी ॥ ३ ॥

दुय चत्रमास बाजियो दखणी, भोम गई सो लिखत भवेस ।

पूगौ नहीं चाकरी पकड़ी, दीधी नहीं मरठे देस ॥ ४ ॥

वधियो भलौ भरतपुर बाँझी, गाजे गजर धजर नभ गोम ।

पहलौ सिर साहब रौ पड़ियो, भइ उमां दीधी नँह भोम ॥ ५ ॥

“महि जातां चींथातां महळा, ए दोय मरण तणा अवसाण ।”

राखो रे किहँक रजपूती, मरदां हिन्दू की मुत्सलमाण ॥ ६ ॥

पत जोघाण, उदैपुर, जैपुर, पहुँ थारा खूटा परियाण ।

आँके गई, आवसी आँके, “वाँके आसल” किया दखण ॥ ७ ॥

१. खवाँ खाँच चूड़े=कंधे से कलाई तक के चूड़े सहित । खवाँ खाँच.....  
...गई इळा=पृथ्वी उसी अपने पुराने पूरे चूड़े सहित दूसरों के अधिकार में  
...गई । २. छाणत=अप्रिय, बुरी । छत्रपतियां..... छाणत=राजाओं के यह बात  
...ने नहीं लगी । ३. वोतां=वांछते समय । ४. गाजे गजर धजर नभ गोम=तोपों के  
बलने की गर्जना से आकाश और पृथ्वी भर गई । ५. पह=राजा । खूटा=समाप्त  
हुआ । ६. परियाण=वंश । पह.....परियाण=दे राजाओं ! तुम्हारा तो वंश ही समाप्त  
हो चला । ७. अभी कुछ मास पूर्व काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से  
कविराजा बाँकीदासजी के ग्रंथों का ठा० सा० मुरारिदानजी कविया, कुम्हारिया  
( जयपुर ) के संपादकत्व में ‘बाँकीदास ग्रंथावली’ नाम से तीसरा भाग प्रसिद्ध हुआ  
है । उसमें डिंगल भापा के अन्यान्य ९ ग्रंथों के साथ उनके फुटकर गीत, दोहा,  
सवैया, कवित आदि का संकुट-संग्रह भी प्रकाशित हुआ है । उसमें ‘चारण’ के  
प्रथमांक में प्रकाशित उक्त कविराजाजी का पहला एवं दूसरा गीत और इस अंक में  
प्रकाशित उपरोक्त गीत शब्दार्थ-भावार्थ सहित दिया गया है । और तदनुसार ऊपर  
के गीत की पाठ-शुद्धि कर हमने रेखांकित शब्दों के पंक्तियों का शब्दार्थ-भावार्थ  
लिखा है । अपने इस अनुचित हस्तक्षेप के लिये हम सम्पादक मोहादय के  
क्षमा-प्रार्थी हैं ।

—सम्पादक, गुजराती विभाग

[ इस गीत के साथ उक्त कविराज के प्रास्ताविक गीत हमारे संग्रह में समाप्त होते हैं । जिनके पास और हों वे अवश्य भेजने की कृपा करें ।

प्रस्तुत गीत में कवि की राजनीतिक दृष्टिदिशतापूर्ण भविष्यवाणी, स्पष्टवक्तृत्व, उस ज़माने के वैमनस्यकाल में भी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की राष्ट्रभावना और देश को खोई जाती हुई आज़ादी के लिये हार्दिक वेदना किन् मार्मिक शब्दों में प्रकट की गई है, सहृदय पाठक ज़रा देखें ।

इन कविराज के संबंध में पाठक इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित लेख देखेंगे ।

—सम्पादक ]



(३) महाकवि ठाकुर सूर्यमल्लजी मिश्रण (बूंदी) रचित

वीरसतसई (अपूर्ण)

[ इन दोहों का यथामति भावार्थ लिख दिया गया है, परन्तु जहाँ २ सन्देश है वहाँ दोहों पर रेखा कर दी गई है ।

—सम्पादक ]

दोहा

लाऊं पे सिर लाज हं, सदा कहाऊं दास ।

गण वही गाऊं तूफ़ गुण, पाऊं वीर प्रकास ॥ १ ॥

(मुझे सदा लज्जा है कि मैं आपका दास कहलाता हूँ । फिर भी वीररस के प्रकाश की प्राप्ति के लिये आपका नम्र सेवक हो आपके गुणगान करता हूँ ।)

आणी उर जाणी अतुल, गाणी करण अगूढ ।

वाणी जगराणी बले, मैं चीताणी मूढ ॥ २ ॥

(इन दोहों में वर्णसगाई का नियम न रखने से वीररस का पोषण हो दिखाई देता है । वीरता के हुताशन रंग में दोष कोई नज़र नहीं आता ।)

वीकम बरसां वीतिथी, गण चौ चंद गुणीस ।

बिसहर तिथ गुरु जेठ बदि, समय पलट्टी सीस ॥ ३ ॥

(विक्रम संवत् १९१४ की ज्येष्ठ कृष्णा ५ गुरुवार को समय से एकदम पलटा खाया ।)

इकहंकी गिण एक री, भूले कुळ साभाव ।

सूरां आळस ऐस में, अकन गुमाई आव ॥ ४ ॥

(उस समय किसी एक ही का आतंक मान कर अपने कुल स्वभाव को भूल शूरवीरों ने आळस्य एवं विलास में अपनी आयु को व्यर्थ खो दी ।)

इण बेळा रजपूत वे, राजस गुण रंजाट ।

सुमिरण लग्गा वीर सब, वीरां रौ कुळवाट ॥ ५ ॥

(इस प्रमाद काल में भी वे सब वीर राजपूत जो रजोगुण में अनुरक्त थे समय का परिवर्तन देख वीरों के कुलमार्ग का स्मरण करने लगे ।)

सत्तसई दोहामई, मीसण सूरजमाल ।

जै भइलाणी जठे, सुणे कायरां साल ॥ ६ ॥

(ऐसे अवसर पर मिश्रण सूर्यमल्ल दोहामयी उस वीर सप्तशती का उच्चारण करता है जो शूरसंहारिणी और सुनते ही कायरो के लिये शूलरूपिणी है ।)

नथी रजोगुण ज्वां नरां, वा पूरी न उफाण ।

वे भी सुणतां ऊफणि, पूरा वीर प्रमाण ॥ ७ ॥

(इसके श्रवण से जिन लोगों में रजोगुण नहीं है और न पूरा जोश; वे भी पूरे वीर के समान जोश में आ जायेंगे ।)

जे दो ही पख ऊमळा, जूझण पूरा जोध ।

सुणतां वे भइ सौगुणा, वीर प्रकासण बोध ॥ ८ ॥

(फिर ऐसे लोगों का तो कहना ही क्या जिनके दोनों पक्ष उज्ज्वल हैं और जो युद्ध के लिये कमर कसे रहते हैं । ऐसे सुभदों का शौर्य तो इसके श्रवण से सौमुना हो जायगा ।)

दमैगळ विण अपचौ दियण, वीर धणी रौ धान ।

जीवण धण बारहा मिकां, छोडो जहर समान ॥ ९ ॥

(मित्रो ! वीर स्वामी का अन्न युद्ध के बिना पचा नहीं करता । अतः जिन्हें अपने जीवन और पुत्र-कलत्र से मोह हो वे उसे जहर समझ कर छोड़ दें ।)

नहँ डाकी अरि खावणौ, आयाँ केवल वार ।

बधावबी निज खावणौ, सो डाकी सरदार ॥ १० ॥

(जबदस्त सेनानी वह नहीं है जो केवल अवसर आने पर शत्रु का संहार करता है; किन्तु प्रतापी नेता वह है जिसके लिये अरने ही लोग अहमदमिका से बलिदान हो जाते हैं ।)

डाकी ठाकर रौ रिजक, ताखा रौ बिल एक ।

गहळ मुआँ ही ऊतरे, सुणिया सूर अनेक ॥ ११ ॥

(यह अनेक श्रेष्ठों के उदाहरणों से सर्वश्रुत है कि जबदस्त मालिक का रिजक और तक्षक सर्प का बिष एक से ही होते हैं, कि जिनका नशा मरने पर ही उतरता है ।)

डाकी ठाकर सहण कर, डाकण दीठ चलाय ।

मायड़ खाय दिखाय घण, धण पण बलय बताय ॥ १२ ॥

(प्रतापी स्वामी अपने सेवकों की बातें सहन कर उन्हें खा जाता है, डाकिनी अपने भक्ष्य को दृष्टिद्वेष करके खाती है, माता पुत्र को स्तन दत्ता कर और पत्नी पति को बलय (चूड़ा) दत्ता कर खा जाती है ।)

सहणी सब री हूँ सली, दो उर उलटी दाह ।

दूध लजाणै पूत सम, बलय लजाणै नाह ॥ १३ ॥

(हे सखि ! और सब बातें मुझे सह्य हो सकती हैं किन्तु यदि प्राणनाथ मेरे बलय को लजा दें और पुत्र मेरे दूध को, तो ये दोनों बातें मेरे लिये समानरूप से दाहक एवं हृदय को उलट देने वाली हैं—असह्य हैं ।)

जे खळ भग्ना तो सली, मोताहळ सम थाळ ।

निज भग्ना तो नाह रौ, साथ न सुनो टाळ ॥ १४ ॥

(युद्ध में भगदड़ देख कर वीर पत्नी कहती है कि सखि ! यदि शत्रु भाग खड़े हुए हों तो मोतियों का थाल सजा ला जिस से हृदयेश्वर की आरती उताहंगी और यदि अपने ही लोग भाग चले हों तो प्राणनाथ का साथ मत बिछुड़ने दे अर्थात् शीघ्र मेरे सत्तां होने की तय्यारी कर ।)

हथळेवे ही मूठ किण, हाय विलगा माय ।

लाखाँ बातां टेकलो, चूड़ी मो न लजाय ॥ १५ ॥

(पाणिग्रहण के अवसर पर उनकी हथेली में के तलवार की मूठ के निशान (आंठण) मेरे हाथ में चुभते ही, मा ! मैं ताड़ गई कि कुछ भी हो जाय वे प्रणवीर मेरे चूड़े को कभी न लजायेंगे ।)

समझी और निसंक भव, जंबुक राह म जाह ।

पण घण रौ किम पैखही, नयण विणट्टा नाह ॥ १६ ॥

(पे चील्ह ! और २ अंग तो तू भले ही निस्संकोच खा; किन्तु शृगाल के मार्ग का अनुगमन मत कर । क्योंकि यदि तू प्राणनाथ को नेत्रविहीन कर देगी तो वे अपनी अर्द्धांगिनी का युद्ध में सहयोग का प्रणालन कैसे देख सकेंगे ।)

विण दामां बिलसै सदा, दामां दुरलभ नाग ।

न्याय भड़ां घर नारियां, चड्डी पीत सुदाग ॥ १७ ॥

(मूल्य देने पर भी जो हाथी दुर्लभ हैं उन्हें शत्रुओं से छीन कर जो शूरवीर बिना मूल्य ही उपभोग करते हैं उन सुभटों के घरों में कण्ठाभरण में गजमुका और हाथीदांत का चूड़ा स्त्रियों के सौभाग्यचिह्न माने जायें तो उचित ही है ।)

काय कलाली छळ कियो, सेज गुमावण रंग ।

फूल दुधारै, छाकियौ, चीतै चौगुण जंग ॥ १८ ॥

(पे कलालिन ! तैने यह क्या धोखा दिया । शय्यासुख का कुछ भी तो जानन्द नहीं रहा । वे तो तेरे वढ़िया शराब से मस्त हो कर भी युद्ध का ही अधिकाधिक स्मरण करते हैं ।)

भड़ घोड़ा महँगा थिया, एकण फाट उडंत ।

भड़ घोड़ां रा मामणा, जेथ जुड़ीजै कंत ॥ १९ ॥

(एक ही बार की मुठभेड़ में सुभट और घोड़े महँगे हो गये । क्यों न हो, जहाँ मेरे कन्त जा भिड़े कि घोड़ों और बहादुरों की फुट्र होने लग जाती है—उनकी बलैयां ली जाने लगती हैं ।)

दमँगळ विण दुमनो रहै, जडै न कंगळ जंत ।

सखी बधावौ त्यां भड़ां, जेथ जुड़ीजै कंत ॥ २० ॥

(युद्ध के बिना वे उदास रहा करते हैं और कवच की कड़ियाँ भी नहीं बंद करते । अतः सखि ! हमें तो उन बहादुरों को बधाना चाहिये जो प्रियतम से आ मिड़ें ।)

मूटै हाकै हुलसता, पीव बधाईदार ।

जागो सिव सांची कियो, धूमै मँगळ चार ॥ २१ ॥

(प्रियतम ! यों ही कोई शोर सुनकर आप का युद्ध होने की बधाई देने वालों से आप प्रसन्न होते थे । किन्तु आज तो शंकर ने वह सत्य ही कर दिया—द्वार पर हाथी घूम रहे हैं, जानिये ।)

आज सबेळौ जागणौ, कसियौ चर तोखार ।

प्यारा मिलिया पाहुणा, मिजमानी री वार ॥ २२ ॥

(क्या कारण है आज आप जल्दी ही जाग उठे और साईस ने भी घोड़ा तय्यार कर डाला ? किन्तु ओह ! अब श्रात हुआ, प्रिय अतिथि ( शत्रु ) आ पहुँचे हैं जिनकी खातिरदारी आप का इस समय करना है ।)

सुणतां हाकौ सहज ही, कीधी जेज कधी न ।

नौदाळ अव छोडणा, भोडणा कुच पीन ॥ २३ ॥

(मामूली कोई शोर सुन कर भी जा पहुँचने में आपने कभी देरी न की । फिर अब युद्ध का केलाहल सुन कर तो हे निद्रालु ! इन दवे हुए पीनस्तनों को छोड़ ही दोगे ।)

पूजाणौ गजमोतियां, मींढाणौ कर मूझ ।

धीजाणौ घण चामरां, हें चूडौ मळ तुझ ॥ २४ ॥

(पतिदेव ! गजमुक्ताओं से जिसकी पूजा हुई है, जिस पर छत्र ही संवर डुले हैं और जो मेरे हाथ में सुशोभित है वह चूड़ा आप का बल है—सहायक है ।)

कर पुचकारे घण कहै, जाण धणी री जैत ।

नीराजण बाधावियौ, हं बलिहार कुमैत ॥ २५ ॥

(अपने पति की विजय सुन पत्नी पति के घोड़े की आरती उतार कर और अपने हाथ से घषघषा कर कहती है कि कुमैत (घोड़े) ! तुझ पर बलिहारी हूँ ।)

जंग नगरां जाण-रव, आण धगरां अंग ।

तंग लियंतां तंडियौ, तोनै रंग तुरंग ॥ २६ ॥

(रणदुंदुभियों की आवाज़ सुनते ही शरीर में वीरस्फूर्ति लाकर तंग खिंचते हैं तो नाचने लग गया या बोल उठा, तुझे दावांस है ।)

हं बलिहारी राणियां, थाळ बजाणौ दीह ।

वीर जमी रा जे जण, सांकळहीटा सोह ॥ २७ ॥

(मैं उन रानियों के थाल बजवाने के दिन अर्थात् पुत्रप्रसव पर बलिहारी हूँ जो उच्छलल सिंहों के-से धनुषा के बौरों का जंग देती हूँ ।)



या किसी भावना या आदर्श के पुजारी थे ? मेरी नम्र सम्मति में यह कवि-समुदाय, ये सरस्वतीपुत्र किसी वर्ग के समर्थक नहीं थे, राष्ट्रदेव के उपासक थे । यदि राजपूतों को उन्होंने अपना प्रेमपात्र बनाया तो उस का कारण यही मालूम होता है कि मध्यकालीन भारत में राजपूत ही राष्ट्र की रक्षा-शक्ति के प्रतीक थे । यदि यह सही है तो क्या चारण जाति अपनी उपासना का रूप और क्षेत्र-राष्ट्रदेव के परिवर्तित स्वरूप के अनुकूल नहीं बनायेगी ? आज कोई वर्ग राष्ट्र नहीं है, सारी जनता राष्ट्र है । आज राजा मुख्य शक्ति नहीं, प्रजा प्रधान है । युगधर्म का तकाजा है कि चारण समाज इस शक्ति को जगावे और अपने पुराने देवताओं को, या तो इस नई देवी की उपासना में लगावे या उन्हें छोड़ दे । इसमें उसे त्याग करना पड़ेगा । शायद पहला त्याग 'त्याग' का ही करना पड़े\* । मगर जो दूसरों के शब्द से स्फूर्ति देता है उसे अपने कार्य से भी उदाहरण पेश करना चाहिये ।

कवि और साहित्यकार नई सृष्टि नहीं बनाते । वे तो युगों के अनुभव को और खास तौर पर युगधर्म को भावों के रूप में इस तरह पेश करते हैं कि वह जनता के हृदय पर अमिट रूप से अंकित हो जाय और जो महापुरुष या महाशक्ति युगविशेष का निर्माण करते हों उनका सन्देश व्यापक और कार्यपरिणत हो जाय । कवि किसी उसूल को देते

नहीं, प्रसारित करते हैं । तो फिर चारण समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के प्रचारक क्यों न बनें ? वे अनेक को एक के लिये जीने का समर्थन न करके एक को अनेक के लिये जीने की प्रेरणा क्यों न करें । वे राजपूतों को जापानी समुराई (जापान के जागीरदार सरदारों) का मार्ग क्यों न दिखावें ? वे राजस्थान की पीड़ित, मूर्च्छित और निराश प्रजा में आशा, जीवन और स्वाभिमान को क्यों न जगावें ?

यदि हम आस्तिक हैं तो अवतार-सिद्धान्त को मानते हैं । मेरी विनीत सम्मति में महात्मा गांधी आधुनिककाल के घेसे ही महापुरुष हैं । उन्होंने सामूहिक अहिंसा का एक नया सन्देश भारत को और उसके द्वारा जगत् को दिया है । उन्होंने बताया है कि कुटनीति और दालाखों के इस वैज्ञानिक संगठन में अत्याचार का सफल विरोध सीधे, सच्चे और अहिंसक जलों से हो हो सकता है । इस महान् आत्मा का यह महान् उद्देश्य धीरे धीरे किन्तु निश्चित रूप से पूरा हो रहा है । परन्तु हमारे राजस्थानी कवि-समाज ने इस उद्देश्य की पूर्ति में कितना सहयोग दिया है ? उस ने नवयुग के इस नवीन सन्देश का कितना प्रसार किया है ? बद्रकिस्मती से वह जिस प्रकार पुराने देवताओं से चिपड़ा हुआ है उसी तरह उस का पूजा अर्चा का सामान भी पुराना है । यदि चारण भाई इस नये अख, इस नई

\* अ० भा० चा० सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन (पुष्कर क्षेत्र, सं० १९७८ वि०) में ही 'त्याग' के परित्याग का प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास किया गया और तदनुसार राजस्थान में यह नामशेष है ।



युद्धकला की दीक्षा राजपूत और राजस्थानी जनता को देने लग जायें तो आज जो मुर्दानी, काहिली और नाउम्मीदी इस वीरभूमि में चारों तरफ़ छाई हुई दीखती हैं वह शीघ्र दूर हो जायें, इस में मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं। यह नवधर्म खुद चारण जाति को भी सामाजिक दृष्टि से पूर्ववत् आदरणीय और स्वावलंबी बना देगा।

तो क्या चारण जाति असमंजस में है ? क्या उसे राजा और प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य में विषमता दीखती है ? क्या वह दो चक्रादारियों के संघर्ष में किंकर्तव्यविमूढ़ है ? यदि ऐसा है तो सामंजस्य का मार्ग उस को कठिनाई का हल कर सकता है। वह शासक-समूह को कर्तव्य की और शासित जनता को

अधिकार की शिक्षा देने लग जाय तो चारणों का, राजपूतों का और प्रजा का यानी सब का भला हो सकता है। यदि एक ओर वह राजाओं और जमींदारों के समय की गति पहिचान कर प्रजासेवक बनने की प्रेरणा कर सके और प्रजाजनों में अन्याय का सक्रिय विरोध करने की भावना भर सके तो दोनों का उत्थान हो सकता है। यदि वह शासकों को प्रजा के हाथों में शासनभार सौंप कर निश्चिन्त हो जाने को राजी कर सके तो वह देश की ऐसी सेवा कर दे जिस की कहीं मिसाल न मिले और जो चारण जाति को इतिहास में सदा के लिये अमर कर दे। यदि वह इच्छा करेगी तो शक्ति मा 'करनी' दे दूँगी।

## काव्य-कुंज

### विधि-वैपरीत्य

( ले०-राजस्थान-केसरी कविवर ठा० श्री केसरीसिंहजी बारहठ, कोटा )

रोकत क्यों ना नृपन कौ, शुभचितक कहलात ।

जे पूछत यें हमहिकौ, सुनहु रम की बात ॥

राजनीति ओट, लिखि कहिकै बदल जावैं,  
लोभ को प्रबंध कहि दीनजन चूसे जात ।

कृपण छिपावैं धनमोह कौ मितव्यय में,  
निर्दयता न्याय, नाम झूरता, प्रभाव पात ।

देश काल-ज्ञान मानि, हनि कुलधर्म चैलें,  
 डूबि खोटे व्यसन जतावैं दिल बहलात ।  
 बहते विरुद्ध पौन महिप-मदांध-मौन,  
 रोकैं कौन ऐंचि रसो विधि-विपरीत हात ॥

### देवजाति ?

( ले०-श्री मोतीसिंहजी रोहड़िया, बी० प्र०, जोधपुर )

स्वार्थ त्यागि सत्य कहने की शुभनीति छोड़ि-  
 पेट पालने को, वान गद्दी, जी हुजुरी है ।  
 साहस नहीं है श्रम करके कमाई करें,  
 भाइयों का हिस्सा खोसि खाने में गछूरी है ।  
 विधवा-अनाथों पर जुल्मकी न पूछो बात,  
 अन्न-यस्त्र आदि की व्यवस्था भी न पूरी है ।  
 दावा देवजाति का करत सकुचाओ 'सिंह' !  
 अब ही तो आप में मनुष्यता अधूरी है ॥

### वसन्त-विडम्बना

अनुचित स्वार्थ ने दवाया है विवेक सारा,  
 देखो जहां तहां एक यही जयवन्त है ।  
 चल पड़ी चारों ओर राजा-प्रजा ऐंचातान,  
 प्रेमभाव रखनेकी बात में न तन्त है ।  
 सुनते न अहंमन्य सर्व हितकारी बात-  
 कहता पुकार कर जो कि गांधी सन्त है ।  
 समझो भले ही सुखदायक वसन्त आया,  
 देश-हित में तो अभी दुख का न अन्त है ।

## होली

( ले०-श्री मोतीसिंहजी रोहड़िया, बी० ए०, जोधपुर )

भूखे पेट कई बिललाते लाल भारत के !

शिक्षा हेतु कितने गहव कर शोली है ।

फिरें अधनंगी कई आर्य ललनायें 'सिंह' !

मिले तन दांकने को ओढनी न चोली है !

ऐसी दीन हीन दशा बन्धुजन की-बिसार,

मस्त भये भूमते हो सूझत ठठोलो है ! !

कौन गिपती है सूखी लकड़ी जलाना, नहा-

हृदय हजारों में हमेशा होत होली है ! !

## कविराजा वाँकीदास\*

पाथ्याय रायबहादुर पं० श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर ]

वीर-भूमि राजस्थान डिगल-भावा के कवियों की खान है। समय-समय पर वहाँ ऐसे कवि-रत्न उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने युद्धों के प्रसंगों पर ओजस्विनी रचनाओं द्वारा जादू का काम किया है। आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व मारवाड़ में एक ऐसे ही व्यक्ति का जन्म हुआ था, जो सच्चा कवि, इतिहास का मर्मज्ञ और साहित्य में उच्च कोटि का विद्वान् था। अतएव इस लेख द्वारा पाठकों के उक्त राजस्थान के कवि-रत्न का यत्किंचित् परिचय कराया जाता है।

चारणों का राजपूतों में दीर्घ काल से बड़ा मान चला आ रहा है। सच पूछा जाय, तो क्षत्रियों की वीरता को जीवित रखनेवाले भी ये ही लोग रहे हैं। यही कारण है कि राजस्थान में इन लोगों को बड़ी-बड़ी जानीरें मिली हुई हैं। इस लेख के चरित्र नायक कविराजा वाँकीदास का जन्म चारण-जाति के आसिया-कुल में, वि० सं० १८२८ ( ई० सन् १७७१ ) में, जोधपुर-राज्य के पचमदरा-परगने के भाँडियाचास-गाँव में, हुआ था। अपने पिता से कविता का सामान्य ज्ञान प्राप्त

\* 'सुधा' मासिक पत्रिका की धावण, ३१३ तु० सं० की संख्या में प्रकाशित यह लेख, लेखक महोदय की आज्ञा से यहाँ मुद्रित किया जाता है।

—सहकारी सम्पादक, हिंदी विभाग

कर वि० सं० १८५४ (ई० सन् १७९७) के लगभग वह जोधपुर गये। वहाँ निरंतर पाँच वर्ष तक भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से भाषा के काव्य-ग्रंथ, व्याकरण में सारस्वत और चंद्रिका, साहित्य में कुवलयानंद तथा काव्य प्रकाश आदि ग्रंथों का अध्ययन कर हिंदी-भाषा के काव्य-ग्रंथों द्वारा विस्तृत ज्ञान-वृद्धि की।

उस समय मारवाड़-राज्य के सिंहासन को महाराजा मानसिंह सुदोमित करते थे, जो विद्या-रसिक, काव्य-प्रेमी और कवियों के आश्रय-दाता थे। वि० सं० १८६० (ई० सन् १८०३) में चौकीदास को पहुँच उक्त महाराजा के पास हुई। उनकी अद्भुत कवित्व-शक्ति, सत्य-वादिता और निर्भीकता आदि गुणों से मुग्ध होकर प्रथम अवसर पर ही उक्त गुणग्राही महाराजा ने उनको लाख-पसाव नामक पारितोषिक देकर अपने राजकवियों में स्थान दिया। महाराजा मानसिंह स्वयं कवि थे। उन्होंने अपनी ज्ञान-शक्ति का विकास करने के लिये चौकीदास से साहित्य के ग्रंथों का पढ़ना आरंभ किया, और उसमें शीघ्र ही अच्छी गति प्राप्त कर ली। महाराजा ने उनके 'कविराजा' को उपाधि, ताज़ीम, पाँच में सेना और चौहपसाव आदि से सम्मानित किया, तथा कामुजों पर लगाने के लिये मोहर (मुद्रा) रखने का मान दिया, और उसमें उनके अपना शिक्षा-गुरु होने के वाक्य खुदवाने की आज्ञा दी, जो नीचे लिखे अनुसार है—

“श्रीमन् मान धरणिपति बहु गुण-रास,  
जिन भाषा गुरू कीनी चौकीदास।”

शरीर स्थूल होने के कारण कविराजा चौकीदास को चलने-फिरने में कठिनाई होती थी, और वृद्धावस्था में वह पैदल चलने में असमर्थ हो गये थे। वह जब जोधपुर के क़िले में जाते, तो जहाँ तक सवारी जाती है, वहाँ तक पालकी में बैठकर जाते, उसके आगे कहार तथा छोटे नौकर उनके लकड़ी के पाटे पर बिठाकर ले जाते थे। ज्यों ही उनका पाटा महाराजा मानसिंह के सामने पहुँचता, त्यों ही महाराजा खड़े होकर उनके ताज़ीम देते और वह पाटे पर बैठे हुए ही महाराजा को चिह्न सुनाते थे।

वह हिमाल-भाषा एवं विमल-शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता तथा आशु-कवि थे। उनकी धारणा-शक्ति इतनी प्रबल थी कि एक बार भी किसी केँ मुँह से कोई बात सुनते, तो उसके ज्यों-की-त्यों अपने मुँह से सुना देते थे। उनकी वीर-रस-पूर्ण कविता बड़ी चित्तकर्षक होती थी। उनका इतिहास-ज्ञान भी बड़ा-चढ़ा था। एक बार ईरान का कोई सरदार भारत-वर्ष की सैर करता हुआ जोधपुर पहुँचा, और महाराजा से मुलाकात होने पर उसने किसी इतिहासवेत्ता से बातचीत करने की इच्छा प्रकट की। इस पर महाराजा ने चौकीदास को ही उपयुक्त समझ उस सरदार के पास भेजा। ईरानी सरदार उनसे मिलकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने उनके ऐतिहासिक ज्ञान की प्रशंसा लिखकर महाराजा के पास भेजी, जिससे महाराजा ने बड़ा गौरव समझा।

कविराजा बड़े स्वाभिमानी थे। एक समय महाराजा मानसिंह नेव-रोग से

पीड़ित हुए, और वह पीड़ा छः मास तक बनी रही। विवश होकर महाराजा ने आँखों का दूषित वायु से बचाने के लिये पर्दे के भीतर रहना स्वीकार किया, और राज्य के कर्मचारियों को अपने सामने बुलाना छोड़ दिया। उन दिनों राज-कर्मचारियों को महाराजा से कोई बात कहनी होती, तो वे पर्दे के बाहर बैठकर निवेदन करते थे। उस अवसर पर एक दिन महाराजा को कविराजा की आश्चर्यकता हुई। दो-तीन बार नौकर भेज उनके हाज़िर होने के लिये कहलाया, किंतु प्रत्येक बार उन्होंने बीमार होने का बहाना किया। तब उनके पुत्र ने उनके महाराजा के अप्रसन्न होने का डर दिखलाकर महलों में जाने का आग्रह किया। इस पर उन्होंने पर्दे के बाहर बैठकर महाराजा से बात करने में अपना अपमान होना प्रकट कर महाराजा के पास जाने से साफ़ इनकार किया। यह बात उस सेवक ने उद्यो-की-त्यो महाराजा से कह सुनाई। इस पर महाराजा ने उस सेवक को फिर भेजकर कविराजा को कहला भेजा कि यदि मेरी आँख की पीड़ा बढ़ जाय, तो कोई चिंता नहीं, पर आपको बाहर बिठलाकर बात नहीं कहेंगे। तब वह दरबार में गये। गुप्त-द्राहक महाराजा ने नेत्र की पीड़ा होने पर भी कविराजा को अपने सम्मुख बुलाकर बातचीत की।

महाराजा ने अपने राजकुमार छत्र-सिंह की शिक्षा का भार भी कविराजा पर छोड़ा था; किंतु कविराजा ने छुँयर के लक्षण देखकर जान लिया कि यह

अवगुणों का भंडार है, उस पर शिक्षा का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ेगा, इसलिये उन्होंने राजकुमार की शिक्षा देना छोड़ दिया। महाराजा मानसिंह को जब ज्ञात हुआ कि कविराजा राजकुमार की शिक्षा देने के लिये नहीं जाते, तब उन्होंने उनसे राजकुमार को न पढ़ाने का कारण पूछा। कविराजा ने कहा—“यह कुपूत है, इसको शिक्षा-देकर मैं अपनी कीर्ति में बढ़ा लगाना नहीं चाहता।” आगे जाकर उनका कथन अक्षरशः टीक निकला, और महाराजा मानसिंह को छत्रसिंह के कारण बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ उठानी पड़ीं।

कविराजा की अद्भुत काव्य-कलर की प्रशंसा सुन मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह ने, जो काव्य के ज्ञाता थे, उन्हें उदयपुर बुलाकर विशेष रूप से उनका सम्मान करना चाहा, परंतु उन्होंने जोधपुर-नरेश के अतिरिक्त अन्य जगह से दान न लेने की प्रतिज्ञा कर ली थी, इसलिये महाराणा से प्रतिग्रह लेना अस्वीकार कर उसके लिये धन्यवाद-पूर्वक क्षमा-वाचना की।

कविराजा पंडे निर्भीक थे। एक बार जोधपुर में बहुत वर्षा हुई, और सूरसागर तालाब जल से परिपूर्ण हो गया। उस अवसर पर वर्षाकृत के आनंद को लट्टने के लिये महाराजा सपत्नीक सूरसागर गये, और कविराजा भी पालकी में बैठकर खाना हुए। मार्ग में जलानी सचारी जा रही थी, जिसके साथियों ने उनके छहर जाने के लिये कहा; किंतु उन्होंने महाराजा के नाराज होने की कुछ

भी परवा न कर कहा—“ऐसी रानियाँ बहुत-सी जाती हैं।” जब सूरसागर पर जनानी सवारी पहुँची, और रानी ने बाँकीदास की धृष्टता का हाल महाराजा से निवेदन करना चाहा, तो महाराजा ने यह उत्तर दिया—“हम यहां जामोद-प्रमोद के लिये आये हैं, इसलिये जिस किसी को हमारे आनंद में बाधा उपस्थित करना हो, वही यहाँ अर्ज करें, नहीं तो जोधपुर लौटने के बाद जो कुछ अर्ज करना हो, करें।” फिर महाराजा जोधपुर लौटे, तब रानी ने कविराजा की गुस्ताखी की बात महाराजा से कह सुनाई। इस पर महाराजा ने उत्तर दिया—“यदि मैं चाहूँ, तो आप-जैसी बहुत रानियाँ ला सकता हूँ, परंतु ऐसा दूसरा कवि मुझको नहीं मिल सकता। इसलिये अब इस विषय में मौन धारण करना ही अच्छा होगा।” इस पर वह चुप हो गई।

, महाराजा मानसिंह के पूर्व जोधपुर की गद्दी पर उनके सचेरे भाई भीमसिंह थे। भीमसिंह ने गद्दी पर बैठते ही अपने कई भाई-भतीजों को मरवा डाला था। इस कारण महाराजा मानसिंह वहाँ से भागकर जालोर में, जो बचाव के लिये सुरक्षित स्थान था, जा बैठे। उनको वहाँ से निकालने के लिये महाराजा भीमसिंह ने सिंधवी इंद्रराज की सेना देकर भेजा, जिसने जालोर के किले को घेर लिया, और मानसिंह को यहाँ तक तंग किया कि वह विवश होकर किले से निकल जायें। उक्त किले में जलंधरनाथ का एक स्थान था। वहाँ के आयस (कनफड़ानाथ) देवनाथ ने उनसे कहा—“यदि आप छः

दिन और इस किले में रह जाओगे, तो यह आपके हाथ से कभी न निकल सकेगा, और आप भारवाड़ के स्वामी होकर जोधपुर पहुँचोगे।” इन वाक्यों पर उनका हृदय विस्वास हो गया, और अनेक आपत्तियाँ सहने पर भी उन्होंने जालोर के किले को न छोड़ा। इन्हीं दिनों जोधपुर से महाराजा भीमसिंह के देहांत हो जाने का समाचार इंद्रराज को मिला। जोधपुर का तमाम सैनिक-बल इंद्रराज के अधिकार में था, इसलिये उसने सोचा, यदि कोई दूसरा गद्दी पर बैठ गया, तो सरदार उसे अपने क़ाबू में कर लेंगे, और मानसिंह की गद्दी पर बिठाया जाय, तो वह अपने हाथ में रहेगा, और उस पर यह बड़ा उपकार का काम होगा। निदान, उसने महाराजा मानसिंह की यह सूचना, देकर बिना संकोच उन्हें जोधपुर चलने के लिये कहलाया, परंतु उन्हें विस्वास नहीं हुआ। अंत में जब उन्हें निश्चित रूप से भीमसिंह की, मृत्यु का हाल प्राप्त हुआ, और उनके विरुद्ध होनेवाले पड़-पड़ का भय मिट गया, तब वह जालोर से आकर जोधपुर के सिंहासन पर आरुढ़ हुए। इसके बाद महाराजा ने आयस देवनाथ की भविष्यवाणी को स्मरण कर उसको अपना गुरु बनाया, जिससे नायों का उपद्रव बहुत बढ़ा; परंतु महाराजा सदा उस बात की उपेक्षा ही करते रहे। अंत में नायों के उपद्रव से तंग होकर सरदारों ने आयस देवनाथ को अमीरख़ा पठान के द्वारा मरवा डाला, और हुँवर छत्रसिंह को महाराजा के हाथ से राज्याधिकार दिलवा दिया।

इतना ही नहीं। कुँवर को चांपासनी के वल्लभ-संप्रदाय के गोसाईं द्वारा मंत्रोपदेश दिलवाया, जिससे वहाँ कनकद्वों का प्रभाव होने लगा। उस समय कविराजा ने महाराजा के अप्रसन्न होने की कुछ भी परवा न कर नायों का निंदासूचक एक सवैया कहा, जिसका अंतिम चरण इस प्रकार है—

“मान को नंद गुविंद रटै,  
तव... फटै कनकद्वन की।”

युवराज छत्रसिंह शीघ्र ही मृत्यु का प्राप्ति हुआ, तदनंतर फिर राज्याधिकार महाराजा मानसिंह ने अपने हस्तगत कर लिया। नायों के बड़े पक्षाती होने के कारण उक्त महाराजा ने कविराजा के कहे हुए उक्त सवैया से चिढ़कर उनके दंड देना चाहा। महाराजा के क्रूर स्वभाव से कविराजा अपरिचिन् न थे। इसलिये जो नेकर उन्हें बुलाने आया, उससे कहा कि मैं शक्ति होता हूँ, तुम चलो। किंतु वह महाराजा के पास नहीं गये, और तेज़ चलनेवाले उँट पर सवार होकर, मारवाड़ का परित्याग कर भैयाड़ चल दिये। वहाँ पर उनका घेसा ही आदर रहा, जसा जोधपुर में था। महाराजा को कविराजा के मारवाड़ छोड़ देने पर बड़ा दुःख हुआ। अंत में उन्होंने बहुत कुछ अनुनय-विनय करके उनको फिर जोधपुर बुला लिया।

धायण मुदि ३, वि० सं० १८९०  
( ई० सन् १८३३ ) को कविराजा का परदेस-यास हुआ। महाराजा मानसिंह

को उनकी मृत्यु पर बड़ा शोक हुआ, और निम्न-लिखित सोरठों में उन्होने अपने हृदयोद्गार प्रकट किये—

“सद्विद्या बहु साज,  
बाँकी थी बाँका वसू।  
फर सूधी कवरान,  
आज कठीगो आसिया।

विद्या कुल विख्यात,  
राज काज हर रहसरी।

बाँका तो विण बात,  
किण आगळ मनरी कहाँ ॥”

कविराजा बाँकीदास रचित डिगल और ब्रजभाषा के छंदि-बड़े कई ग्रंथ हैं, और उनकी फुटकर कविताएँ और गीत तो अनेक हैं। महाभारत के कुछ अंश का हिंदी अनुवाद भी उन्होंने किया था, परंतु अभी तक वह अप्रकाशित ही है। महाभाषा के गंगालहरी आदि २४ ग्रंथों में से निम्न-लिखित ग्रंथ नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ने बालाबक्ष राजपूत-चारण-पुस्तकमाला में, दो भागों में प्रकाशित किये हैं।

पहले भाग में—( १ ) सूर-छत्तीसी,  
( २ ) सोह-छत्तीसी, ( ३ ) वीर-विनोद,  
( ४ ) धवल-पद्मीसी, ( ५ ) दातार-बावनी,  
( ६ ) नीति-मंजरी और ( ७ )  
सुपह-छत्तीसी।

दूसरे भाग में—( १ ) वैसक-वातां,  
( २ ) माघ-द्विषा मिजाज, ( ३ ) कृष्ण-द्वेषण,  
( ४ ) मोह-मर्दन, ( ५ ) चुगल-मुख-  
चपेटिका, ( ६ ) वैस-वातां, ( ७ )  
कुकवि-वत्तीसी, ( ८ ) विदुर वत्तीसी,

( ९ ) भुरजाल-भूषण और ( १० ) गंगालहरी ।

अप्रकाशित—( १ ) झमाल, ( २ ) जेहल-जस-जड़ाव, ( ३ ) सिधराव-छत्तीसी, ( ४ ) संतोष-बावनी, ( ५ ) सुजस-छत्तीसी, ( ६ ) वचन-विवेक-पच्चीसी और ( ७ ) कायर-बावनी । +

कविराजा बाँकीदास की कविता डिंगलभापा में प्रायः वीर-रस-पूर्ण हुआ करती थी, जिसका राजपूताने में बड़ा सम्मान है, किंतु समय-समय पर उन्होंने अपनी कविता में अन्य रसों का भी प्रयोग किया है । कहते हैं, जयपुर और जोधपुर के महाराजों के आपसी के घेर के मिटाने के लिये महाराजा मानसिंह ने अपनी कन्या का विवाह जयपुराधीन

जगत्सिंह के साथ तथा जगत्सिंह ने अपनी बहन का विवाह मानसिंह के साथ कर दिया था । उस समय हिंदी के प्रसिद्ध कवि पद्माकर और बाँकीदास के बीच काव्य-चर्चा हुई, जिसमें बाँकीदास ने बाजी मार ली । उनकी डिंगल-भापा की कविता ओज-पूर्ण, प्रसाद-गुण-युक्त, उत्कृष्ट एवं सुधरी हुई होती थी । उनका ऐतिहासिक ज्ञान भी अगाध था । मेरे संग्रह में उनकी लिखी हुई अनुमानतः २८०० ऐतिहासिक बातों का संग्रह है, जो अब तक अप्रकाशित है । वह संग्रह केवल राजपूताने के इतिहास के लिये ही उपयोगी है । इतना ही नहीं, किंतु राजपूताना के बाहर के राज्यों तथा मुसलमानों के इतिहास की भी उसमें कई बातें उल्लिखित हैं \* ।

## डिंगल साहित्य में हास्यरस

[ ले० भैरव उदयसिंह दधिवाड़िया, एम० ए०, एल-एल० बी० (प्रीवियस),  
हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी ]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सबसे आदि काल और बड़ा ही महत्वशाली समय 'वीर-गाथा-काल' गिना जाता है । उस समय केवल डिंगल साहित्य का

+ अभी कुछ मास पूर्व उक्त सभा की ओर से 'बाँकीदास-ग्रंथावली' का तीसरा भाग प्रसिद्ध हुआ है, उसमें 'रूपण-पच्चीसी' एवं 'हमरोट-छत्तीसी' नामक अन्य दो ग्रंथों के साथ ये सातों ग्रंथ दिये गये हैं । —सम्पादक, गुजराती विभाग

\* कविराजा बाँकीदास के पात्र मुराविदान साहित्य के विद्वान् और अच्छे कवि थे । जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (दूसरे) के नाम पर उन्होंने अलंकार का भापा में 'जसवंतजसोभूषण' नामक बृहद् ग्रंथ रचा । उनकी योग्यता आदि सद्गुणों से प्रेरित हो अँगरेजी सरकार ने उनको महामहोपाध्याय का खिताब दिया था । —लेखक



ही पूर्ण बोलवाला था और अन्य साहित्य तो केवल नींद में सोते हुए से ज्ञात होते थे। ठीक वह समय ही पेशा था जब चारों ओर चारण लोग सबसे अधिक पूज्य समझे जाते थे। उस काल में केवल वीर रस-युक्त कविता की ही गुंज हो रही थी। और इस वीररस-युक्त कविता के निर्माता थे चारण कविगण। वह समय पेशा था जबकि क्षत्रियों की तलवारें चारों दिशाओं में चमचमा रही थीं। उस समय के चारण कवियों की वाणी में भी वह शक्ति, वह ओज, वह उल्लास, वह चमत्कार और वह जोश था जो मुर्दों में जान डाल देता था, कायर को वीर में परिणत कर देता था और क्षत्रियों को तलवार पर नाच नचाता था। अतः क्षत्रिय गण चारण कवियों को हर समय अपने साथ रखते थे जिससे वह अपनी ओज-स्विनी कविताओं द्वारा रणक्षेत्र से भागी हुई सेनाओं में भी पुनः जोश का संचार कर देते थे। ये चारण कविगण केवल वीरता पूर्ण कविता से ही लोगों को प्रभावित नहीं करते थे परन्तु स्वयं भी वीरता से लड़ कर क्षत्रियों के लिये-देश और जाति के लिये-मर मिटते थे। अतः वह समय ही चारण जाति के उन्नति का उच्चतम शिखर समझ लीजिये।

परन्तु "सब दिन रहत न एक समान" ! समय ने धीरे-२ पलटा खाया। डिंगल साहित्य का वह स्वर्णयुग बीत चला। अन्य साहित्यों के भी अंगुर निकलने लगे। तलवारों की चमचमाहट रुक गई, युद्ध शान्त हो गये और क्षत्रिय लोग बिलासिता के गहरे क्षुब्ध में आ गिरे। ऐसी परिस्थिति में भला चारण कविगण काल की चपेट से कैसे बच सकते थे ? उन्होंने अपनी कविता में शृंगार रस का प्रधानता देना प्रारम्भ कर दिया।

तदनन्तर "Old order changeth yielding place to new" इस अंग्रेजी उक्ति के अनुसार चारण कवि इस से भी ऊब चले। फिर क्या था ? अन्य रसों पर भी वे समय-समय पर कविता करने लगे। प्रस्तुतः लेख में उनमें से केवल हास्यरस का ही दिग्दर्शन हम पाठकों को कराते हैं।

हास्य मनुष्य-जीवन के लिये बड़ी उपयोगी वस्तु है। उसके बिना संसार में जीवन नीरस प्रतीत होता है। इसके द्वारा मुरझाये हुए हृदय भी फिर से खिल उठते हैं, खैर। देवे, डिंगल की हास्य रस-युक्त कविता के थोड़े से उदाहरणों से भी पाठकों के हृदय-कमल खिल उठते हैं या नहीं।

अच्छा, पाठक धृन्द ! आपने एक साथ ही दश-मुख वाले राजा रावण का नाम तो सुना ही होगा। अब जरा उसके जन्म काल की एक छोटी-सी घटना को भी सुन लीजिये।

"राना रावण जनमियो, दस मुख एक शरीर ।  
जननी ने सांसी भयो, किन मुख धालूं खीर ॥"

रावण का जन्म होने से माता को बड़ी प्रसन्नता हुई परन्तु साथ ही उस का एक तो शरीर और मुँह दश देख कर बड़े भारी संशय में पड़ गई कि अब स्तनपान किस मुँह से करावे ?

यदि आपने स्त्रियों की अजीब बातों को कभी न सुना हो तो अब सुन लीजिये। पति के घर लौट आने पर उसकी स्त्री अपनी सखी से घर की दशा का वर्णन कर रही है और कहती है—

“साजन आया है सखी ! ज्यों की जोती वाट ।

थांभा नाचें, घर हँसै, खेलण लागी खाट ॥”

याह ! हृद कर दी। खम्भे भी कभी नाचते होंगे। घर भी भला हँसने वाला पदार्थ है और आपने कभी खाट को भी खेलते हुए देखा है !

इसी प्रकार पुत्री के सयानी होने पर पिता उसके विवाह की चिन्ता कर ही रहा था कि पुत्री चद्र से बीच ही में बाल उडी—

“बाबा मत देह मारवाँ, बर कुंवारी रहेस ।

हाथ कचोळो सिर धुड़ो, सिंचंती ही मरेस ॥”

हाय ! गजब हो गया ! घेचारे समस्त मारवाड़ियों को क्यों ही रहना पड़ेगा। फलिगुण आ गया। लड़कियाँ विवाह के लिये अपनी पसंदगी-नापसंदगी झाँहिर करने लग गईं। याह ! क्यारी लड़कियों का मारवाड़ियों पर इतना अन्याय। वे क्यारी रह जायेंगी परन्तु मारवाड़ में विवाह नहीं करेंगी। यदि पेसा करें तो पानी ढोते-ढोते मर जायें। याह रे ! मारवाड़ देश। लड़कियाँ तक घृणा करती हैं। खेर !

क्या आपके मालूम है आजकल साधुओं की संख्या दिनोंदिन क्यों बढ़ती जाती है ? देखिये, साधु हो जाने पर तो मनुष्य को कई लाभ होते हैं—

“मूंड मुंडायाँ तीन गुण, मिट्टी टाट री खान ।

बाबा बाबा जगत में, मिळ्यो पेटभर नान ॥”

लाम नम्बर एक, सिर के बाल सकाचट हुए और बस, खोपड़ी की खुजली मिट्टी। लाम नम्बर दो, जो कोई उन्हें देखे यह चिल्ला उठता है “बाबा जो महराज !” नहीं तो वैसे कौन पूछे ? और लाम नम्बर तीन यह है कि भरपेट भोजन बैठे-बिठाये मिल जाता है ! इसी प्रकार—

“चेला लावे मांग कर, बैठा सार्व भय ।

राम भजन तो नाम है, पेट भरण रो पय ॥”

चेले तो दर-दर भटक कर मांग लाते हैं और महन्तजी का तो सिद्धान्त है ही कि ‘राम नाम जपना, पराया माल अपना।’ इस तरह नाम तो राम भजन का है और काम है पेट भरने का।

पाठक धृन् ! देखिये, जो लोग शरीर में थोड़ा सा भी बर्द होने पर अपनी दुर्बलता जता कर तरो-ताजा पकवान खाने की इच्छा करते हैं, उनके विषय में चारण कविवर कृपारामजी क्या कहते हैं—

“ धोचो लागों घाव, धी गेहूं भावे घणा ।

अहड़ा तो अमराव, रोट्यां मूँवा राजिया ॥”

हे राजिया ! ऐसे उमराव सिर्फ़ रोटी कपड़ा देकर रखे जायँ तो भी मंहंगे हैं । ईश्वर बचावे ऐसे नौकरों से !

अच्छा, अब जरा माखाड़ की रेलगाड़ी (Jo Ro) की भी सैर कर लीजिये—

“ नहीं तार नहि टैम है, नहीं बत्ती में तेल ।

आ चालै मन रे मते, मारवाड़ री रेल ॥”

वाह ! अजीब रेलगाड़ी है । न समय का ही कुछ खयाल है, न तार का ही पता है और उसकी रोशनी तो बस अंधेरे से भाँ गई होती है । और इच्छा-नुसार चलती ऐसे है जैसे कोई दृढ़ पैर बढ़ाता हो । ईश्वर ऐसी रेलगाड़ियों से दूर ही रखे !

अब ज़रा बेचारे हूँदाड़ देश को भी देख लीजिये—

“ गाजर मेवो कांस खड़, पुरख जु पून उवाड़ ।

अंधा ओज़र अस्तरी, अइ हो धर हूँदाड़ ॥”

वाह रे हूँदाड़ देश ! तेरी अब क्या प्रशंसा करे ! मेवे के नाम पर तो गाजर पैदा होती है और घास ईश्वरने कांस जैसी पैदा की । और वहाँ के खी-पुरुषों का तो कुछ पूछिये ही मत । उलटे पेटवाली चन्द्रवदनियाँ और पुरुष अधजंगे । वाह ! खूब जोड़ी मिली है—

परंतु अब इस थरादरी देश की औरतों को तो देखो—

“ गागरपेटी गदचली, खीच अनोधा साय ।

नार हिंडवा नीपनै, वाह ! थरादरी-बाय ॥”

सचमुच, इन गागर सदश पेटवाली पत्नियों के आगे बेचारे हूँदाड़ की ओवे पेटवाली कामिनियों पानी भरती हैं । इन्होंने अपनी गद्दी सदश चाल के द्वारा अन्य देशों की हंस-गमनियों का गर्व उतार दिया है । इतना ही नहीं, यदि पतिदेव की आर्थिक स्थिति सामान्य है तो इनके दो-बो हंडी खीच के आहार की व्यवस्था हो नहीं हो सकती ! वाह थरादरी देश ! तेरी संतति ने तो सबसे आगे बाज़ी मार ली !

पाठक धृन् ! अब ज़रा जाते-जाते अकाल का वर्णन सुन लें—

“ पग पूंगळ घड़ कोटड़े, वाह बायडमेर ।

फिरतो घिरतो धीकपुर, ठावो जैसजमेर ॥”

वस, समझ जाइये कि पूंगल में तो इसके पैर जमे ही रहते हैं और कोटड़े की तरफ भी आंख लगी रहती है ही, खैर । बाटुमेर को भी किसी तरह फंसा लेता है । बोकानेरकी ओर तो समय-समय पर घूमने निकल जाता है । और यदि खास उसका अड़ा ही घात करना हो तो जाइये सीधे जैसलमेर ।

वस, पाठक वृन्द ! अब बहुत हो चुका । अब तो आपके मुखारविन्दों से बिखरे हास्य-पुष्पों को बंदार कर लेख समाप्त किये देंगे हैं । किन्तु आपको यह तो घात हो ही गया होगा कि चारण कविगण केवल वीर या शृंगार आदि एक-दो रस-युक्त कविता करने में ही सिद्धहस्त नहीं थे, जैसा कि कुछ लोग मानते हैं, परन्तु अन्य रसों पर भी कविता सफलता पूर्वक कर सकते थे । इस बात का प्रमाण डिंगल-कवियों के प्राचीन ग्रन्थों की खोज करने पर प्रत्यक्ष मिल जाता है । परन्तु इस प्रकार की विभिन्न रस-युक्त कविता अभी तक संसार की दृष्टि से एक प्रकार से अज्ञात है, और इसका एक मात्र कारण यही है कि डिंगल के प्राचीन ग्रन्थ हस्तलिखित अवस्था में ही चारण सरदारों के घरों में पड़े हुए दीमकों और चूहों की भोजन-सामग्री बन रहे हैं । अतः प्रत्येक जाति-हितैषी व साहित्य-प्रेमी चारण-का कर्तव्य है कि, डिंगल साहित्य के निर्माता प्राचीन चारण कवियों के इस प्रकार के अप्रकाशित और हस्तलिखित ग्रन्थ अपनी-अपनी सुनहली तिजोरियों में से निकाल कर प्रकाशित करावे और उनमें से भिन्न भिन्न रसों की कविताओं का संग्रह करके उन पर सुन्दर लेख लिख कर "चारण" में प्रकाशित करावे; और अपने पूर्वजों का गौरव संसार को ज्ञात करावे । आशा है, "चारण" में "चारण-वाणी" विभाग खुल जाते से प्राचीन चारण कवियों के फुटकर गीत, कवित्त, चवैये आदि अब प्रकाशित हो कर साहित्य-प्रेमियों को भिन्न-भिन्न रसों का रसा-स्वादन करायेंगे और डिंगल साहित्य के गौरव को संसार के सम्मुख रखेंगे ।

## सम्पादकीय टिप्पणियां

### शोक-सम्वाद—

यह वास्तव में दुष्ट संयोग ही की बात है कि इस पत्र के प्रथमांक में जाति के अद्वितीय विद्वान् एवं सम्मेलन के अनन्य प्रेमी डाकुर किशोरसिंहजी बारहठ के स्वर्गवास का जिक्र छपा और इस द्वितीय अंक में सम्मेलन एवं जाति के दो हितैषियों डाकुर रघुनाथ दानजी बीठु ( देशनोक-बीकानेर ) व डाकुर शंकरदानजी वणसूर ( पोरलाड-मारवाड़ ) के दुःखद निधनका सम्वाद देना पड़ता है !

उक्त स्वर्गवासी सज्जनों में से प्रथम अ० भा० चा० सम्मेलन के संस्थापकों में से एक कहे जा सकते हैं । यह ठीक है कि सम्मेलन की स्थापना का विचार

जिन लोगोंने किया उतमे वे नहीं थे परंतु उस विचार के अमल में लानेमें उनकी सहायता मुख्य थी।

मुना है रघुनाथदानजी साहिब अपनी बहुत ही साधारण स्थिति में कलकत्ता गये थे और दैवानुकूलता से उन्हें वहां अच्छा आर्थिक लाभ हुआ। बाद में कदाचित् अपनी तन्दुरुस्ती ठीक न रहनेके कारण ही वे ज्यादातर देशनोक में ही रहने लग गये थे और अन्तमें वहीं अपना शरीर छोड़ा। इनसे साक्षात्कार का प्रथम लाभ सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन के समय देशनोक ही में प्राप्त हुआ था। उस अधिवेशन का तो प्रायः कुल ही व्ययभार उन्होंने उठाया था। उस समय एकत्रित जातिका जातिप्य बड़ी निरगमनवृत्ति से करके वे अपना अहोभाग्य मानते थे। वे बड़े सरल, मितभाषी और उदार स्वभाव के जातिहितैषी 'सज्जन' थे। देशनोक में अब उनका-सा और भी कोई जातिहितैषी सज्जन है इस का पता तो परिचय प्राप्त होने पर ही लगेगा।

ठाकुर शंकरदानजी वणसर भी सम्मेलन के बड़े प्रेमी थे। राजकोट अधिवेशन के अलावा शायद ही कोई ऐसा अधिवेशन है जिस में वे शरीक न हुए हों। बड़े हंसमुख और मिलनसार सज्जन थे। बृद्ध होते हुए भी सुधारक विचारों के थे। जोधपुर अधिवेशन में उन्होंने सम्मेलन के प्रतिवर्ष कुछ निश्चित आर्थिक सहायता अपनी ओर से मिलती रहने की उदार प्रतिज्ञा भी की थी।

जनदया मा करनी उक्त दोनों आत्माओं का शान्ति, उनके परिवार का धैर्य एवं सन्तान का उनका-सा ही जातिप्रेम व उदारता रखने की सुबुद्धि प्रदान करे।

बड़े मुँह छोटी बात—

गत अक्टूबर मास के अन्त में बड़ौदा राज्य के भादरण नामक स्थान पर 'बड़ौदा राज्य-प्रज्ञामंडल' के अध्यक्षरत्न से देशप्रिय सरदार पल्लभभाई पटेल ने दो बड़े ओजस्वी एवं मार्मिक-व्याख्यान दिये थे। बड़ौदा जैसे उन्नतिशील राज्य के भी वर्तमान शासन में सरदार का सन्तोष नहीं और इसलिये उन्होंने राज्य प्रबंध की कड़े शर्तों में आलोचना कर प्रजा के शासन सुधार के लिये स्वावलम्बन की काफी उत्तेजना दी थी। इसी अवसर पर उन्होंने अपने बंडाचौक के भाषण में 'सयाजीविजय' नामक बड़ौदा के राजकीय समाचार पत्र की आलोचना करते हुए घनोर चारणों पर-और सौ भी पुराण काल के चारणों पर व्यंग्यवाण छोड़ दिया। सरदार मंदोदर्य का प्रसंगवश स्मृति ने आजकल के चारणों की इस अतिशयोक्ति पूर्ण प्रसिद्धि की आंखें दोगी कि वे झूठी चारणों करते हैं, परंतु व्यंग्य कर दिया पुराणकालीन सत्यमंत्र चारणों पर। चारणों की आज कल की हालत पर कुछ कह दिया गया होता तो इतना दुःख न होता परन्तु उनके पूर्वजों के लिये पैसे, 'बड़े मुँह छोटी बात' जानकर चारणों का विशेष दुःख हुआ है। हमें

विश्वास है कि सरदार महेन्द्र ने इरादतन या त्रिरस्कार भाव से कुछ नहीं कहा। परन्तु उनके जैसे सर्वमान्य देशनेता के मुँह से एक विशिष्ट जाति के संबंध में भ्रमात्मक उद्गार निकले तो उस जाति के व्यक्तियों को दुःख होना स्वाभाविक है। सरदार महेन्द्र की जानकारी के लिये चारणों की पुराण कालीन एवं मध्य कालीन स्थिति के संबंध में शास्त्रीय एवं ऐतिहासिक प्रमाणों के साथ विस्तृत कुछ लिखने का न तो अभी स्थान है और न उस को देखने का शायद सरदार महेन्द्र का समय। अतः विध्वान्य महात्मा गांधीजी के, अभी कुछ ही समय पूर्व (ता० १४-१०-३७) चारण जाति के संबंध में लिखे हुए शब्द ही यहाँ उद्धृत कर हम आशा करते हैं कि सरदार महेन्द्र इस जाति के प्रति भी सद्भाव बनाये रखने की कृपा करेंगे—

“...चारणो भले देव कोठिना हो के न हो, परन्तु मनुष्य कोठिना तो छे ज; ने एक वेळाप तेजोमां भारे शक्ति हती. ए आज पण अज्ञान कूपमांथी नोकळीनि फरी प्रकटावी शके छे.”

यदि सरदार महेन्द्र को थोड़ा-सा भी समय हो तो “चारण” के प्रथम किंम्वत् पृष्ठ १३ (गुजराती भाग) पर उद्धृत गुजराती भाषा के आधुनिक महाकवि श्री नानालाल दलपतराम एम० ए० का व्याख्यान, और इस अंक में प्रकाशित चौधरी श्री रामनारायणजी का लेख चारण जाति की प्राचीन एवं अर्वाचीन स्थिति की कुछ जानकारी के लिये सरसरी नज़र से अवलोकन कर लेने की प्रार्थना है।

### श्री भूपाल चारण छात्रालय—

उदयपुर के श्री भूपाल चारण छात्रालय के प्रबंध की शिकायत अरसे से है। इस समय भी हमारे पास एक विस्तृत संश्लेष, इस विषय का पड़ा हुआ है। किन्तु उसे हम इस आशा से प्रकाशित नहीं कर रहे हैं कि छात्रालय के वर्तमान प्रबंधक (सैक्रेटरी साहिब) हमारे निवेदन पर ही ध्यान देकर तदनुसार कार्यवाही करने की कृपा करेंगे जिस से फिर किसी को कोई शिकायत शायद न रहेगी।

छात्रालय के संबंध में अक्सर रसद वाले के हिसाब को साफ करने की, लड़कों की समुचित देखभाल की या लड़कों और सुपरिटेण्डेंट की अनबन की शिकायत सामने आती है। हमारी नम्र सम्मति में इसका मूल कारण यह है कि इस प्रकार के सार्वजनिक कार्यों का संचालन जिस प्रणाली से दुनिया भर में होता है उसका यहां अभाव है। ऐसे कामों की व्यवस्था में हर जगह यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि जिनके हाथ में कार्यसंचालन का भार हो उन में प्रधानता ऐसे लोगों की होनी चाहिये जो ऐसे कार्यों से दिलचस्पी रखते हों, अपनी आपसी रंजिशों के ऐसे कामों के समय तो हृदय से दूर रखें (होना तो यह चाहिये कि जिनका परस्पर मनमुटाव हो ऐसे लोग ऐसे कामों से दूर ही रहे) क्योंकि

रागद्वेष की वृत्तियों पर काबू रखना बड़ा मुश्किल होता है) और जो अपना समय ऐसे कामों के लिये सहर्ष दे सकें। परन्तु इस छात्रालय के प्रबंध में, प्रधानता इस विचार की है कि अमुक ठाकुर साहिब ही छात्रालय संबंधी चर्चा में भाग लेने के अधिकारी हैं। और इस विचार की प्रधानता का कारण शायद यही है कि इन साहिबान में से अधिकांश को प्रथम तो ऐसी चर्चाओं में भाग लेने का अवकाश सुरादेवी की आराधना आदि के सबब से मिलता ही नहीं और यदा कदा मिल भी गया तो वे हां में हां मिला देने के सिवाय किसी बहस मुबहिसे की तकलीफ़ करके तकलीफ़ नहीं पहुँचाते। उदयपुर में मौजूद मिलनेवाले उत्साही युवकों को ऐसे मौकों पर बुलाना आवश्यक नहीं समझा जाता। यही मनोवृत्ति है जो सब खराबियों की जड़ है। सार्वजनिक काम में भी एकाधिपत्य की भावना रखना, प्रकारान्तर से यही सिद्ध करता है कि उस काम का चलाना जैसा चाहिये वैसा चलाना मंजूर नहीं। यही वातक मनोवृत्ति थी कि जिस के परिणामस्वरूप छात्रालय-भवन का उतना झगड़ा पड़ा था—झगड़ा ही क्या यदि वर्तमान मेवाड़ेश्वर की न्यायप्रियता का उदार आश्रय न मिलता तो इस वातक मनोवृत्ति के कारण मेवाड़ी चारण जाति की एक मात्र यह सम्मिलित सम्पत्ति सदा के लिये हाथ से चली जाती। इतना कटु अनुभव ताज़ा होने पर भी मेवाड़ी चारण जाति में मुख्य होने का अभिमान रखने वाले सज्जन फिर उसी दुष्प्रवृत्ति में पड़े रहें यह मेवाड़ के चारणों का दुर्भाग्य ही है।

यदि ऐसा नहीं है तो एक बार मेवाड़ के सब जातिभाइयों को एकत्र करके 'मेवाड़ चारण सभा' की नियमानुसार स्थापना कर उस के पदाधिकारियों (सभापति, उपसभापति, मंत्री, उपमंत्री, कोषाध्यक्ष आदि) का चुनाव क्यों नहीं किया जाता और इस विचार को मंजूर कह कर क्यों डाल दिया जाता है और क्यों इस निर्दोष एवं पवित्र कार्य में राज्यकोष का डर दिखा कर सांवे सांवे लोगों को भ्रम में डाला जाता है? उन्नतिशील राज्य सदा ऐसी प्रवृत्तियों का स्वागत करते हैं और हमारे खयाल से मेवाड़ राज्य भी ऐसी सामाजिक सभा-समितियों के संगठन में भी बाधक बनने में शायद ही अपना हित एवं गौरव मानेगा। ज़रूरत है कि अखिलम्ब मेवाड़ के सब जातिबंधुओं को इकट्ठा कर छात्रालय के प्रति उनके प्रेम को जागृत किया जाय और छोटे से छोटे चारण को भी यह अनुभव करने का मौका दिया जाय कि छात्रालय का काम उस का भी उतना ही है जितना कि किसी और का और उस से लाभ उठाने में, उस के इंतज़ाम में उस का भी उतना ही अधिकार है जितना किसी बड़े सरदार का। इस के साथ ही इस की भी पूरी ज़रूरत है कि स्वतन्त्रमध्य स्व० कविगजा साहिब श्यामलदासजी के समय से लगा कर अब तक का इस छात्रालय का प्रामाणिक इतिवृत्त और अब तक के आय-व्यय का विस्तृत हिसाब पुस्तकाकार छपवा कर मेवाड़ के सब चारणप्रानों में एवं बाहर भी बिना मूल्य वितरित किया जाय।

छात्रालय के लिये नियम बना देने को सैक्रेटरी साहिब ने कहा, तो बनाकर उनकी सेवा में पेश कर दिये गये। मगर उनके अवतक व्यवहार में नहीं लाया गया। इस हानिकार उपेक्षा के कारण छात्रालय सच्चे अर्थों में छात्रालय न होकर एक ढाँचे के से रूप में चल रहा है, जहाँ न तो विद्यार्थियों की शारीरिक उन्नति की ओर ध्यान है और न मानसिक विकास एवं चरित्रगठन की ओर। ध्यान दे भूँ तो कौन? समय पर जागना, शौच, वृत्तधावन एवं स्नान से निवृत्त हो प्रार्थना करना, समय पर पढ़ना, सफाई से रहना और अपनी चीजों को सुव्यवस्थित रखना तक भी छात्रों की आदत में नहीं हो सका है तो ऊपर लिखी बातें तो इनसे आगे की हैं। इन सब बातों के लिये आवश्यकता है शिक्षित, चरित्रवान् एवं इस काम में अनुराग व उत्साह रखनेवाले निरीक्षक के रखने की। यह सब व्यवस्था सुचारु रूप से और स्थायी रूप से तभी संभव है जब ऊपर सूचित किये अनुसार मेवाड़-चारण-सभाका नियमानुसार संगठन हो और उसके आधीन छात्रालय-प्रबंधकारिणी संस्थाकी स्थापना हो। क्या पेसा करने में इस निश्चिंत आशंका से अधिकार-हानि का भय है कि तब सैक्रेटरी ही सब कुछ न रहेगा? किन्तु यह कल्पना ही दुःखद है कि सैक्रेटरी साहिब पेसे संकुचित विचार रखते हैं जिनसे जाति का राष्ट्र अहित हो रहा है। पर किया क्या जाय जब उनके अधिकारकालमें परिस्थिति पेसा हो रही है कि जिसको सुधारना अनिवार्य प्रतीत होने लगा है तो उन्हें कदाचित् जखरेगा तो भी कर्तव्यवृद्धि से निवेदन करना पड़ा और निवेदन करना पड़ता है कि वे अधिकार-लिप्सा को जातिहित के लिये तिलांजलि देने की उदारता दिखाकर शीघ्र ही ऊपर लिखे अनुसार आयोजन करने में वृत्तचित्त हो यश के भागी बनें। यदि वे पेसा करेंगे तो मेवाड़ी चारणजाति की भावी पीढ़ी उनकी उपेक्षित होगी। और यदि वे अधिकार-मेवाड़, प्रमाद या पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष के कारण इस सर्वोपरि जातिहित की ओर दुर्लक्ष्य करेंगे तो छात्रालय बर तो जो भावी होगा, होगा; उन्हें जाति क्या कह कर स्मरण करेगी इसकी कल्पना वे स्वयं करें।

जो २ सज्जन इन पंक्तियों से अपना संबंध मानें उनसे यह आशा रखली जाती है कि जिस शुद्धभाव एवं जातिहित की प्रेरणा से वे लिखी गई हैं उसी शुद्ध भावसे वे भी इन्हीं ग्रहण करनेकी रूपा करेंगे और किसी दुष्ट हेतु की कल्पना कर अपने मनेभावको न बिगाड़ेंगे। जगदम्बा सबको सुमति दे।

**अधिकार-लिप्सा—**

श्री भूपाल-चारण-छात्रालय (उदयपुर) के संबंध में जो कार्यवाही इन्हीं दिनों में हुई और उसमें जो तर्जु-अमल खेमपुर टा० सा० करनीदानजी दधिवाड़िया-सैक्रेटरी ने इस्तिफार किया वह कितना निंदनीय है यह नीचे लिखे विवरण से पाठकों को पता होगा—

गत फाल्गुन कृष्ण १२ बुधवार को छात्रालय में एक मीटिंग की गई जिसमें पहला प्रस्ताव सर्वसम्मति से यह पास किया गया कि "जब तक हुई मीटिंग्स की



कार्यवाही नियमानुसार नहीं होती रही है अतः इस मोर्चिंग की और भविष्य में होनेवाली सब सभाओं की कार्यवाही सभा-समितियों के प्रचलित नियमों के अनुसार हो और हरेक बात का निर्णय बहुमत के सर्वमान्य सिद्धांत के अनुसार किया जाय ।" वाद में डा० करनीदानजी सा० के प्रस्ताव से डा० सा० चमनसिंहजी झाला (ताणा) उस दिन की कार्यवाही के लिये सभापति चुने गये जिनके सभापतित्व में पास हुए प्रस्तावों में एक मूल प्रस्ताव कार्यवाहक समिति के सदस्यों और उनमें से पदाधिकारियों के चुनाव का था । उक्त प्रस्ताव में सभापति के लिये खेमपुर ठाकुर साहिब करनीदानजी का नाम था । इसमें शायद किसीका विरोध नहीं था, परन्तु खेमपुर डा० सा० ने अपने बजाय कविराजा सा० शक्तिदानजी का सभापति चुनने का ही आग्रह किया तब बहुमत से कविराजा सा० सभापति चुन लिये गये ।

कार्य वाही रह जाने से दूसरे दिन खेमपुर की हवेली ही सभा करना ले पाया था, अतः सब लोग वहाँ नियत समय पर इकट्ठे हुए । कार्यवाही शुरू होने से पूर्व ही डा० करनीदानजी ने वितष्टा शुरू कर दिया कि आप लोगों ने सैक्रेटरी को उसका कोई अपराध बताये बिना ही पछे बदल दिया, सैक्रेटरी नहीं बदला जा सकता आदि आदि । उनकी अनर्गल बातों का समुचित उत्तर दे कर समाधान करने की सब उपस्थित सजातीयों ने कोशिश की, परन्तु वे किसी की बात सुनने को तयार नहीं थे । आखिर जब करेड़े राजा बहादुर अमरसिंहजी को संवोधन कर डा० करनीदानजी ने अपनी कथा कहना शुरू किया तो राजा बहादुर ने उन्हें समझाया कि यह तो नियम की बात है । हर जगह सालाना चुनाव होता है । आपके यहां नियमानुसार काम न होने से अब तक दूसरा सैक्रेटरी नहीं चुना गया और अब चुना गया है तो बेज़ा नहीं है । आपका सैक्रेटरी बने रहने के लिये आपका शोभा नहीं देता आदि । इस पर ये खामोश हो गये और कविराजा सा० के सभापतित्व में उस दिन कार्यवाही होकर डा० करनीदानजी ने नये सैक्रेटरी को कार्यवाही रजिस्टर तो उसी तक दे दिया और बाकी कागज़ात फिर दे देने का कहा ।

लेकिन दूसरे दिन जब उन्हीं की हवेली सब लोग आवश्यक कामों के लिये फिर सभा करने का एकत्र हुए तो उन्होंने बड़े स्लेपन का व्यवहार कर जवाब दिया कि अब तक दरबार शुरू न हो देखेंगे मैं सैक्रेटरी का काम नहीं छोड़ूंगा और न कोई राज ठूमा । यह कहकर ये बिना किसी के कुछ लिहोज के सबको छोड़ हवेली से बाहर निकल गये ।

डा० करनीदानजी के इस अशिष्ट व्यवहार से सबको बड़ा दुःख हुआ । उन जैसे पड़े लिगे बुद्धजन से इस प्रकार के दुर्व्यवहार और दुराग्रह की किसी को आना न थी । फिर, अब तक लोग यह भी मानते थे कि सबको सम्मति न मिलने से ही काम नियमानुसार नहीं होता । किन्तु अब यह स्पष्ट हो गया कि चाहने पर भी डा० करनीदानजी नियमानुसार काम करना नहीं चाहते न बहुमत के आगे मिर झुकना चाहते हैं ।

वे यदि यह सब अपने ही व्यक्ति के बल पर करते तो जाति के लोग उन्हें समझा लेते परन्तु वे अपने इस दूषित कर्म में दरबार के हुक्म का नाम लेते हैं इसलिये लोग डर कर चुप हो गये हैं ।

अब यह श्रीमन्मोदपाटेध्वर के लिये ही विचारणीय है कि क्या उनके हुक्म के नाम से ऐसा होना उचित है ?

## समाचार-संग्रह

मारवाड़ के सेंट्रल एड्वाइजरी बोर्ड में चारण माफ़ीदारों की ओर से श्री शुक्रदेवजी किनिया, बी० ए०, एल्-एल्० बी० का लिया गया है । ध्यान रहे कि इस नियुक्ति के लिये और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स में भी चारण मेम्बर लेने के लिये मारवाड़-चारण-सभान् चीफ़ मिनिस्टर महोदय से प्रार्थना की थी । फलतः डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स में भी पांच-सात चारण सदस्य लिये गये हैं ।

श्री चण्डीदानजी सा० दधिवाड़िया (रूपड़ास-मारवाड़) के सुपुत्र श्री सुमेरदानजी, एम० एस्-सी०, एल्-एल्० बी० जोधपुर राज्य में पब्लिक प्रोसीक्यूटर के पद पर नियुक्त हुए हैं ।

श्रीमान् महाराणा सा० उदयपुर अभी जोधपुर पधारे थे तब मारवाड़-चारण-सभा की ओर से एक डेप्युटेशन पं० धर्मनारायणजी साहिब-मुसाहिब आला राज्य मेवाड़ से मिला था जिसमें सर्व श्री वट्टीदानजी सा० कविया, श्री वैजदानजी सा० बारहठ, श्री चण्डीदानजी सा० दधिवाड़िया, श्री आर्दानजी सा० बारहठ, श्री भूदानजी सा० बारहठ और सम्मेलन के प्रधानमंत्री श्री शुभकर्णजी सा० कविया थे । इस डेप्युटेशन ने मुसाहिब आला महोदय से मेवाड़ के चारण-ग्रामों की ज़मीनी की कार्रवाई के संबंध में अर्ज की । मुसाहिब आला सा० ने डेप्युटेशन का स्वागत कर उसकी बातों का ध्यानपूर्वक सुना और सात्वनाप्रद उत्तर दिया ।

गत २९ जनवरी को जोधपुर के श्री उमोद-चारण-छात्रालय का चार्मिको-त्सव संखवास ठाकुर दीवान बहादुर श्री माधवसिंहजी सा० चौहान, होम मिनिस्टर के सुभाषित्व में बड़े समारोह से मनाया गया, जिसमें खान बहादुर गवाब मुहम्मददीनजी चौधरी—रेवेन्यू मिनिस्टर, श्री ए० पी० कौफ़स—अध्यक्ष शिक्षा-विभाग और होम सैक्रेटरी श्री निशानपुरीजी आदि माननीय सज्जनों ने भी अपनी उपस्थिति से सहयोग दिया था ।

श्रीमान् महाराणा साहिब उदयपुर ने स्व० महाराज सा० हिममतसिंहजी ( स्व० महाराणा सा० फतहसिंहजी के भतीजे ) के द्वितीय पुत्र महाराज सा० प्रतापसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री भगवतीसिंहजी को गत फाल्गुन, कृष्ण ५ को दत्तक लेकर अपना उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया है । जगदम्बा पिता-पुत्र को दीर्घायु करे और श्री महाराज कुमार सा० को इस बड़ी गद्दी के, गौरव को कायम रखने योग्य बनावे ।

गत फाल्गुन कृष्ण १४ को मेवाड़-चारण सभा की ओर से चतुर्विंश सज्जनों का एक डेपुटेशन दोवान बहादुर ठाकुर धर्मनारायणजी साहिब, सी० आई० ई० ( मुसाहिब आला राज्य मेवाड़ ) से उदयपुर में उनके बंगले पर मिला, जिसमें कविराजा सा० शक्तिदानजी, वारहटजी सा० चालकदानजी, ठा० सा० कामीदानजी, ठा० सा० प्रतापसिंहजी, वारहटजी सा०, केसरीसिंहजी, ठा० सा० चण्डीदानजी, ठा० सा० रामसिंहजी व ठा० ईश्वरदानजी आदि थे । डेपुटेशन ने मेवाड़ के चारण-ग्रामों की सनदों की दर्याफ्त के सिलसिले में राज्य की ओर से जो ज़रूरतें व कुर्कियों के हुजूम हुए हैं उनके अनौचित्य की ओर श्रीमन्मन्दपाटेश्वर का ध्यान आकर्षित करने के लिये मुसाहिब आला सा० से प्रार्थना की और एक प्रार्थनापत्र भी उनके नज़र किया, जिसको उन्होंने वहीं आशुप्राप्त पढ़ लिया और श्रीमन्मन्द-पाटेश्वर ने अज्ञ करके का आश्वासन दिया ।

मुसाहिब आला साहिबने डेपुटेशन के साथ बड़ा सम्मानपूर्ण व्यवहार कर उसकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा की थी ।

स्व० विद्वद्भय ठा० सा० किशोरसिंहजी सौदा-सम्पादित 'हरिरस' (सटीक) प्रसिद्ध हो गया । डाकव्यय के अन्त के डिक्ट के साथ निःशुल्क करनेकी प्रतिष्ठा लिख भेजने पर वह दिना मूल्य मिल सकेगा । पता—ठा० सा० भीमसिंहजी राठौड़, गु० गारासणी, पो० आसिप ( मारवाड़ )

अत्यंत दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि, किशनगढ़ नरेश महाराजा सर यशनारायणसिंहजी सा० बहादुर का सिर्फ ४२ वर्ष की उम्र में स्वर्गवास हो गया । श्री जगद्विर्यता ने प्रार्थना है कि, वह उनकी परलोकगत आत्मा को शाश्वत शांति एवं शोकप्रस्त राजपरिवार को धैर्य प्रदान करे ।

अँगरेज़ी भाषा के विश्वविख्यात लेखक एच० जी० वेल्स अभी भारतवर्ष के परिभ्रमणार्थ आये थे, तब जोधपुर में चार दिन तक राज-मेहमान हुए थे । उनसे निम्न बातचीत करनेका जोधपुर के प्रेसुपुष्ट चारणवंशुओं का सूझ था ?



## ચારણ પત્રને

( 'આલમાં હમેલ ચાંદલો ને છજ્યાપને આળ્યાં-ખાળ' એ શિવાજીના દાસરડાનો રાગ

કોડ વરસ તું જીવજે જગમાં ને કરજે જય જયકાર;

લાડીલા પ્રાણ સમ પ્યારા,

'ચારણ' મુખપત્ર અમારા.

ટક.

દેશ અને નિજ જ્ઞાતિ-હિતની સાફ સંજ્ઞાવજે વાત;

સાચું મોટા ભૂપને કેળ,

કોઈનું માખણ ના લેજ.

ફરજે કાવે ત્યાં દેશ-વિદેશે દીપાવજે તારું નામ;

ધરોધર ભાવથી જાજે,

દેવીનાં ખાળકો કાજે.

જીવતો તારો એ હોતં કળાધર 'કિશોર' જે કુળવાન;

નવો તારો જન્મ સંજીવે,

ચડાવત ફૂલ વીણીને.

અગિયાર મહોના જે આજ્ઞા પાળી આગળને અવતાર;

સંભારી પૂર્વનો નાતો,

ખૂશી ખૂબ દિલથી થાતો.

ખોટ પડી એની તારે અમારે, છે ખાઈ પ્રજાને હાથ;

સંચાલક તો પણ તારા,

પ્રેમી ને સુજ છે સારા.

લખતા કરજે તું લેખકો ઝાઝા જ્ઞાતિ-હિતને કાજ;

ભારત માતા ગુણ તું ગાજ,

જહું મોહું ખૂબ તું શાજ.

અભેસિંહ રામભાઈ ખળેલ, કોંઠ

## ચારણ જાતિ: તેની પડતીનાં કારણો અને ઉપાયો

લેખક: શ્રી નારણભાઈ ચેકરણભાઈ રોહડિયા, બી૦ એ૦, સિંધાવદર

### ચારણોની દેવકોટિમાં ગણના

અસાર સુધીના દરેક સંમેલનમાં અનેક ભાષણો થઈ ગયાં: ઘણા લેખો લખાઈ ગયા: દરેકનો મુખ્ય ખર્ચ એક જ હતો કે ચારણ દેવકોટિ છે.

રામાયણ, મહાભારત અને શ્રીમદ્ભાગવત જેવા હિંદુ ધર્મના આધારભૂત શાસ્ત્રગ્રંથો, પુરાણો, પ્રાચીન ઇતિહાસો વગેરેમાં પણ આ વિશે પુષ્ટકણ ઉદ્ભવેલો જેવામાં આવે છે. પ્રાચીન સમયનું આપણે નિરીક્ષણ કરીશું, તો આપણને ખ્યાલ આવે કે એ કાળમાં, કવિ અને ગાયકનું સ્થાન, એ વખતના સમાજમાં ઉચ્ચ હતું. કવિનું અને ગાયકનું જીવન આદર-ભર્યું હતું. જે કવિની કવિતા મનુષ્ય સ્વભાવને ખદશી શકવા સમર્થ હોય, તે કવિતાને સ્થનાર અને તેને ગાનાર કાંઈ અદ્ભુત ચારિત્ર્યબળવાળો હોવો જોઈએ, એમ કલ્પના કરી શકાય. એ વખતના કવિઓમાં અને ગાયકોમાં બ્રાહ્મણો, ચારણો, કિન્નરો અને ગંધર્વો વગેરે કામો મુખ્ય હતી; અને તેથી જ તે કામોને આપણા શાસ્ત્રકારોએ ગૌરવભર્યું સ્થાન આપી, તેમની દેવકોટિમાં ગણના કરી હોય, એમ લાગે છે.

પ્રાચીન કાળમાં હિમાલયમાં વસવાટ કરતી જાતિઓએ, હિંદુ સંસ્કૃતિને પૂરપૂરી તેમના જીવનમાં વણી લીધેલ હતી. નૈસર્ગિક જીવન: હિમાલય જેવા સૌન્દર્ય ધામમાં વસવાટ: અને તેમાં ચારણો તો સૌન્દર્યભર્યા કેલાસ પર્વતની તળેડીમાં રહેતા એટલે એવીસે ય કલાંક કુદરત સાથે ગળાતું જીવન: તેની માનવ જીવન ઉપર અસર: આ બધાં કારણોને લીધે એ સમયના શાસ્ત્રકારોએ અને ઇતિહાસકારોએ નગાધિ-

રાજને ખોળે બેસી જાતિઓને ગણા જમનાના મેદાનોમાં વસવાટ કરી રહેલ ખીજ સર્વ જાતિઓ કરતાં અગ્રસ્થાન આપ્યું.

ચારણ શબ્દની વ્યુત્પત્તિકારણે “ચાર-યન્તિ ઇતિ ચારણા:” એમ નિર્ણય કરી છે, તેના ઉપર મનન કરતાં ઇતિહાસના અભ્યાસીને માલૂમ પડશે કે, એ નિર્ણય ચારણો પ્રાચીન કાળમાં કેટલું “ગૌરવભર્યું” સ્થાન ભોગવતા હતા, તેની સાબીતી રૂપે છે. આપણે રામાયણ, મહાભારત, ભાગવત કે બીજાં હિંદુશાસ્ત્રો વાંચતા હોઈએ, ત્યારે દરેક મહાન પ્રસંગે-પછી તે પ્રસંગ રાગના જન્મનો હોય, બીજાના સ્વર્ગારોહણનો હોય કે પ્રભુના અવતારોમાંથી કોઈપણ અવતારના વિશેષ કાર્યનો હોય, ત્યારે ત્યાં ચારણો-આર્યભૂમિના ગમે તે ભાગ ઉપર હાજર હોયજ. આ શું ખતાવે છે? મને લાગે છે કે, ચારણો, એ વખતે આર્ય સંસ્કૃતિનો ફેલાવો કરવા માટે, એ કાળના હિંદુસ્થાનના દરેક ભૌગોલિક પ્રદેશોમાં પ્રસરીને વસવાટ કરી રહ્યા હતા. રાજ-દરબારમાં, કે રણભૂમિમાં, ચારણો એ કાળમાં અગત્યનું સ્થાન વિરાવતા હતા. આટલું ગૌરવ-ભર્યું સ્થાન ધરાવતી જાતિની શાસ્ત્રકારોએ દેવકોટિમાં ગણના કરી હોય તો તેમાં આશ્ચર્ય પામવા જેવું કે શંકા રાખવા જેવું શું છે?

### રાજકારણમાં ચારણોની અગત્યતા

એ વખતના રાજકારણનો જે જરા વિચાર કરીએ, તો આપણને સમજાશે કે એ યુગ સામાજિકવાદનો હતો. દિ-નિર્ણયો, અને તેને અંગે થતા અથમેધ, રાજકીય જેવા યુગો તેની સાબીતી રૂપે છે.

આજનો યુગ જે અંધ જ્ઞાન અને સંદેશા આદિ વ્યવહારની અનેક પૈરામિટ શોધેના યુગ છે, કે જેમાં પૃથ્વી ઉપરના એક ભાગ ઉપરથી બીજા ભાગ ઉપર જવું, અને તેને વિશે માહિતી મેળવવી, એ ફક્ત થોડાક ક્ષણોનું જ કાર્ય છે, આ પ્રમાણે હોવા છતાંય દરેક દેશને-તે દેશ ભણે પ્રજાવાદી હો, સા-આવ્યવાદી હો, કે સરમુખત્યારોના શાસન નીચે હો, પ્રચારદેશની જરૂર પડે છે. ત્યારે આપણે જે યુગની વાત કરીએ છીએ તે યુગમાં તો અંધ જ્ઞાનના સાધનો આજનાં જેવાં ન હતાં. અને તે સમયે આર્યજાતિમાં ધીરજ જગેશ અને તેમાં વસવાટ કરતી જંગલી જાતિઓના વધારા હતો, ત્યારે એક પ્રદેશમાંથી બીજા પ્રદેશમાં જવું એ કુર્ચક કાર્ય હતું, ત્યારે રાજઓની, ધર્મીઓની, સંતાનો, દાનવીઓની અને દેવલોકતાની કાર્તિકા કાળપદ્ધતિ પ્રચાર કરતી ગાવિનું સ્થાન રાજ-દશાશમાં, આશ્રમોમાં, સમરજાતિમાં અને પ્રજાતા હૃદયમાં બહુ જ ઊંચું હતું. અને તેથીજ ચારણો સમાજમાં પ્રથમ પંચાતું સ્થાન ભોગવી ચકતા, અને દરેક વર્ગમાં પૂજ્ય તરીકે પૂજાતા.

રામાયણ યુગ, મહાકાવ્યના યુગ, અને પુરાણોના યુગ પછી જેમાં જેમાં જીવંતીમાં સુ-ધારા થતા મળ્યા, એટલું જોઈએ. કૃષ્ણની મહા-વેધાર-વાણિજ્ય વધવા સાથે, એટલેજ ચારણ્ય મહાસત્તા યાજ્યાં, અને અનેક નાનો મોટાં રાજ્યો સ્થપાતાં મળ્યાં; તેમ તેમ યુદ્ધના પ્રક-ારમાં પણ ફેરફાર થતા મળ્યા. પહેલાં જે યુદ્ધો મોટાં થતાં તે, રાજઓના સારવૈભવ-પદ-ખવવા માટેના તત્ત્વસારથી વધતાં મળ્યાં. એક મ આપણા ઇતિહાસમાં એવો આવ્યો કે, ત્યારે કાળોમાં, કે ક્રોધોમાં વીરસને સુખ્ય થતાં આપણું. વિજ્ઞાપદશમીથી સર થઈને

વર્ષાકાળના પ્રાસંગિક સુધી, એક રાજ્યનું ઘસડર બીજા રાજ્યનીના પ્રદેશ ઉપર કૂચ કર-તું જ રહેતું. જિંદગીમાં આવેલાં તે વખ-તાનાં નાનાં મોટાં રાજ્યોમાં કાયમ યુદ્ધ ચાલુ રહેતાં. રાજ માટે, જન્મભૂમિ માટે, ગાયો, સ્ત્રીઓ, અને જ્ઞાતિઓ માટે મરી મરતું, એ દરેક માણસનો ધર્મ મનાતો. પરંતુ તેઓને આ પ્રમાણે ગ્રેરનાર કાણ ?

વેદકાળથી યુદ્ધભૂમિમાં હાજર રહેતી અને એ વખતની આર્યજાતિની રાજદારી અને સામાજિક-સ્થિતિથી પરિચિત ગાવિનાં સંતા-નોએ, પૂર્વજોના વારસાને કારણે મધ્યયુગ પશુ પોતાનું સ્થાન જાળવી રાખ્યું. નિર્માણ અને વ્યાવહારિક પશુ પોતાનાં વીરસથી જીવકાતાં કાળોથી પાળો ચલાવી રાજભક્તિ, દેવભક્તિ વગેરે સીખ્યાં. ચારણોનું સ્થાન એ યુગમાં બહુ જ ઊંચું હતું. પરંતુ એ કમથી મજેલા આ માનથી ચારણો ક્યારેય કૂલાઈ ગયા હોય, તેનું આપણા વાંચકામાં આવતું નથી. એ જાતિ રાજશ્રિત બનતી જતી હોવા છતાં, ક્યારેય પુણ્યમહના નિષ્કાર્યમાં પ્રવર્તે બનેલ ન હતી. જરા સરખો અન્યાય દેખતાં તે પોતાનું લોહી રેડીને પશુ અન્યાય મટાડવા પ્રયાસ કરતી, આવી રીતે પોતાના કાળના જોગસથી, અને સત્યતા, પ્રમાણિકપણું, નિમ-કલલાથી, ચારિત્ર્યબળ વગેરે સર્વગુણોથી, ઉત્ત-રાતર ચારણતાતિ સમાજમાં ઉચ્ચ સ્થાન મેળવતી રહી. ગરીબ અને તવચર : સેવક અને રોક : પ્રજા અને રાજા : નીચ અને ઊંચ : એમ બધાય વર્ગોમાં તે પૂજવા લાગી. ચારણગાતિએ લોક વર્ગમાં એવું સ્થાન મેળવી લીધું, અને એવી વિશ્વાસ પાવતા જાગી કે જે માણસો, રાજઓ કે દેશો વચ્ચેના ઝગડાઓમાં ચારણોને સુલેહ કરાવનાર પંચ તરીકે બોલાવવામાં આવતા, દરેક પોતાને થનાર

કાલ-હાનિનો વિચાર કર્યા 'શિવાય, પોતાનો ફંસલો કરવાનું ચારણો ઉપર નિરાંત મને છોડી દેતા; અને ચારણો પણ, કોઇપણ જાતના પ્રલોભનોથી અંજળા વિના, કોઇની પણ શેઠમાં દબાયા સિવાય, ચોચ ન્યાય આપતા; અને પોતાની સત્યતા અને ન્યાયપ્રિયતા દર્શાવતા. વિશ્વાસપાત્ર જાતિ તરીકે, ચારણોએ એક વખત એવું સ્થાન મેળવેલ કે દરેક અગત્યના કિસ્સાઓના રક્ષક તરીકે ચારણોને નીમવામાં આવતા. અને તેમને 'મહવીર'ના ખિતાબ નિવાળવામાં આવતા. જીવનને ભોગે પણ ચારણો પોતાની તે ફરજ વાઘારીથી અદા કરતા.

સત્યવક્તા, નિમકહશાલ, વિશ્વાસપાત્ર, અઙ્ગ-નિશ્ચયી, શરણાગતનું રક્ષણ કરનાર ચારણ જાતિના આ સદ્ગુણો દર્શાવતા દાખલાઓથી ઇતિહાસો ભર્યા પડેલ છે. આ નાતા લેખમાં વધુ જગ્યા મોકવાની દેહરાસે, તેના વિશે ફક્ત નિર્દેશ જ કરવામાં આવેલ છે.

પરંતુ "કહાં લગ કહે પુરાની ખાતે!" આ ખુબુ ભકતકવિ દલાલાઈએ કહ્યું છે, તેમ "અણુમેલ દા હા અર્મતણા એ દિવસ કર્યા જતા રહ્યા?" એટલે જૂનાં સ્મરણ જગાવવા જેવું છે! હવે આપણે આત્માની આપણી સ્થિતિનો વિચાર કરવાનો રહ્યો:

કાળના વહન સાથે, આ મહાન જાતિની મહાનતા પણ ધસાતી ચાલી. ઇતિહાસનું એક સનાતન સત્ય છે, કે દરેક સમાજ, જાતિ, દેશ, રાષ્ટ્ર કે શહેનશાહત, એક વખત ગમે તેટલું ઉત્તમ સ્થાન ધરાવતી હોય, તો પણ છેવટે નામશેષ થઈ જાય છે. ઇતિહાસના આચાર્યો—ચારણોને પણ આ સલ લાગુ પડ્યું હોય તેમ લાગે છે.

સમયના વહન સાથે, રાજવીઓ એક-આરામી, ભોગવિહારી અને બસની બનતા

ચાલ્યા. સાચું જ્ઞાનત્વ એકસરું ચાલ્યું, અને દેશમાં અધાધુનીનો પણ એક સમય આવી ગયો. રાજદરબારમાં વસતા ચારણો, પોતાનું સ્વત્વ જૂલવા લાગ્યા. ક્ષત્રિય જાતિ સાથે પોતાનો યુગપણનો, અને ઉપદેશનો હિત્ત સંબંધ હતો, તે વીસરી તેઓ ખુશામદખોર બનતા ગયા. ગામગરાસ માટે, ધન અને વસ્ત્રો માટે, ચારણો પોતાની સરસ્વતીની પ્રસાદીને વેચવાનો ધંધો કરવા લાગ્યા. પાત્રાપાત્રતાનું જ્ઞાન ભૂલી ગયા. અને આનું પરિણામ થોડીજ પેઢીએ પછી દેખાવા લાગ્યું. કે, 'ખુશામદથી મેળવેલ રાજ્યધને ચારણોનું સ્વત્વ હણી નાખ્યું. સ્વત્વ, તેજ અને ઓજસ જતાં ચારણોમાં ખીજ ફુટી. પણ પેસવા લાગ્યા, આમ આપણે આપણી આજ્ઞાની સ્થિતિના પ્રારંભ-અંત સુધી આવી પહોંચ્યા.

## ચારણોની આધુનિક સ્થિતિ

સમયનો અને ખીજ પ્રસંગોએ, અનેક જાતિપ્રેમી ચારણ બંધુઓએ આપણી હાલની સ્થિતિનું વર્ણન કરેલ છે. દરેક ભાષણકાર કે લેખક, પોતાના પૂર્વજોની શૌરવતાનું વર્ણન કરી, આજની આપણી હાલ ચીરતી સ્થિતિનું આપણને જાન કરાવે છે. આપણે સર્વ ભાષણોને એકીસાથે સમજી તેના વિચાર કરીએ, તો તેનો એક જ સાર આપણને લાગશે કે પ્રાચીન સંપિ, સિદ્ધ અને મહાત્મા ચારણોના વંશજ આજના ચારણો, એટલે બસની, પ્રમાદી, આજસુ, ખુશામદખોર, ઓચાર-વિચારમાં શિથિલ, ધર્મખોર, શોખીખોર, વહેમી, અજ્ઞાની વગેરે. શું સાચોસાચ આપણી સ્થિતિ આવી થઈ ગયેલ છે? અને જો આવી સ્થિતિ આપણી હોય, તો તેમ થવાનું કારણ શું? તે સ્થિતિ સુધારવા માટે—આપણા પૂર્વજોનાં સાચાં સંતાનો થવા માટે, આપણે દરેક

શું કરવું જોઈએ, તે પ્રશ્ન દરેક જ્ઞાતિપ્રેમી ચારણુ સ્ત્રી-પુરુષે વિચારવો જોઈએ.

હિંદુઓના આઘ સ્મૃતિકાર લગવાનું સ્વયંભૂ મનુષ્યે કહેલ છે :

“ રમે છે દેવ દેવી ત્યાં,  
પામે સન્માન નારી જ્યાં. ”

આપણે આ ઉપર વિચાર કરીશું તો આપણને એ સત્ય ધરાબર સમજશે. જ્યાં દેવદેવીઓનો વાસ હોય, ત્યાં ધર્મ હોય. અને ગીતામાં જેમ લગવાનું શ્રીકૃષ્ણે કહ્યું છે તેમ જ્યાં ધર્મ ત્યાંજ જય, ત્યાંજ લક્ષ્મી, અને ત્યાંજ સર્વ સફળતા અને અનેક પ્રકારનાં આનંદો રહે છે. જ્યાં જ્યાં અને જે જે દેશ કે સમાજમાં સ્ત્રીજાતિ સન્માનભર્યું સ્થાન ભોગવે છે તે દેશનો અને સમાજનો ભૂતકાળમાં ઉદય થયો છે, અને અત્યારે પણ ધણ રહ્યો જોવામાં આવે છે. આધુનિક યુરોપ પોતાનું ઉચ્ચ સ્થાન પોતાની નારી સન્માનની લાવનાથીજ ટકાવી રહેલ છે. પ્રાચીન આર્યભૂમિમાં સ્ત્રીનું સ્થાન સમાજમાં જિંદગી હતું, અને આપણે ઇતિહાસમાં વાંચીએ છીએ કે તેને પરિણામે આર્યપ્રજા ઉન્નતિ અને આદર્શના શિખરે પહોંચી હતી.

સામાજ્યના ઉદય અને સમાજમાં યતા પરિવર્તનોનો, રાજ્ય-પદ્ધતીનાં વાતોનો કે જ્ઞાતિઓના અબ્યુદય અને અવનતિનો ઇતિહાસ વાંચતાં આ અસ્તની પાછળ કામ કરી રહેલ અનેક વસ્તુઓમાં, એક સર્વ સામાન્ય વસ્તુ આપણી નજરે જરૂર ચડશે. શેમન, શ્રીકે જે બીજા સામાજ્યોની પડતીનાં કારણો શોધો: યાદવ-કૌરવના વિનાશનાં મૂળ તપાસો કે અમુક સમાજ અથવા જ્ઞાતિની અવનતિનો વિચાર કરો, તો આ બધાંની પછવાડે સ્ત્રી

જાતિ પ્રત્યે યતાવેશી તુરંત અને અપમાન-ભરી વર્તણૂક આપણી નજરે ચડશે.

દરેક ધર્મના ધર્માચાર્યો અને શાસ્ત્ર-કારોએ-દરેક દેશના સુધારકોએ, એક વાત ફરી ફરીને કહેલ છે કે, દુનિયાનું, દેશનું, સમાજનું, જ્ઞાતિનું કે કુટુંબનું ભલું ધરણું હોય, તેનો ઉત્કર્ષ કરવો હોય, તો હમેશાં જગતની સમસ્ત સ્ત્રી જાતિ પ્રત્યે પછી તે સ્ત્રી આહે માતા હોય, બહેન હોય, પત્ની હોય અથવા તો ગમે તે સંબંધમાં હોય, કે કોઈ પણ જગતના સંબંધમાં ન હોય, તો પણ માનની-પૂજ્યલાવની દષ્ટિ કેળવો. હિંદુઓના સ્વયંભૂ મનુ, પારાશર, નારદ, જેવા સ્મૃતિકારો: ઇસ્લામ ધર્મના પ્રવર્તક મુહમ્મદ પયગંબર સાહેબ: યુરોપ આખાને ધ્રુમવનાર નેપોલિયન: હાલના નાસ્તિકવાદના યુગમાં યુરોપ-અમેરિકા જેવા સુધરેલા દેશોમાં હિંદુ ધર્મનો ઝડપ ફરકાવનાર સ્વામી વિવેકાનંદ અને સ્વામી રામતીર્થ: જગત આખાને પોતાના સત્ય અને અહિંસાના સિદ્ધાંતોથી આકર્ષતા અને ભારતના આખાલ વૃદ્ધ ખરનારીઓનાં હૃદય ઉપર અધિકાર ભોગવતા મહાત્મા ગાંધીજી : આ દરેક મહાપુરુષ એકજ વાત કહે છે કે જે તમારો ઉદ્ધાર અને અબ્યુદય આહતા હો તો સ્ત્રી જાતિ પ્રત્યે સન્માન વૃત્તિ કેળવો.

હિંદુ શાસ્ત્રની અર્ધનારીશ્વરની લાવના : નવરાત્રિ જેવા ઉત્સવોની ભિન્નવર્ણી : શાસ્ત્રોમાં દેવીઓનું સ્થાન : વગેરે હિંદુઓની સ્ત્રી સન્માનની લાવનાનાં દૃષ્ટાંત રૂપ છે. ચારણો ધણા જૂના સમયથી દેવી-બાળક તરીકે જાળ-બાધ છે. ચારણુ જ્ઞાતિમાં આવડ, ખોડિયાર, કસ્ટૂરજી, બહુચરાજી, બૂટ આદિ સર્વ જ્ઞાતિમાં પૂજની અનેક દેવીઓ, અનેક સતીઓ અને



સનારીઓ ઉત્પન્ન થયેલ છે કે જેના પ્રભાવે હજુ પણ ચારણો સમાજમાં દેવી-બાળક તરીકે પોતાનું સ્થાન જાળવી રહ્યા છે. પ્રાચીન કાળમાં આપણી માતિમાં સ્ત્રીઓનું સ્થાન બહુ જ ઊંચું હતું. દરેક પુરૂષ સંબંધી-પિતા, ભાઈ, સસરા, જેઠ, પતિ, દિવેર વગેરે-પોતાના આશ્રયે રહેતી સ્ત્રીનું સન્માન જાળવતા; અને તેના પ્રત્યે એક જાતનો પૂજ્યભાવ રાખતા. એટલુંજ નહિ પણ ચારણ પુત્રવધુને સાસરામાં યે કોઈ ‘વહુ’ કહીને સંબોધતું નહિ, પરંતુ સંબંધ પરત્વે ‘બહેન’, ‘દીકરી’ કહીને બોલાવતાં. દરેક ચારણ સ્ત્રી સ્વમાનશીલ હતી. સ્વમાનને ભોગે મૃત્યુને બેઠવા તે તૈયાર થતી. અને તેથી એ

જગદંબાનાં બાળકો પણ સ્વમાનપ્રિય, અને અદ્ભુત ચારિત્ર્યબળવાળાં થતાં. પરંતુ જેમ જેમ આપણામાંથી સ્ત્રી સન્માનની ભાવના ઓસરતી ચાલી, જેમ જેમ સ્ત્રીઓ પ્રત્યે સામાજિક અભ્યાસો વધતા ચાલ્યા, તેમ તેમ આપણે આપણા ઉન્નત સ્થાનેથી અવનતિની ઊંડી ખાઈ તરફ ગમડતા ગયા. એટલે કે, જ્યાં સુધી આપણે સ્ત્રી જાતિ પ્રત્યેની આપણી વર્તણૂક અને વર્તવિમાં ફેરફાર કરીશું નહિ- સ્ત્રીઓને સમાજના અગલના અંગ તરીકે સ્વમાનભર્યું જીવન જીવતી બનાવીશું નહિ, ત્યાં સુધી આપણા ઉદ્ધારની બધી વાતો આકાશ કુસુમવત છે.

—(ક્રમશઃ) ‘



### ના લેખકો-વિદ્વાનોને

“આજના દુઃખ સળગતા ભારતમાં જન્મ પામી, યુવાન બની, આપ વૈભવો અને વૈભવજનિત સુખોનાં ગાણું નહિ ગાઈ શકો. જિંદગીની બધી તીખાશ ને કડવાશ: જિંદગીની બધી યાતનાઓ અને વાંછનાઓ: જે આપ અને આપની પેઢીઓ સેંકડો વર્ષોથી સહ્યા કરે છે, તેનું પ્રતિબિંબ આપનાં તમામ કાર્યોમાં અને આપની તમામ રચનાઓમાં જિંદગી જોઈએ.”

—સુદેશજી આનંદ

(આંતર રાષ્ટ્રીય નામના મેળવનાર પ્રગતિશીલ ભારતીય સાહિત્યકાર: તેમણે અંગ્રેજીમાં ‘કુલી’, ‘અદ્ભુત’ વગેરે કૃતિઓ રચી ઇંગ્લાંડને તાલ્લુખા યુરોપિયન પંજાબી છે: યુવાન છે: આપણા સ્ત્રી દ્વારા ભગતની જેમ તોરાચંદ્રની જ કરનાર સાહિત્યના ઉગ્ર વિરોધી છે.)



## ચારણ દેવો આવો !

લેખક : લક્ષ્મણકવિ શ્રી દલાલાઈ ભાયાલાઈ કાગ; મળદર ,

સંવત ૧૯૯૪ ના વૈશાખ વદી ૬-૭-૮ એ ત્રણ દિવસ અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનનું પાંચમું અધિવેશન રાજકોટમાં મળ્યું હતું. તે પ્રસંગે ચારણ બંધુઓને આવકાર આપતું અને ઠપકો દેતું આ ભાવવાહી કાવ્ય રચીને લગતજીએ સંલગ્નાનું હતું.

### ચેરો છંદ

આવો ચારણ મુજન ધારણ દેવોનાં માન,  
આવો સત્યવાન હે સ્વમાનના પૂજારી-ટેકો  
આવો મંગળ ગવાય જમણે લાકુ જમાય,  
છેવટનું એક જૂઠું ખાઈ પેટ ભરશું;  
મળશું સૌ સગાં સાંઈ લેશું પૈસો કે પાઈ,  
બીજી ક્યાં લગન થાય વાત નદી કરશું;  
દુનિયા મર કહે ભીખ આપણ સૌ કહે શીખ,  
શૂદ્રની ગદાય શીખ શાસ્ત્ર છે પુકારી-આવો ૧  
આવો કવિતાના બાપ ધોવા અહીં પરમ પાપ,  
સઘળા હરતંત્ર સૈતાપ દુનિયાના કાષ્ઠા;  
વાણી સુકુમાર ચાર ઘર ઘર પરણાવનાર,  
વિક્રય કરનાર ખોડિયારના હે બધા;  
મન નહિ અપમાન માન ચોરાના મીઝમાન,  
વૃત્તિ સતો સમાન આજ અમારી-આવો ૨  
આવો દેવીના બાળ કીર્તિ કરવા ભૂપાળ,  
આપણ વિણ વિધવા સાહિત્યનું શું થારો;

જગ્યો વિકરાળ કાળ માનવમતનો વિશાળ,  
 આપણુ વિણ તેહનાં સુગીત કોણ ગારો;  
 લપટને લોભ કોણ કંઞસને કરણ દ્રોણ,  
 કહેશે કહો કોણ હાથ કાયરે પસારી—આવો ૩

શૂર સૌ કરતા શિકાર, કરતા મધમાંસ આર,  
 અંદર તકરાર ધાર ખાર ખૂણ કરતા;  
 અંગે આળસ અપાર નહોતો પુરુષાર્થ ધાર,  
 લીખ બાજ લાજ વિણ પૂર પર ફરતા;  
 કુળના ચીલા સૂકાય તો તે વેડવા દુઃખાય,  
 રહિયા તે કાજ હાય ! દેવ ભિખારી—આવો ૪

જગતું નાટક વિરાટ, (એમાં) ચારણનો કયો પાઠ,  
 એનો કરજો ઉચાટ દેવવંશ રાગી;  
 જગ્યો એક નર અધાટ વસમી દશે થપાટ,  
 રહેશે નહિ વાટ ઘાટ ચેતજો સુવાગી;  
 અંદર ભેદની ભીંત તોડો થઈને અલીત,  
 જ્ઞાનજો ખચીત એક જીગરવાની ખારી—આવો ૫

સત નહિ કળજુગમાંહી, કે'તી ગઈ નાગબાધ,  
 કરતી ગઈ આઈ ઉપદેશ એ ભંવાની;  
 એનાં કેટલાં અભાગ તાગે નવ મળે તાગ;  
 'કાગ'ને જરાવે આગ બાળ વિધવાની;  
 એનાં આંસુની ધાર પ્રવચકળના અંગાર,  
 સૂણજો દેવો-કુમાર ! અર્જ અમારી—આવો ૬

—કાગવાણી ભાગ ૨ જામાંથી



## કુદાનમાં ઘોર અપમાન

લેખક: શ્રી લગવતીદાન મનુભાઈ રાહડિયા, શેરડી (કચ્છ)

સમ્ય સમાજની વિચારશીલ વ્યક્તિઓ સર્વાંક બની પ્રશ્ન કરે છે કે, ચારણો રાજ રજવાડાઓમાં બિજાતા દરોરા, લૂનાદિ માંગલિક પ્રસંગોમાં હાથ પસારતા રોજાબધ હાજર થઈ માગણી વર્ગની હરોળમાં બિલા રહી 'પરવા' કે 'ત્યાગ'ના નામથી એવું બાતું હલકી કોટિનું કુદ દાન લેવાં કાં તૃપ્તિ થાય છે? આણકમ ગણાતા ચારણો હાથે કોટિની આખી ફર મરકરી કાં કરાવે છે? આતું ઘોર અપમાનથી ભરેલું માનવતાશૂન્ય દાન કાં સ્વીકારે છે? તેમના આવા વૃથાક પ્રશ્નો સાંભળી સમ્પ્રતીય સુત વ્યક્તિને અત્યંત લલિત બનવું પડે છે.

જેની હરોળમાં બિલા આપણા ગૌરવને ઝાંખ લાગે, જેના હાથથી દેવાતી એ દાનની રકમ લેતાં આપણને ધિછાર ઉત્પન્ન થાય, જે દસથી આપણી દેવ-સંસ્કૃતિને કલંક લાગે તેવા સ્થાનમાં આપણે મક્કાતા મુખે જઈએ એ તો આપણે સાચા પદ્મપ્રયયા છીએ, એમ જ સૈને લાગે. અને એ બ્રહ્મામાં વધારો કરનાર બાબત તો એ છે કે, આપણે જન-સમાજ પાસે "એ દાનના અમે હક્કદાર છીએ," એમ સગવં જાહેર કરીએ છીએ! ખરેખર, એ સાંભળી મનુષ્ય-લોકના પવિત્ર ચારણ પુર-પોમાં જ નહિ, પણ દેવલોકના દેવ ચારણોમાં યે શોકની અવધિ જેવો આધાત થતો દર્શે!! તેઓ વિચારતા દર્શે કે, આ અમારા વંશજો!!!

આપણી દેવ-સાતિનો પુરાણ-પ્રસિદ્ધ દાવો છે કે, ક્ષત્રિય-સમાજના અમે અશ્રવ્ય તારણદાર છીએ-ભારતમાં ક્ષત્રિય-સમાજનું ક્ષાત્ર સજીવન રહ્યું છે, તે અમારા પૂજ્ય દેવવને આભારી છે. એટલે કે, જે એ આજુણા અને આતમ-પ્રશસ્તિઓ : જે કહેા તે, સાચાં હોય તો રાજ-રજવાડાઓમાં માંગલિક પ્રસંગે વગર નોતરે હજારોની સંખ્યામાં એકત્ર થઈ તે પ્રસંગે મહેમાન તરીકે ત્યાં આવેલ અનેક રાજ-મહારાજાઓની હાજરીમાં માગણી તરીકે દાન માટે દોડદોડી કરી એ આજુણા અને એ આતમ-પ્રશસ્તિઓનું આપણે છડેયોક નીલામ કરાવતા હોઈએ એવું સૈને લાગે છે. જિભારી, રાજનો પૂજનીય બન્ધો હોય, એવું કદી સાંભળ્યું છે? આપણા પરમ જ્યોતિર્ધર ૨૦ હાંડુર કિશોરસિંહજી સોદા 'પાગલ' કવિએ આપણી એ નિથ્યા બ્રાહ્મણો જે માર્મિક જવાબ આપ્યો છે, તે ધણુ યે જાતિ બધુઓના લક્ષ્યમાં દર્શે :

“ ગુરુ-દક્ષિણાં જો વાહુજોં કે”

બ્યાહ મેં તુમકો મિલે ।

વહ પોટ પર તુમ વહ રહે”

પર ત્યાગ હિત નિત ચિત હુલે!

જયા મિશ્રુકોં સેગ પાર્થિવોં ફા”

શિષ્ય-ભાવ સુના કહોં ?

તે ચારણો! ગુરુભાવ રણતે

હવ કયોં મરતે નહોં !!

આચાર્ય મિશ્ર-કૃતિ કે વનિ

માન રૂપતિન સન” વેહા !

૧. ક્ષત્રિયોના. ૨. હાથ ઓડ. જે કાંઈ પાણુ પાવલું આપવાનું નહીં કરી એકત્ર થયેલા ચારણોને જ્ઞાનદસ્તીથી વણમાં પૂરે છે, તે વખતે એ મોંઘા મહેમાનોના બરડા સિપાઈઓના ધક્કા અને કવચિત્ સોદીઓથી ભારે અને છે, તે ભાવ અહીં છે. ૩. રાજાઓનો. ૪. (રાજાઓ) પાસેથી.

કયા મિશ્રુકોં કો માન મિલ  
સકતા કહી? સચ તો કહો? "

વાસ્તવિક રીતે આંખ ઊઘાડીને જોઈએ તો ક્ષત્રિય રાજ્ય મહારાજ્યોને તેમના સ્વધર્મ-પરિપાકનાથે ઉપદેશ દેવાની આપણે બિલકુલ યોગ્યતા શુભાવી બેઠા છીએ અથવા ખીજા રાષ્ટ્રોમાં કહીએ તો દેશી રાજ્યોના હાથમાં અત્યારે પરરાષ્ટ્રનીતિ (Foreign Politics) નક્કી કરવાનો જરા પણ અધિકાર ન હોવાથી આપણા એ ઉપદેશની તેમને મુદ્દત જરૂર નથી. પરંતુ આપણે એ જરી પુરાણા હક્કને આગળ ધરી-તેનો દોષ પીટી આત્મધારિત્ર્યદ્વારા આપણા સ્વધર્મનો વિકાસ કરીએ છીએ. અને તે દ્વારા અન્ય સમજદાર વર્ગમાં આપણી અવગણના થાય, એ સ્વાભાવિક છે.

આપણે જીંડું નિહાળીએ તો દીવા જેવું સ્પષ્ટ દેખાય છે કે, આપણને અપાતા એ દાનમાં આપણી સરકૃતિનું ખૂન થાય છે: માનવતાનો ખર્સ થાય છે: દેવપુત્ર અને દેવી પુત્રનાં સંબોધનોમાં હાસ્યજનક કત્તંક તરી આવે છે. આવી આત્મક્રાંતિક સ્થિતિમાં કેટલાક તેજોદ્રેષી ચારણોત્તર સાક્ષરો આપણને ભિક્ષુક, ખુશામદખોર, નિંદક આદિ કત્તંક લગાવવાની તક મેળવતા ગયા. અને તે કત્તંક જ્યારે આપણે શરદાન લેવા તત્પર બનીએ છીએ ત્યારે ક્ષત્રિયોને પણ સાચાં ભાસવા લાગ્યાં. એટલે કે, એવી માન્યતાઓના ચર જેમ જેમ તેમના હૃદયપટ પર ચડતા ગયા, તેમ તેમ તેમના માનસમાં આપણી પુરાણી પૂજનીયતા નામમાત્ર અને તે પણ જીડી જતા સમાન દેખાવા લાગી છે.

આચારુજી દાનની અધિકારીકાઇ બાતિ હોય તો તે પ્રાચીન વર્ણધર્મના બધારણે ફક્ત

શરદાબાતિ છે. એટલે કે શરદા બાતિને ખપતું એ દાન લેવા જ્યારે આપણી બાતિ હક્કદાર બને, ત્યારે તો આપણું દેવત્વ શરદામાં પરિણમ્યું છે, એમ ન્યાયપુર:સર આપણે કબૂલવું પડે છે.

આપણા કેટલાક માનનીય સર્વોચ્ચ હક્કદાર તો હજી સુધી ક્ષત્રિય-સમાજ પર ચાલ્યા આવે છે. અને તે આપવા માટે તેઓ તેમના ક્ષત્રિયત્વ રહેતા સુધી અધાયેલા છે. છતાં તે ચારણ અને ક્ષત્રિય: બન્ને સમાજને શોભાસ્પદ હક્કો કોઇ કોઇ સ્થાને તો સદંતર બૂંસાઇ ગયા છે અથવા નામશેય રહ્યા છે. તેનો સમજો પ્રતાપ પણ આપણી આ શરદા-સ્વરૂપિણીદાન-પ્રહણ-શુદ્ધિનો હોય તેમ લાગે છે.

આપણા આ શરદા-ધર્મથી રાજ્ય-મહારાજ્યો આપણા ભવ્ય ભૂતકાળના પારસ્પરિક-સંબંધને ભૂલી આપણા આવા પ્રકારના અન્ય હક્ક-અધિકારની ફરિયાદો સાંભળતા નથી. તેઓ એ ફરિયાદોના ફેસલા તેમના અધિકારીઓ પાસે કરાવે છે. અને એ અધિકારીઓ આપણું પતન કરવા માટે પ્રયત્નશીલ હોય છે-લાગ શોધતા હોય છે. એટલે આપણા સંબંધમાં મનકાવતો અપમાનજનક ફેસલો કરવામાં તેઓ સફળાચતા નથી. પરિણામે એ કુદાનના મહાપાપથી આપણે આપણા પરમ પવિત્ર પૂર્વજોનો વારસો શુભાવી રહ્યા છીએ.

કોણ જાણે કયા સમયનો અમંગળ યોધડિયે આપણને આતું નિર્દિત દાન લેવાની કુશુદ્ધિ સૂઝી કે જેના કલુષિત અંશ અત્યારે પણ આપણી શુદ્ધિમાં સ્થાન લઇ રહ્યા છે! જે દેવ-સાતિના પૂર્વજોએ પાર્થિવ પ્રજાભનોથી

ન લોભાતાં પોતાના પવિત્ર ઋણ-જીવન દ્વારા  
વિશ્વ-પટ્પર પોતાની સુધર્તિ દેવાથી. તે  
માતિના હાલના આપણે વંશને આવી એક  
નાચીઝ રકમ લેવામાં એ પૂર્વજોએ સચિત  
કરેલી કીર્તિ-મત્તાને ગુમાવી રહ્યા છીએ. અને  
તે છતાંયે તેનો પશ્ચાત્તાપ નહિ, એ શું ઓછો  
દુઃખનો વિવચ છે !

વિષ્ણુર દળે આપણી કુમતિને ! હયાનત  
હો આપણી એ હુદ્દ કામનાને ! ! શાપ હોજો  
એ દાનની કુપ્રધાના હિમાયતીઓને ! ! એવા  
અડગ-એક નાદથી આપણી સા આપણા પ્ર-  
ગતિ માર્ગમાં વેરામેદા એ કુદાનના મલિન  
રજકણો ઝાડી-ઝાપડીને સાફ કરીશું, તો જ  
જગતને એમાં આપણી સાચી ઉત્તતિના  
દર્શન થશે.



## શૂરવીરોને પણ પ્રેરણા દેતી ચારણ કામની જવલંત ગાથા

પ્રજા-દમનતા પ્રપંચો રચી રહેલા દરબારો આજે રસહીન બન્યા છે.

[ સુપ્રસિદ્ધ અંગ્રેજી માસિક ' મોડર્ન રિવ્યુ ' ના ડીસેમ્બર સને ૧૯૩૮  
ના અંકમાં શ્રીયુત દેવેન્દ્ર સત્યાર્થિએ 'the Charans of Rajputana' નામક  
'મનનીય લેખ લખ્યો છે. તે ઉપરથી ગુજરાતી ભાષાના અન્યેક રાષ્ટ્રીય દૈનિક  
'જન્મભૂમિ'ના તા. ૧૮-૧૨-૩૮ ના અંકમાં ઉપરોક્ત શીર્ષકથી " પોતાના  
પ્રેરક વાણી-પ્રવાહથી શ્રીતાજનોને મુગ્ધ કરતી ચારણ કામની આ જવલંત ગાથા  
છે. જમીન પર સામસામાં હાથોહાથ જેલાતાં યુદ્ધોનો જમાનો ગયો, અને શૂર-  
વીરોને પાનો ચડાવનાર ચારણોની મહત્તા ઓછી થઈ. તેમના દુહાઓની હવે  
જરૂર રહી નહિ. આજે તો મશીનગનોનો તડતડાટ, ટેંકના કર્કશ અવાજ,  
ઓમ્બગોળાના કણું-લેદી અવાજો અને યુદ્ધ-વિમાનોનો લય-સૂચક ઘેરો નાદ,  
લડવૈયાઓને પાનો ચડાવી રહ્યા છે. રણભૂમિ પર દુહા લલકારતો ચારણ આજે  
કાળના પંડો નીચે દટાયો છે. ભૂતકાળમાં ચારણો રાજદરબારમાં આદરમાન  
પામતા હતા. ચારણોનાં પ્રેરક ગીતોથી રાજદરબારો ચૂંચતા હતા. રાજાઓ તો  
આજે પણ છે. પરંતુ પ્રજા દમનતા પ્રપંચો રચતા રાજદરબારોમાં આજે  
ચારણનું સ્થાન નથી. એ ઉજ્જવળ કામ હવે તો કદાચ પોતાની કાવ્ય-શક્તિ પીસરી  
જવા લાગી હશે. " એવી પરિચયાત્મક નોંધ તથા કિંચિત ફેરફાર સાથે આ

## તીર્થક્ષેત્ર

પરંતુ ચારણોનું તીર્થક્ષેત્ર તો રાજપૂતાના રહ્યું. દર દરના ચારણો પણ ઉજ્જવટ દેવીના સ્થાનકે આવવા માંડ્યા. તેઓને રાજપૂતાના પર ખૂબ પ્રેમ હતો. કારણ કે શાય ને પ્રેમની ગાથાઓ સાંથીજ સાંપડતી હતી.

આ પછી ચાદમી સદીનો લોહિયાળ-સંગ્રામોનો કાળ આવ્યો. રણુચબોરનો કિલ્લો અસાઉદીનના હાથમાં ગયો; ચિત્તોડ પણ પડ્યું; પદ્મિનીએ બેઠક કર્યું; રાજપૂતોએ કેસરિયા કર્યા; આ અર્થ નીરખ્યું; ચારણોને માતા હિંમળાને પ્રેરણા આપી કે, આપાં અદ્ભુત ગીતોનાં વીરગીતો રચો. અને તેમણે હુદાઓ રચ્યા.

દરેકને પ્રિય એવા અનુરાગતાં એ પ્રેરક કાવ્યો દેશભરમાં પ્રિય બન્યાં ને ફેલાયાં. ને રાણા હમીદે ચિત્તોડ પાછું લીધું. આ અદ્ભુત વિજય ચારણોનાં વીરગીતોને આભારી હતો. એ સ્વાધીનતા તથા સ્વમાનની લડત સદીઓ સુધી ચાલ્યા કરી.

રાજપૂતો વિજય પામતા ને પરાજિત થતા. સ્વાધીનતાની એ સતત લડતનું કેંદ્ર મેઘડ હવું. અને સ્વાધીનતાની લડત અર્થે દેહ અપાવી દેવાની પ્રેરણા આપતાં ચારણ-કાવ્યો રચાયા હાગ્યાં. દેહ, મન, આત્મા: સર્વસ્વ સ્વાધીનતાને અર્થે અર્પણ કરનાર, વીરોની એ વીર-ગાથાઓ હતી.

ચારણોમાં બધાજ કાંઈ આ કાવ્યો રચવાનો ધધો કરતા નહોતા. તેમાંના ધણુ મોપાલન અને, પશુ પાલનનું કામ કરતા. તેઓની મુખડીઓને 'મેશ' કહેતાં અને એક રીતે તેઓનું કાર્ય સંગ્રામને મદદરૂપ હતું. એમની માથે મુલવીશને શુદ્ધ ઘી પૂટે પાડતી, તેમની બિછેરના અગ્રવો રણુસંગ્રામમાં કામ આવતા.

કેટલીક વખત કોઈ કોઈ ચારણ વણુગરની માફક ગામડે ગામડે પોદિયા લઇને ફરતા. ને તે ખાસ ખંજર, તલવાર, દાઝ જેવી વસ્તુઓનુંજ વેચાણ કરતા જતા. રાજપૂતો આશ્ચર્ય હોઇને તેઓને જમીન કે જગીરો મળતી. ને એ રીતે તેઓ પૈસેટ્ટે સુખી રહેતા.

પરંતુ ગમે તે ધધામાં હોય છતાં ચારણની કાવ્યશક્તિ નષ્ટ થતી નહિ. કવિતા તો એના લોહીમાંજ રહેલી છે. ને તેથીજ તે 'વણુ પદિયો વાતું કરે' છે. ને બિગલા ચારણ કવિને કવિરાજનું ભિરદ પ્રાપ્ત કરતાં વાર લાગતી નહિ.

ચારણ જામના સભ્યોમાં એટલી પ્રતિષ્ઠા ને પવિત્રતા હતી કે, ચારણોનો દેશ ખૂબજ શુદ્ધ અને પવિત્ર મનાતો. ને તેમનો ગમે તેવો યુદ્ધો હોય છતાં દેહાંત દહની સગ્ર તેમને કરવામાં આવતી નહિ. કદાચ તેની પછવાડે એવો પણ ભય હોય કે એકાદ કાવ્યઝરણુ સૂકાઈ જશે !

## ગમે તે કહેવાનો હક્ક

ચારણોની શુદ્ધિમત્તા અને કળાની તથા અકિંતવની રાગ્યો ઉપર એવી ઊંડી છાપ પડેલી હતી કે, તેમને રાજદરબારમાં ગમે તે બોલવાની છૂટ હતી. ચારણ રાગ્યશ્રેય છવતા. રાગ્યની બેટસોજાદો પાળી તેની પ્રશંસા કરતા. પરંતુ ચારણ રાગ્યથી કદી અવનતો નહિ. તેની સમક્ષ તે લાઘવતા અનુભવતો નહિ. રાગ્ય પાસેનો તેનો પોતાનો હક્ક છે, એમ માનતો. જેમ રાજપૂત તલવાર ધારણ કરીને સ્વાધીનતા માટે લડવા સર્વથો હોય, તેમ ચારણ દેશભરમાં વીરતાના પ્રવાહોને અખંડ રાખવા બધાથો હતો. ને કેટલીયે વખત વીરકાવ્યોથી ચોદાઓને કિતેજન આપનાર ચારણ પોતે પણ તલવાર લઇને યુદ્ધમાં બીરો પડતો. રાજપૂતાનાના ઇતિહાસમાં આવા ચારણવીરોનાં સંપૂર્ણ ઇતિહાસ નથી, એ શોચનીય છે.

ચારણોનાં કાવ્યો મુખ્યત્વે દુહા રૂપે હતાં, એ અગાઉ જાણીવું છે. દુહો એ પ્રગ્નને પ્રિય હ'દ હતો. સુદો નહોતાં, ત્યારે નરનારીઓના પ્રેમની વાતો દુહા દ્વારા કરવામાં આવતી. સુદકાળમાં ને મધ્ય યુગમાં દુહાઓ માત્ર વીરરસથી જ અંકિત બન્યા.

આવા દુહાઓ કાણે રચ્યા. તે વિષે કાંઈ માહિતી નથી. દરેક રાજપૂત-પતિ પતિને રણસંગ્રામે પાઠવતી વખતે દુહા દ્વારા વીર-સંદેશ આપતી. કાંઈ રચયિતાએ દુહામાં પોતાનું નામ આપ્યું નથી.

### કંઠસ્થ કાવ્યો

ચારણોનાં આ કાવ્યો મુખ્યત્વે કંઠસ્થ હતાં. તેમના ચોપડાઓમાં તેઓ તેને તોંધી લેતા નહિ. જે તેમણે રચેલા સર્વ કાવ્યોને લેખિત સ્વરૂપમાં સાચવવામાં આવ્યા હોત તે રાજપૂત વૃંદાઓ સળંગ ઇતિહાસ મળી આવતાં આ દુહાઓ બધા વિસ્મૃતિથી છૂવત રહેત, એટલું જ નહિ, પણ દરેકની પંક્તિઓ પણ ચોક્કસ નહોતી. સ્થળે સ્થળે તેના રાખોમાં ફેરફાર માત્રમ પડતા. ને તેથી તેનાં કર્તાનું નામ હંમેશાં અજ્ઞાત રહેતું.

દુહાઓનાં કાવ્ય ઉદ્બોધન રૂપે અગર તે એ વ્યક્તિઓના વાર્તાલાપ રૂપે રચનામાં આવતાં.

ચારણોની કામ જોતાં સર્વત્ર એકરૂપતા જન્મે પડે છે. તેમના દેહ, ચહેરાની રૂબાઓ, વિચારો, વાણી વાટે કાવ્ય-સંકિત, રીત-ભાવ અને ખીજ અનેક બાબતોમાં જાણે કે એકજ બીજામાંથી લાગેલા હોય તેવા તેઓ લાગે છે.

ધોર સુદ વખતે પણ પોતાની અનેખી જગત લઇને ચારણ સુદ ક્ષેત્રમાં જતો; તે લ઼-વૈપાઓને પાનો ચડે એવાં સુદ-ગીતો એક પછી એક સ્વયં રચીને છેડતો.

ચારણોનાં અદ્ભુત કાવ્યોની પ્રશંસા હિંદના કપીધર શ્રી રવોદ્રનાથ ટાગોરે 'રાજસ્થાન-સંશોધન-સભા' સમક્ષ નીચેના શબ્દોમાં કરી હતી:

ટાગોરની અંગ્ગલિ

“ ભકિતર્તુ સાહિત્ય આપણે દરેક પ્રાંતમાં વાંચીએ છીએ. દરેક સ્થળે કવિઓએ રાધા-કૃષ્ણનાં ગીતો પોતાની રીતે ગાયાં છે. પરંતુ પોતાના લોકીયો રાજસ્થાને જે સાહિત્ય સમૃદ્ધ છે; તે અનોખું છે. તે અકારણ નથી. કારણ કે રાજપૂતોને બિરદાવનારાઓ રણભેરીનાં સમક્ષ જીવનની નહરતા સામે સ્વયં-ગીતો રચતા ને ગાતા. તેમની સામે તેઓ સાક્ષાત તાંડવને

૧. તા. ૧૮ ફેબ્રુઆરી સને ૧૯૬૭ ના રાજ નં. ૬ દ્વારકાન્યા ટાગોર સ્ટીટમાં કવિવર રવોદ્રનાથ ટાગોરના પ્રમુખપદે 'રાજસ્થાન-રસચંદ્ર-સોસાઇટી' ની એક સભા યજ્ઞ હતી. તેમાં તેના મંત્રી શ્રીરઘુનાથપ્રસાદ સિંહાનિવાએ તેમને અન્વેષણ-કાર્ય કરતાં સભામાં ચારણ કવિઓનાં વીરરસપૂર્ણ કાવ્યો સંભળાવ્યાં હતાં, તે સાંભળી એ વચોરૂઢ કવિવરના ચહેરા ઉપર પણ લાલી દોરી આવી હતી. અને તે પછી તેમણે આ અંગ્ગલિ આપી હતી. ૨. ચારણોને તેમના એ કર્તાવ્યનું જ્ઞાન કરાવતાં મહાકવિ સુર્યમલ્લ મિશ્રણે સભા જ કહ્યું છે કે :

રણ હાલીજે ચારણાં ! ચાહે અવ લગ જૈન ।

કરે સુદહ જિસડી કહો, વિષ સો દૂર જૈન ॥

(હે ચારણો ! અત્યાર સુધી ઘર બેઠે ઘણી મોજ કરી. હવે તમે રણક્ષેત્રમાં ચાલો. ત્યાં પોતાની સગી આંખે વીર મોહાઓનાં કામ જુઓ. અને ત્યાં જેવું તેઓ કરે, તેવુંજ તેમનું ને કરો. દૂર રહીને જે વર્ણન કરશો તે તેવું સાચું નહિ બને. )

—તત્ત્રી : ગુજરાતી વિભાગ



જોઈ રહેતા. આજે કલ્પનાથી એવું કાવ્ય કાષ્ટ રચી શકે તેમ છે ?

રાજસ્થાની ભાષાનાં દરેક ગીતમાં જે વીરતાનાં તત્ત્વો ભર્યા છે. એ હિંદના ગૌરવનો વિષય છે. તે સ્વાભાવિક સમ્બાધ ભરેલ ને કુદરતી છે.

મારા મિત્ર સિતિમોહન સેને મને હિંદી કવિતાનો પરિચય કરાવ્યો હતો. આજે મને એક નવી વસ્તુની પિછાન થઈ છે. આ હદય વલોવતાં કાવ્યો મારી સમક્ષ સાદિત્વની એક નવીજ દિશા પ્રુત્તી કરે છે. મેં પણી વખત

સાંભળ્યું હતું કે, ચારણોએ પોતાનાં કાવ્યોથી વીરોને પ્રેરણા આપી છે. આજે એ મેં જાતે અનુભવ્યું. આજે પણ એ કાવ્યોમાં મળી રહેલું છે. ચારણી કાવ્યોનું એક સરસ પુસ્તક બહાર પડે તે જરૂરનું છે.”

રવિચાણુના ઉપરના સંગ્રહો આદ્યશૂણ્ય છે. કાઠિયાવાડના ચારણી-સાહિત્યના શ્રી મેઘાણીએ કરેલા સંશોધન પછી એ વિશા પ્રત્યે કેટલાકનું લક્ષ્ય દોરાયું છે. પરંતુ તે માટે જે કાર્ય કરે ને અભ્યાસને ઉત્તેજે તેવી કાષ્ટ સંસ્થા છે નહિ. આપણા આ ગુપ્ત ધનને બહાર લાવવાની જરૂર છે.



## મેવાડ રાજ્યનાં પુસ્તકાલયો અને મ્યુઝિયમ

લેખક : સ્વ. મુનિશ્રી હિમાંશુવિજયજી ન્યાયકાવ્યતીર્થ

[ પ્રવેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈનસમાજમાં મુનિરાજશ્રી વિદ્યાવિજયજી મહારાજ એમની વિશાળ ધર્મભાવના અને વિદ્વતા માટે સુપ્રસિદ્ધ છે. આજે તેઓ હિંસામાં ગળાડૂળ સિંધ પ્રાંતને અહિંસાનો ઉપદેશ દઈ રહ્યા છે. મુનિશ્રી હિમાંશુવિજયજી તેમના સુખ્ય શિષ્ય હતા, અને સંસ્કૃત-પ્રાકૃતના ઉત્તમ વિદ્વાન અને ઇતિહાસના આચાર્ય હોય લેખક હતા. શુદ્ધી સાથે બે વર્ષ પૂર્વે સિંધનો વિહાર કરતાં રસ્તામાં તેમનું ભર યુવાન વયે મૃત્યું થયેલું. તેમના સ્મારકરૂપે તેમના લેખોનો હમણાં સંગ્રહ પ્રસિદ્ધ થયો છે. શુદ્ધ-શિષ્યની એ વિરલ જોડીએ સં. ૧૯૬૨નું ચાતુર્માસ ઉદયપુરમાં કરેલું. તે પ્રસંગે ઉક્ત ઇતિહાસપ્રેમી મુનિજીએ ઉદયપુરનાં પુસ્તકાલયો અને મ્યુઝિયમની મુલાકાતો લીધેલી, અને, તે દરમિયાન આપણા આધુનિક એક ઉત્તમ વિદ્વાન ડા. સા. કરણીદાનજી દધિવાડિયા સાથે તેમનું ઘણી વખત મળવું થયેલું. પ્રાતઃ સ્મરણીય ઈવિરાજશ્રી સ્યામલદાસજીની વિદ્વતાના પરિપાક રૂપી ‘વીર વિનોદ’ ગ્રંથનાં પણ તેમણે અહીં દર્શન કરેલાં. આ લેખમાં તેમણે આપણા આ બે વિદ્વાનોની તથા

તેમની કૃતિઓની યોગ્યતા વિષે નિષ્પક્ષ અને સુંદર નોંધ લીધી હોવાથી તેને અત્રે અક્ષરથઃ ઊતારીએ છીએ. ચારણ બંધુઓ આવા લેખો વાંચી પોતાના વિકાસોને ઓળખતાં શીખે એવી આશા છે. —તંત્રી : શુભરાતી વિભાગ]

ભારત ભૂમિમાં 'મેવાડ' પુણ્ય દેશ છે. દરેક દેશ પોતાની વિશેષતા ધરાવે છે. તેમ મેવાડ પણ અનેક વિશેષતાઓ રાખે છે. આરસો વર્ષોથી મેવાડમાં રીસોદિવા વંશના શક્તિઓ અવિચ્છિન્ન રીતે શાસન ચલાવી રહ્યા છે. એકંજ દેશ ઉપર એકંજ વંશનું આટલાં વર્ષો સુધી રાજ્ય હોવાનું ઉદાહરણ, ભારતના ઇતિહાસમાં તો શું, પણ બીજાં રાષ્ટ્રોમાં પણ જવડજેજ મળી શકશે. મેવાડમાં વીરતાનો ગુણ સારી રીતે વિકાસ પામ્યો છે. આ શુભને જળવધા માટે મેવાડવાસીઓએ પોતાનાં ધન, માત્ર, પુત્રી, સ્ત્રી અને બહાલા પ્રાણોને પણ તૃણવત્ ગણી લાગવામાં પૂરેપૂરી ઉદારતા બતાવી છે. તેથી તેઓ 'શું મરેહા, શું મુગ્ધ કે શું પહાણ, દરેક લગાયક કોમોની સાથે લડી પોતાના દેશની કીર્તિને બચાવવા માટે લગભગ દોઢ હજાર વર્ષ સુધી કટિબદ્ધ રહ્યા છે. રાણા પ્રતાપે આ કીર્તિની ઉજ્જવલતામાં ખાસ

વધારો કર્યો. તેમના પિતાથી ઉદયસિંહજીએ સત્તરમી સદીના પ્રથમ ચરણમાં મનોહર ઝાડી અને પહાડોથી શોભિત તથા સુરક્ષિત પ્રદેશમાં 'ઉદયપુર' નગર વસાવી હાં મેવાડની રાજધાની બનાવી. તે પહેલાં ચિતોડમાં અને 'નાગદ' † વગેરે સ્થળે મેવાડની રાજધાની હતી, પણ તે સ્થાને કાળબળે શત્રુઓનાં આક્રમણોથી ઘેરાઈ ગયાં, છિન્નિત થયાં, તેથી ઉદયપુર વસાવવાની ફરજ પડી. અત્યારે મેવાડની રાજધાની ઉદયપુરમાં છે. જો કે હવે મેવાડમાં વીરતાનાં પૂર ઓસરતાં જાય છે, પણ પૂર્વકાળમાં વીરતાની આરાધનામાંજ વધુ સમય વીત્યો હોવાથી મેવાડ દેશ સાહિસ, કલા અને શિક્ષણના વિષયમાં પંગતબની જેમ ઉત્તેજનીય પ્રગતિ સાધી શક્યો નથી.

આ દિશામાં રાજ્ય તરફથી અભિમાન લઈ શકાય તેવો પ્રયાસ મેવાયો નથી. બીજાં રાજ્યોમાં વીસમી સદીમાં જેટલી રાજ્ય તરફથી

\* અમારે હુખ સાથે કહેવું પડે છે કે, આપણી કોમની મહાન વિશ્રુતિઓને તેમનાં જીવનકાળમાં આળખવામાં આપણે વ્યકિતગત દિતને મહત્ત્વ આપી સાવ ઉદારમીન રહ્યા છીએ. આપણી એ ધૃતિને ઉદરીને આપણી કોમના આધુનિક મહાન પુરૂષ દેશમક્ત હાં સાં દેસરીસિંહજી સોરા (કોટા)ની પ્રગંસા કરતાં કવિ શ્રીઅક્ષયસિંહજી રત્નુએ યોગ્યજ કહ્યું છે:

અર્જોં ઉપાસ્થિત અપુનમેં, કેસર-મે નરનાહ ।

ઘીતે દિન જાતે વિદ્, યયોં ન ઉડાતે લાહ ॥

મુગ્ધ રાજનૈતિક રસિક, સુજસ-સુગંધ-સમીર ।

કેસર મમ કેસર જહાં, ફુલ્લ ચારણ ફસમીર ॥

—તંત્રી : શુભરાતી વિભાગ

† પંદરમી સદીના ઉત્તર સમય સુધી આ નગર ખડુ સમૃદ્ધ હતું. ત્યાં રાજધાની છે. કુભારાણાનું તે પ્રિય નગર હતું. કહેવાય છે કે ત્યાં ૩૫૦ મંદિરો હતાં. અત્યારે અમલના રૂપમાં 'નાગદ' નામથી ઓળખાય છે.

લાયબ્રેરીઓ, સાહિત્યિક સંસ્થાઓ છે, તેના પ્રમાણમાં આ રાજ્યમાં ઓછી જણાય છે. ( સં. ૧૯૯૧ ના ) ગયા મેમાસમાં અમે ઉદયપુરમાં હતા ત્યારે રાજ્ય તરફથી ચાલતી પબ્લિક અને પ્રાઇવેટ લાયબ્રેરીઓ અને મ્યુઝિયમ જોવાનો લાભ મને મળ્યો હતો તે વિશે ટૂંકમાં અહીં પરિચય આપવા ચાહું છું.

## વિક્ટોરિયા લાયબ્રેરી

આ લાયબ્રેરી સજ્જનનિવાસ ખાગમાં આવી છે. હાં વિક્ટોરિયા મહારાણીનું આવડું છે. લાયબ્રેરીનું મકાન સારા ઢંગનું છે. થોડાં ધણાં છાપાંઓ આવે છે, પણ જણાય છે કે પબ્લિકને માટે હોવા છતાં ઉદયપુરની પ્રજા તેના લાભ બહુજ ઓછો લે છે. પુસ્તકોનો સંગ્રહ લગભગ ૭,૦૦૦ નો દરો તેનો લાભ લેનાર વર્ગ પણ જૂન છે. નવાં પુસ્તકોને સંધરવા તરફ પણ રાજ્યના અધ્યક્ષની કાળજી ઓછી દરો. ત્યાં સિક્કાઓનો સંગ્રહ ઉદ્ભેખનીય છે. સોના, રૂપા, તાંબા અને લોહા વગેરેના સિક્કાઓ છે. તેમાં ધણા ખરા મધ્યકાળથી જૂના નથી. લાયબ્રેરીની સાથે જ વિક્ટોરિયા મ્યુઝિયમ છે. તેમાં મહારાણા કુલારાણાના સમયના નાના મોટા શિલાલેખો ધણા છે. કેટલાક કુટિલક્રિપિના લેખો તથા બ્રાહ્મીલિપિના શિલાલેખો પણ ઉદ્ભેખનીય છે. હિંદુ અને જૈનોની કેટલીક ખંડિત મૂર્તિઓ અને તેના અવયવો પણ છે. એક જૈન-મૂર્તિનું પરિકર કુલારાણાના સમયનું છે, તે 'નાગહદ' નગરનું છે જેને અત્યારે નાગદ કહે છે. તેની નીચે આ પ્રમાણે લેખ કેતરેલો છે:-

ओं नागहदपुरे राणाश्री कुंमकर्णराज्ये  
श्री आदिनाथ विग्रह्य परिकरः कारितः ।  
प्रतिष्ठितः श्रीखरतरगच्छे श्रोमतिवर्धन-

सूरिभिः ॥ उत्कीर्णवान् सूत्रधार धरणा-  
केन श्रीः ।

મ્યુઝિયમમાં બીજી પણ કેટલીક વસ્તુઓ છે. જેવી કે, મારેશ્વા સિંહ, વાઘ, મગર વગેરે જનાવરો, જૂનાં વાસણો અને વસ્ત્રો વગેરે. પણ તેમાં 'રીતનું રાખતું છે.' ખાસ મદદતની વસ્તુ શાહજહાં પુરમની ખાસ પાધડી છે. તેણે ઉદયપુરના મહારાણા કરણસિંહજીની પાસે આવી શરણ માગ્યું અને મહારાણાને ચરણે પોતાની પાધડી મૂકી હતી. આ બનાવ ઇસ્વી સન ૧૬૨૧ માં બન્યો એમ કહેવાય છે. \*

ઉપર્યુકત લાયબ્રેરી અને મ્યુઝિયમના અધ્યક્ષ શ્રીયુત પંડિત અક્ષયકૃતિંજી છે. તેઓ નવયુવક અને હિંદી-મંજ ભાષાની કવિતામાં સારો રસ ધરાવે છે. આ બંને સંસ્થા ઉદયપુર રાજ્યના અર્થથી ઝાંલે છે. આના નિભાવ માટે રાજ્ય દર વર્ષે ૩,૪૦૦ રૂપિયા ચિત્તોડી એટલે કે બે હજાર રૂપિયા ખર્ચે છે. આખા ઉદયપુર રાજ્ય તરફથી જનતાને માટે ફક્ત આ એક જ પુસ્તકાલય છે. આની પ્રગતિ માટે ઘણો અવકાશ છે, માટે મેવાડના રાજ્યે પૂરું લક્ષ્ય આપવું ઘટે.

## સજ્જન વાણીવિલાસ

આ પુસ્તકાલય રાજમહેશમાં છે. આની સ્થાપના સંવત ૧૯૩૧ માં મહારાણા સજ્જનસિંહજીના શાસનકાળમાં થઈ છે. આમાં નીચેના ખંડમાં 'ઇતિહાસ કાર્યાલય' છે. ત્યાં સરકારી તવારીખને લગતાં પુસ્તકો, દસ્તાવેજો, પટ્ટાઓ, સિક્કાઓ અને તામ્રપત્રોનું પણ સાહિત્ય સંગ્રહાયેલું છે. રાજ્ય તરફથી પ્રજાને કાઢીને કાંઈ પણ જમીન પા બીજી કાંઈ વસ્તુ કપારે અંપાઈ છે તે બધી નોંધ અહીં રહે છે. આમાં કુલ ૧,૬૫૮ પુસ્તકો છે, જેમાં થોડાંક

તલિખિત પણ છે. આ સંસ્થાના ઉપરી માન દધિવાડિયા કરણીદાનછ ચારણ છે, આ વિદ્યાપ્રેમી, સન્નિધન, વિદ્વાન અને રાજ-કર્તા છે. તેથી રાજ્ય તરફથી તેમને બાગીર અને માન મળેલાં છે. આ સંસ્થામાં પણ ત્રણ પુસ્તકો ખરીદવા તરફ બહુજ આહુ પાન આપાય છે.

### હસ્તવૃત્તીલઢાર

આ પુસ્તકાલય પણ મહેલમાં જ સન્નિધન તાણી વિજ્ઞાસની પાસેજ છે. તેમાં જૂના કાળથી સંગ્રહિત યથેત્રાં હસ્તલિખિત પુસ્તકોનો સારો સંગ્રહ છે. કુલ ૨,૩૧૯ પુસ્તકો છે, તેમાં કુલ ૩૧ વિભાગનાં આ પ્રમાણે પુસ્તકો છે :

વિષય	સંખ્યા
વેદ	૨૦
વેદાંત	૪૮
ભગવદ્ગીતા	૪૧
ધર્મશાસ્ત્ર	૧૦૮
કર્મકાંડ	૧૩૨
પુરાણ	૧૨૮
ઇતિહાસ	૧૯
વૈદક	૫૪
જ્યોતિષ	૧૧૮
શિલ્પ	૪
શાસ્ત્રિહોત્ર	૧૩
મંત્રશાસ્ત્ર	૯૦
કાવ્ય	૩૪
કોશ	૨૨
સાહિત્ય	૫૪
વ્યાકરણ	૨૪
સંગીત	૧૨
મંત્રકૃત લેખમાં	૩૧
બાળા-સંસ્કૃત હસ્તલિખિત પુસ્તકો	૨૭
છાપેલાં સંસ્કૃત પુસ્તકો	૫૮
સમાપન	૯

વિષય	સંખ્યા
ન્યાય (દર્શન) શાસ્ત્ર	૨૧
પાતંજલ યોગશાસ્ત્ર	૪
નાટક	૨૦
પરમુરણ	૨૫
રાજનીતિ	૧૧
રહસ્ય	૧
સંગ્રહ	૪
ધનુર્વેદ	૩
શ્રોતકર્મ	૬
રત્નપરીક્ષા	૫
સ્તોત્ર	૪૫૧
ટિપ્પણી	૧૩
જનકશાંત	૩૯
ભાષા	૧૦૨
યોગકા	૧૨૨
ભાષાનાં પુસ્તકો	૧૫૦
અંગ્રેજી	૫૪
ઉર્દૂ	૧૦૨
ફારસી	૧૦૪
તત્ત્વારીખ	૩૧

આની રચાપના ધણાં વર્ષો પહેલાં થઇ છે, એટલે આમાં સારો સંગ્રહ હોવો જોઇએ. આનો ઉપયોગ બહુજ ઓછો થાય છે. આનું નવીન દેખી દેટલોગ થાય એ જરૂરનું છે. આ જાનો પુસ્તકાલયો ખાનગી છે, એટલે પ્રગ્ન તેનો લાલ લઇ શકતી નથી. કોઇ ખાસ વિદ્વાન વ્યક્તિએને જોવા માટે ખાસ મદારાજાથીની આજ્ઞા લેવી પડે છે. શ્રીમાન મદારાજા સાહેબે આ જાનો પુસ્તકાલયો જોવાની મને અનુમતિ આપી અને શ્રીમાન કરણીદાનછએ આ પુસ્તકાલયો મને જાવાવવામાં પોતાનો સમય આપ્યો તે જદ્દત જાનો મદાનુભાવેનો હું ધન્યવાદ આપ્યા જગર રવી શકતો નથી.

સાંભળવા પ્રમાણે રાજમહેલમાં એક ત્રીજી પથુ ખાનગી લાખગેરી છે; જેમાં સરકાર પાસે જે પુસ્તકો ભેટ આવે છે તે રખાય છે.

## વીરવિનોદ

સગજન વાણીવિદ્યાસમાં એક મહાન ગ્રંથ મારા 'જોવામાં આવ્યો. તેનું નામ છે 'વીરવિનોદ'. તે મોટા કદના પાંચ ગ્રંથમાં પૂરે થયો છે. તે પાંચે ભાગનાં ૫૪૨, ૬૩૦ છે.

આ ગ્રંથમાં રાજપૂતાનાની જ નહિ પરંતુ આખી 'દુનિયાની ભૂગોળ સંબંધી બહુ જ વિસ્તારથી પ્રમાણપુરઃસર લખ્યું છે. ખાસ કરી રાજપૂતાનાના ઇતિહાસ પરત્વે બહુજ વિસ્તારથી લખવામાં આવ્યું છે. મેવાડ રાજ્યનાં તમામ દક્ષતરી સાધનો ઉપરથી આ ગ્રંથ તૈયાર કર્યો હોવાથી પ્રાચીન પ્રસ્થિતિઓ, શિક્ષણો, પદાઓ, સનદો, વહીઓ, તામ્ર-પત્રો અને રાજ્યની આજ્ઞાઓ આમાં આપ્યાં છે, તેથી સદર ગ્રંથની સત્યતા-ઉપયોગિતા અને પૂર્ણતામાં સારા વધારો થયો છે. આનું નિર્માણ લગભગ વિક્રમ સંવત ૧૯૪૩ માં થયું છે. મેવાડ રાજ્યના ખર્ચથી આ ગ્રંથ સંપૂર્ણ પાંચ ભાગમાં રાજ્ય તરફથીજ છપાઈ ગયો છે. તેમાં સાંભળવા પ્રમાણે એક લાખ રૂપિયાનું ખર્ચ થયું છે. આ મહાન ગ્રંથના આધારે શ્રીમાન પદિત જૌરીશંકરજી ઓઝાએ

'રાજપૂતાને કા ઇતિહાસ' વગેરે અનેક પુસ્તકો લખ્યાં છે.<sup>૧</sup> આ વાતની ખાતરી તેમના ગ્રંથોમાં ઠેકાણે ઠેકાણે વીરવિનોદના ઉતારાઓ અને ઉલ્લેખોથી થાય છે. આટલો ઉપયોગી આકર ગ્રંથ હોવા છતાં કમનસીબે મેવાડ રાજ્યને તેમાં વહેમ પડવાથી અર્થાત્ રાજ્યનું અધિત થતાની આશંકાથી તેનો પ્રચાર સાવ બંધ રાખવામાં આવ્યો છે. અર્થાત્ છપાયા પછી તે પુસ્તક કોઇને ય અપાતું કે અપાતું નથી, તેથી તે મહાન ગ્રંથના લાભથી સાહિત્યસેવી વિદ્વાનો વંચિતજ રહે છે. અને તેથી રાજ્યના લાખ રૂપિયાનું નકામું પાણી થયું કહેવાય. આ ગ્રંથના રચયિતાની કેટલી બધી મહેનત અને આશા હશે? એ બધી અત્યારે તો એક જવાબી કોટડીમાં સડી રહી છે. ગ્રંથકાર જીવતા હોત તો તેમના આત્માને આ રિયતિ જોઇ કેટલું દુઃખ થાત? આ મહાન ગ્રંથના કર્તા છે શ્રીમાન કવિરાજ સાંવલદાનજી<sup>૨</sup>. તેઓ જાંતે ચારણ હતા, પથુ સંસ્કૃત, દિંદી વગેરેના સારા વિદ્વાન, શોધક અને કવિ હતા<sup>૩</sup>. તેઓ મેવાડ રાજ્યના ઇતિહાસ-કાર્યાલયના અધ્યક્ષ હતા. આ કાર્યાલયના અનુલભો અને બીજા સેક્રેટરી સાધનોથી તેમણે વીરવિનોદ નામનું પુસ્તક બનાવી પોતાની કીર્તિને અમર બનાવી જગત ઉપર મહાન ઉપકાર કર્યો છે. તેઓ પોતાના સમયમાં એક પ્રતિષ્ઠિત વિદ્વાન અને કવિ ગણાતા. મેવાડ રાજ્યનું ભૂપથ હતા. તેઓ અત્યારે

૧. ૫૦ કેસરીમદ્દ શર્માએ 'મેવાડ કે સપૂત' નામક ગ્રંથમાં કવિરાજ શ્રી શ્યામલદાસજીના જીવનચરિત્રમાં, અને દી૦ બ૦ શ્રી હરમિત્રાસજી શારદાએ 'ઓઝા અભિનંદન ગ્રંથ' અંતર્ગત 'રાજપૂતાને મે' પ્રાચીન શોધ' નામક લેખમાં આવોજ અભિપ્રાય આપ્યો છે.

૨. તેમનું નામ સાંવલદાનજી નહિ પણ શ્યામલદાસજી હતું.

૩. અહીં 'પથુ' શબ્દનો પ્રયોગ જોતાં લેખક, મહાશયનો એવો અભિપ્રાય હોય તેમ જણાય છે કે, ચારણો સંસ્કૃત, દિંદી કે ગુજરાતી ભાષાના જોગી કોર્ટના વિદ્વાન કે કવિ હોઈ શકે નહિ. વિક્રમની ત્રીજીથી અઢારમી સદી સુધીમાં આઝાણુ વિદ્વાનો અને કવિઓએ લખેલા સંસ્કૃતગ્રંથોમાં જ્યાં જ્યાં ચારણોનો ઉલ્લેખ થયો છે, ત્યાં ત્યાં કવિ અને ચારણ અથવા કવિ

આ મત્ત લોકમાં શરીરથી નથી પણ યશઃ  
કાયથી અત્યારે છે અને ભવિષ્યમાં જીવિત  
રહેશે. હું વર્તમાન મહારાણા સાહેબને આ  
અનુરોધ કરું છું કે તેઓ આ મહાન વિદ્વાનના

આકરશ્ય થતો પ્રચાર કરી મહાન પ્રુદય-  
કીર્તિને પ્રાપ્ત કરવાનો પ્રસંગ જવા ન  
દે. આવા અથા જગતની વસ્તુ હોય છે.\*

અને ચારણકવિ એમ ગમે તે કારણથી બિજાતા ખતાવવામાં આવી છે. અને બીજી બાજુ છેલ્લાં એક  
હજાર વર્ષથી અઘાધુધી અને લગાઈ-જગદમાં રમ્યા પમ્યા રહેલ રાજપૂતાના પ્રદેશના વસવાટને  
લીધે ચારણ જાતિએ પણ સંસ્કૃત ભાષાનું પાઠન-પાઠન બિજાકુલ છોડી દીધું છે, એમ  
અમારે દુઃખ સાથે કબૂલવું પડે છે. અને તેથીજ બાહ્યભૂતિ વિદ્વાનોએ આપણા માટે  
આવા ઉલ્લેખો કર્યા હોય એમ લાગે છે. એટલું જતાં જે સત્તરમી સદી પછીના કેટલાક ચારણ  
કવિઓ સંસ્કૃત ભાષાના ઉત્તમ વિદ્વાનો હતા. જે કે તેમણે પણ સંસ્કૃત ભાષામાં તો કોઇ  
અમર રચના કરી નથી, જતાં જે સંસ્કૃત ભાષાની વિદ્વતાએ તેમને હિંદી-હિંગલના કવિઓમાં  
મહાકવિપદ અપાવ્યું છે. અને એ દિવ્દતાનો નિચોડ પણ તેમની તે તે ભાષાની કૃતિઓમાં  
જોવામાં આવે છે.

મહાકવિ સૂર્યમલ્લજી મિશ્રણ, કવિરાજ ચંડીદાનજી મધિયારિયા, મહામહોપાધ્યાય કવિરાજ  
સ્વામીદાસજી, ગોસ્વામી ગણેશપુરીજી, મહામહોપાધ્યાય કવિરાજ મુરારિદાનજી આસિયા,  
હાકુર કૃષ્ણસિંહજી સોદા આદિ જોગણસમી સદીના સંસ્કૃત ભાષાના પુરંધર ચારણ વિદ્વાનોના  
મૃત્યુ પછી પણ એ પરંપરા ઇશ્વરકૃપાએ ચાલુ હતી, પરંતુ હવે તે સૂકાઈ જશે એવો સંભવ  
છે. કેમકે છેલ્લાં પંદર વર્ષમાં ૬૦ સાં હનુમદાનજી ગાડણ અને ૬૦ સાં શક્તિદાનજી  
ખારહડ ગયા. ગયે વર્ષે જાતિના એકમાત્ર સંસ્કૃતના અસાધારણ વિદ્વાન ઇતિહાસમૂર્તિ  
૬૦ સાં કિશોરસિંહજી સોદા ગયા. હવે પૂન્યપાદ દેશભક્ત ૬૦ સાં કેસરીસિંહજી  
જોષા (કોટા) અને પ્રસ્તુત લેખમાં ઉલ્લેખિત ૬૦ સાં કરણીદાનજી દધિવાડિયા જેવા  
જે ત્રણ વયોવૃદ્ધ ઉત્તમ વિદ્વાનો બાકી છે. અત્યારે જે કે જ્ઞાતિમાં કેળવણીનો  
પ્રચાર વધ્યો છે, અને રાજપૂતાનાનાં જે ત્રણ યુવક બંધુઓએ તો હિંદની સર્વોપરિ  
શિક્ષણ-સંસ્થા હિંદુ વિશ્વવિદ્યાલય, કારીની એમં એં જેવી સર્વોચ્ચ પદવી મેળવી છે. પરંતુ  
તેમણે કારી જેવા સંસ્કૃત ભાષાના વિશ્વવિખ્યાત રચનાનો લાભ ન લેતાં પોતાની બીજી ભાષા  
તરિકે સંસ્કૃતને બદલે હિંદી કે બીજી કોઇ ભાષા લીધી હતી ! આ સ્થિતિ વધુ વખત ચાલુ  
રહી કોઇ એજ્યુએટ બંધુ સંસ્કૃતને અભ્યાસ નહિ કરે તો ઉપરોક્ત જે ત્રણ વિદ્વાનોના  
આયમ્યા પછી ચારણજાતિમાં વીસમી સદીમાં પણ એકેય સંસ્કૃતનો વિદ્વાન મળશે નહિ, અને  
નાની સરખી શાસ્ત્રોક્ત કે પૌરાણિક વાત માટે પણ આપણે અન્ય જાતીય વિદ્વાનોનો આશરો શોધવો  
પડશે ! હવે તો ચારણજાતિનાં વૈદિક, પૌરાણિક અને મધ્યકાળનો ઇતિહાસ આપણે શોધવાનો  
છે; તે સંસ્કૃત ભાષાના અભ્યાસ વિના કેવી રીતે શોધી શકીશું ? એટલે કે,  
કાલેજોમાં ભણતા સમ્પ્રતીય યુવક બંધુઓ અમારી આ નમ્ર મુશ્કેલી તરફ ધ્યાન આપી, અધરી  
છે જતાં જે જ્ઞાતિને ભોગે પોતાની બીજી ભાષા તરિકે સંસ્કૃતને લઇ એમં એં અને  
એવી અમે આશા સેવીએ છીએ. \* આ લેખ લખાયા આદ ઉદયપુરના વર્તમાન મહારાણા  
સાહેબે આ મહાઅયને ૬૦૭ રૂપિયા કલદાર અથવા ૧૦૦૭ રૂપિયા સિતોડી મુદ્દથી વેચવાની  
આજ્ઞા જાહેર કરી છે.

—ત્રી : શુભરાતી વિભાગ

## કૃત્તેહ પ્રકાશ પ્રશસ્તિકાવ્ય

જે શ્રીમાન કાકાર કરણીદાનજીનો ઉક્તિએ  
હું પહેલાં કરી ગયો છું તેઓ કવિરાજ સાંવલ-  
દાનજીની ઉત્તર પરંપરામાં થયા છે. અર્થાત્  
કાકાર કરણીદાનજીના દાદા, સાંવલદાનજી કવિ-  
રાજના ભાઈ ચતા હતા. તેથી કવિરાજ  
સાંવલદાનજીના વિદ્યાપ્રેમની ગ્રાંખી કાકાર  
કરણીદાનજીમાં નજર પડે છે.<sup>૧</sup> તેમણે 'કૃત્તેહ  
પ્રકાશ પ્રશસ્તિકાવ્ય' નામની એક રાત્ર્યશ-  
સ્તિ ખનાવી છે. તે સંસ્કૃત ભાષાનાં ૧,૨૫૦

પદ્યોમાં પૂરી થઈ છે. તે એક સાદું કાવ્ય  
છે. તેમાં બાપા રાવળથી લઈ મહારાણા  
ભૂપાલસિંહજી સુધી સાધારણ કાવ્ય અને  
ઇતિહાસ મિશ્રિત પદ્ધતિથી સરળ અને સંક્ષે-  
પમાં વર્ણન છે. છંદ મોટે ભાગે અનુષ્ટુપ છે.

કાકાર શ્રી કરણીદાનજી સન્નમન અને  
વિદ્વાન હોઈ નમ્ર અને ગુણુભાહી છે. ગયા  
ચાતુર્માસમાં અમારી સાથે તેમનો પરિચય થયો.  
તેઓ અમારી પાસે અવારનવાર ઉપાશ્રયે  
આવવા લાગ્યા. તેમની ઓફિસમાં મને લઈ ગયા.

૧. ૨૧૦ પ્રાતઃસ્મરણીય કવિરાજ શ્રી શ્યામવ્રદાસજી દધિવાડિયાના ભગીરથ પ્રયત્નથી  
ઉદયપુરમાં 'ચારણ પાઠશાળા'ની સ્થાપના થઈ હતી. તેમાં સંસ્કૃત ભાષામાં પઠાંગ કાવ્ય-  
શાસ્ત્રિયનું ઉચ્ચ શિક્ષણ અપાતું હતું. પરંતુ ઉક્ત કવિરાજજીનો સને ૧૮૯૩ માં દેહાંત થતાં  
પાઠશાળાનું કામ શિથિત બન્યું અને ચારણોની તત્કાલિન વિદ્યા પ્રત્યેની અરુચિને કારણે તેમાં  
ભણતા ધણાખરા વિદ્યાર્થીઓ નારી ગયા. છતાં યે જે પાંચ-સાત પ્રતિભાસંપન્ન વિદ્યાર્થીઓએ  
ત્યાં રહી કાવ્ય-સાહિત્ય અને વ્યાકરણાદિનો સંપૂર્ણ અભ્યાસ કર્યો, તેમાં દેશભક્ત કાં. સાં.  
કેસરીસિંહજી સોદા (કોટા), કાં. સાં. કરણીદાનજી દધિવાડિયા અને ૨૧૦ કાં. સાં.  
કિશોરસિંહજી સોદા એ મુખ્ય હતા. એ ત્રણે સંસ્કૃતના ઉત્તમ વિદ્વાન અને કવિ થયા.

અત્યારે એ પાઠશાળાનું પરિવર્તિત નામ "શ્રી ભૂપાળ ચારણ છાત્રાલય" નું  
રાખવામાં આવ્યું છે. ચારણ પાઠશાળાને તેના સંસ્થાપક કવિરાજ શ્રી શ્યામવ્રદાસજીના  
ઉત્તરાધિકારી પોતાની ખાનગી મિલકત સમજી તેનો અનુચિત લાભ લેતા હતા.  
એમનો અધિકાર ખત્રેડીને તેને હાલના સ્વરૂપમાં લાવવાનું પ્રાયઃ મધુ શ્રેષ્ઠ અખિત્ત ભારતીય  
ચારણ સમેલનના બૂનપૂર્વ પ્રધાનમંત્રી અને હાલમાં આ પનના મુખ્ય તંત્રી કાં.  
ધર્મદાનજી આસિયાની ધણા વર્ગોની નિરંતર પ્રેરણા, પ્રયાસ અને પ્રયત્નને આભારી છે.  
અત્યારે છાત્રાલયનો પ્રવચ કાં. સાં. કરણીદાનજી દધિવાડિયાના હાથમાં છે, અને તેઓ  
તેના સંકેટરી છે. પરંતુ આ અકલાં દિલી-સિત્તાગમાં આ છાત્રાલય સંબંધી જે તંત્રીનોપ  
પ્રસિદ્ધ થઈ છે તે વાંચતાં અમને દુઃખ થાય છે કે, તેમના જેવા વિદ્વાન સન્નમનના  
હાથમાં છાત્રાલયનો પ્રવચ હોવા છતાં પણ તે સતોષકારક નથી. અને તેની સાથે  
તેઓ બિવિદિતનાં, કાર્યો તરફ પણ દુર્લક્ષ્ય સેવે છે! એમના જેવા પ્રતિભાશાળી  
વિદ્વાનની સમેલનના એક પણ અધિવેશનમાં હાજરી નહિ, તે સું ઓછો દુઃખનો વિષય  
છે! કહેવાનું તાત્પર્ય કે, તેઓ એ તંત્રીનોપની ઉપયોગી સૂચનાઓ પર શીઘ્ર ખ્યાન આપી  
તેનો કાર્યક્રમમાં અમલ કરશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

—તંત્રી : ગુજરાતી વિભાગ

તેમણે ઉપર્યુક્ત 'કૃતેહપ્રકાશ પ્રશસ્તિકાવ્ય' ઉપાત્રયમાં લાવી મને ખતાવ્યું. અને તેમાં યોગ્ય સુધારો કરવાનું પણ કહ્યું. બહુ પ્રેમપૂર્વક મેં તે કાવ્યનો કેટલોક ભાગ જોયો અને મારી બુદ્ધિ પ્રમાણે મેં તે માટે શ્રી કરુણીદાનજી સાહેબને યોગ્ય સૂચના કરી; જેનો અમલ તેમણે નમ્ર ભાવથી કર્યો. મને દુઃખ છે કે આખું કાવ્ય જોવાનો તેમનો બહુ આગ્રહ હોવા છતાં તે કાવ્યને હું સંપૂર્ણ જોઈ શક્યા જોડે સમય કાઢી શક્યો નહિ અને તેથી તેમની માગણી હોવા છતાં, તે ઉપર મારો અભિપ્રાય પણ કંપી શક્યો નથી. આ કાવ્યમાં સીસો-દિયા વંશનો પ્રારંભથી અત્યાર લખીને દૃઢ ઇનિદાસ છે, જે 'વીરચિનોદ'નું નવનીત પણ કહી શકાય શ્રીમાન કોટાર કરુણીદાનજીના કહેવાથી જાણીયું કે મદારાણી 'કૃતસિંહ'ની ઇચ્છા-પ્રેરણાથી પ્રસ્તુત પ્રશસ્તિની રચના કરવામાં આવી છે. તેથી ઉદયપુર રાજ્યની સનાતન પદ્ધતિ પ્રમાણે આ સંપૂર્ણ કાવ્યને શિલાલેખોમાં કોતરાવવાની પૂરી ખાતરી હતી. દ્વયોગે કાવ્ય પૂરું થતાં પહેલાં મદારાણીશ્રી 'કૃતસિંહ' સાહેબ દેવલોકવાસી યાદ ગયા. અત્યારે તેમનાજ પુત્ર મદારાણીશ્રી બુધાલસિંહજી રાજ્યાદી ઉપર છે. કોટાર કરુણીદાનજી ઉપર તેમની દૃષ્ટિ સારી છે તેથી તેમને પૂરી આશા છે કે, વર્તમાન મદારાણી સાહેબ આ પ્રશસ્તિ કાવ્યને શિલાલેખોમાં કોતરાવી ચિત્તો-ડના મહેલમાં યા કોઈ પ્રસિદ્ધ રચનામાં મુદ્રા-વશે અને પોતાની કારકિર્દીને ગિરંજીથી બનાવશે.

ઉદયપુર રાજ્ય પ્રાચીનતમ હોવા છતાં અત્યારે ઉદયપુરમાં દિગ્ગજ વિદ્વાનો તો નથી; પણ પंडित ગિરિધરલાલજી શાસ્ત્રી, કોટાર કરુણીદાનજી વગેરે કેટલાક સારા વિદ્વાનો છે. પंडित ગિરિધરલાલજી કાવ્ય સાહિત્યનાં સારા જ્ઞાતા વિદ્વાન છે. તેમણે કાવ્ય પ્રકાશ ઉપર પદ્યગદ્ય સંસ્કૃત વૃત્તિ વગેરે કેટલાક ગ્રંથો બનાવ્યા છે. ઉદયપુરમાં રાજ્ય તરફથી એક સંસ્કૃત શાળા પણ ચાલે છે.

મેનાડ રાજ્ય તરફથી ચાલતાં પુસ્તકાલયોની અહીં રૂપરેખા આપી છે. આટલું મોટું અને પ્રાચીન રાજ્ય હોવા છતાં રાજ્ય તરફથી જનતાને માટે ફક્ત એક જ 'પુસ્તકાલય' છે, એ બહુ જ ઓછું દેખાય છે, જ્યારે વડોદરા રાજ્ય તરફથી એક હજાર કરતાં વધુ પુસ્તકાલયો સ્થાપિત થયાં છે. જે કે મેવાડની પ્રજામાં શિક્ષણનો ધણો અભાવ હોવાથી તેને વાચનનો શોખ પણ નથી, છતાં રાજ્ય તે શોખ લગાડવા પગલાં લે તો સફળતા મળી શકે ખરી.

બીજી વાતની એ લલામણ છે કે, મેવાડમાં સેંદેકો પ્રાચીન જૈન અને વૈદિક મંદિરો ભગ-અર્ધભગ અવસ્થામાં પડ્યાં છે. અનેક પ્રાચીન તળાવો, કિલ્લાઓ અને જૂનાં સ્થાનો છે. ત્યાંથી મૂર્તિઓ, શિલાલેખો વગેરેનો સંગ્રહ કરી રાજ્યના મ્યુઝિયમને સમૃદ્ધ, બવસ્થિત અને ઉપયોગી બનાવવામાં આવે તો મેવાડના ઇતિહાસ ઉપરજ નહિ; પરંતુ ભારતના ઇતિહાસ ઉપર સારો પ્રકાશ પડી શકે. હું આહું છું કે મદારાણી સાહેબ આ નમ્ર સૂચના તરફ ધ્યાન આપી યોગ્ય કાર્ય કરી બતાવશે.\*

‘દૈમુદી’ એપ્રિલ ૧૯૩૬ ના અંકમાંથી ઉદ્ભૂત



\* મુનિ શ્રી દિમાંડુવિજયજીના ગુરુદેવ મુનિરાજ શ્રી વિદ્યાવિજયજી મદારાજે પણ ઉદયપુરના એ ચાતુર્માસ પ્રસંગના વિદાર સંગ્રહો ‘મારી મેવાડ યાત્રા’ નામથી ગુજરાતી ભાષામાં



વિસ્તૃત અને પાંદિત્યપૂર્ણ લેખમાળા લખેલી, અને તે “જૈન જ્યોતિ”, “મુંબઇ સમાચાર” આદિ પત્રોમાં પ્રસિદ્ધ થયેલી. દિંદો ભાષામાં તે એ લેખમાળા “મેરી મેવાડ-ચાવ” નામથી પુસ્તિકાકારે પણ પ્રસિદ્ધ થવા પામી છે. તેમાં ઉક્ત મુનિરાજે યોગસવાત્ર જેનોના ઉદયપુર રાજ્ય સાથેના ધનિષ્ઠ સંબંધનું વર્ણન કરતાં આપણા આધુનિક સમર્થ કવિરાજ દાકર કેસરીસિંહજી સોદા (સોન્યાણા)એ તેમના અમર ગ્રંથ “પ્રતાપ-ચરિત્ર”માં યોગસવાત્ર કુલબૂણ મંત્રીવર ભામાશાહની અપૂર્વ સ્વામીલકિતનું જે અનૂદી કવિતામાં આલેખન કર્યું છે, તે આખો પ્રસંગ સુંદર વિવેચન સહિત આપ્યો છે. આ પ્રસંગે એ લેખમાળામાંથી તેટલો ભાગ અને ઊતારવાના લોકને અમે રોકી શકતા નથી. -તંત્રી : શુભરાતી વિલાસ

“.....જ્યારે મહારાણા પ્રતાપનું નામ, એનું દેશભિમાન અને એની ધર્મદ્રદતાનો કુકુળી આજ પણ દિગ્-દિગંતમાં ગાજી રહ્યો છે. તેવીજ રીતે દટોડદીના સમયે એ મહારાણાના સહાયક થનાર અને દેશરક્ષાના કાર્યમાં તેને ઉત્તેજિત કરનાર ભામાશાહનું નામ પણ તેટલુંજ જગપ્રસિદ્ધ વ્યાપ્ત થયેલું છે. દુનિયાનો કોઈ પણ સાચો ઇતિહાસકાર મહારાણા પ્રતાપના નામની સાથે મહામાતૃ ભામાશાહનું નામ પણ ભૂલી શક્યો નથી; અને ભૂલી શકે તેમ નથી. મહારાણા પ્રતાપની સાથે ભામાશાહ માટે પણ આજ સુધીમાં ઘણું લખાયું છે; અને ઇતિહાસકારોએ, કવિઓએ, નાટકકારોએ, ભામાશાહની સ્વામીલકિત અને દેશલકિતનાં ભૂરિ ભૂરિ વખાણ કર્યાં છે. આ પ્રધાનો ઉલ્લેખ કરવાનો આ પ્રસંગ નથી, છતાં શ્રીયુત કેસરીસિંહજી ખારલુઠ નામના એક કવિએ હમણાં જહાર પાડેલ ‘પ્રતાપચરિત્ર’માં પ્રતાપ અને ભામાશાહનો પ્રસંગ જે સુંદરતાપૂર્વક વર્ણવ્યો છે, એની કંઈક વાનગી આ પ્રસંગે આપવાની લાજઅને રોકી શકતો નથી.

મહારાણા પ્રતાપ ધનહીન, સાધનહીન ખનતાં પોતાના ખ્યારા મેવાડનો ત્યાગ કરે છે. ત્યાગ કરતાં કરતાં પણ પોતાની સ્વતંત્રપ્રિયતાને ઊડતો નથી; અને પોતાના સાથીઓને સંભળાવે છે :

કહ્યું દિન હિમિ રહિ દુર ફરિ, સ્થાપરિ રાજ્ય સ્વતંત્ર ।

પ્રાન રહૈ તક નહિ રહૈ, પત્તા તો પરતંત્ર ॥ ૭૨૨ ॥

પ્રાણ રહેવા સુધીમાં ક્યારે પણ પરતંત્ર-યુદ્ધાગ્રીમાં નહિ રહેવાની પ્રતિજ્ઞા કરતાં પ્રતાપ દેશ છોડી ચાલી નીકળે છે. હૃદયમાં દુઃખનો ખાર નથી, પણ સાધનહીન પ્રતાપ માટે દેશ છોડવા સિવાય બીજો શો ઉપાય છે?

પ્રતાપ ગોસવાત્ર યદ્દ વિદાય થાય છે. તે વખતે જેના વાળ સફેદ થઈ ગયા છે, શરીરથી અશક્ત છે, કાકડીના ટેકાથી ચાલી રહ્યો છે, ચાકતાં ચાકતાં દોડતો ખાય છે, એવો એક વૃદ્ધ પુરૂષ પ્રતાપની સામે માર્ગમાં આવીને આડો ઊભો રહે છે. આ વૃદ્ધ પુરૂષ કેવા ભાવપૂર્વક મહારાણા પ્રતાપની સામે આવીને ઊભો છે, એનું વર્ણન કરતાં કવિ કથે છે:

સ્વર્પિ-મલ્લિ-પ્રેમ ધર્યો પૂરન હૃદય ચીવ,

દેસ-અભિમાન મર્યો જાકો રગ-રગ મેં ।

કીરતિ કો લાડાં ઔર મન કો ઉદાર ગાઢો,

ભામાસાહ આડો આપ ઠાઢો મયો મગ મેં ॥ ૭૩૨ ॥

સંખ્યાકાળનો સમય હતો, પ્રતાપે લાકડીના ટેકાથી સામે આવીને ઊભેલા વૃદ્ધ પુરુષને ન ઓળખ્યો. પ્રતાપ એ વૃદ્ધ પુરુષને પૂછે છે: “તમે કોણ છો? તમારી જાત કી? તમારું નામ શું છે? તમારી ઉપાધિ શી છે? તમારું ગામ કયું?” ભામાસાહ પ્રતાપના આ પ્રશ્નોના ઉત્તરમાં જે કહે છે, તે કવિના શબ્દોમાં આમ છે:

બોલિ ‘જયજીવ!’ ઔર નજર સમેમ કીન્હી,

સેઠ કે અપાર મયો હૃદય હુલાસ હૈ ।

હાથ જોરિ ચર્નન મેં અરજ કરન લાગો,

ચિત્રકૂટ હમારો પુરનો નાથ ! વાસ હૈ ।

વનિયા હૈ જાતિ ઔર કીકર કો નામ ‘ભામા’,

વતેમાન વાસ જો યહાં તેં વહુ પાસ હૈ ।

પુરના હમારે રહે રાનન કે મંત્રી પત્રાસ,

રાવરો વપાલુ ! યહ દાસન કો દાસ હૈ ॥ ૭૩૪ ॥

‘ભામા’નું નામ સાંભળતાં જ પ્રતાપ આશ્ચર્યમાં મરકાવ થયો. ભામાસાહ એ તો પોતાનો ખુબીમાન્ય રાજપુરુષ. ભામાસાહનું સ્થાન પ્રતાપના દરબારમાં, અરે પ્રતાપના હૃદયમાં ‘કેટલું જીયું’ હતું એ પ્રતાપના શબ્દોથી પ્રતીત થાય છે:

વહુત પ્રસન્ન હોઈ પાતલ નજર લીન્હી,

કહી મહારાન તુમ વાંધવ કી ઔર હો ।

લાંચક હો વહુત હમારે ચાસ સેવક હો,

જેતે હૈ હમારે મંત્રિ અનેક હ મૌર હો ।

કેટલું ખુબીમાન ! પ્રતાપ કહે છે: તમે તો મારા બાંધુને સ્થાને છો, લાંચક છો, અમારા ખાસ સેવક છો, એટલું જ નહિ પણ અમારા અત્યાર સુધીના મંત્રીઓમાં સુકડ સમાન છો.

પ્રતાપે પોતાનો પ્યારો દેશ છેલ્લાનું કારણ બતાવ્યું, છતાં ભામાસાહ દેશ નહિ છેલ્લાને; આગ્રહ કરે છે, અને પોતાની દાર્શિક ભક્તિ પ્રગટ કરે છે. અને જ્યારે તે માર્ગમાંથી દાંતો નથી, ત્યારે પ્રતાપ કહે છે:

કહે મહારાન સાહ પેસો કો તુમહારો ભક્તિ,

તદાપિ હમારી ગલ નાહક પેરો હો તુમ ।

ધર્મ કે નિમિત્ત સવ સેના વાલિદાન મરે,

દેલિકે હમારો દુઃખ નાહક જેરો હો તુમ ।

તુર્ક સોં લરન નહીં સેના ફિર સંચય વૈઠે,  
તેતો ધન વૃદ્ધે સાહ કહૈંતે મરો દો તુમ ?  
અવને નિવાસ પર વયોં નહિં ફિરો દો પાછે,

પેસો હટ મામાસાહ ! નાહક કરો દો તુમ ॥ ૭૨૭ ॥

લામાશાહ કહે છે : જે વખતે જન્મભૂમિ વિપત્તિમાં આવી પડી છે, તેને જોઈ હું કેમ સંતાઈ શકું ? આવા વિકટ પ્રસંગમાં મારા દેશની અને સ્વામીની વચાશક્તિ સેવાથી કેમ પાછો પડું ? આખરે તે કહે છે :

વિત્ત અનુસાર આજ સેવા હી વજાઁ કહા ?

માલિક કે હેત નાય ! ઝમો વિકિ જાઁ મેં ॥ ૭૩૮ ॥

સ્વામીની સેવાને માટે હું બિભો બિભો વેચાઈ જવા તૈયાર છું. ધન્ય છે લામાશાહ ! લામાશાહ પોતાનું સર્વસ્વ મહારાણા પ્રતાપના ચરણોમાં ધરી દે છે. સ્વામિભક્તિ અને દેશ ભક્તિના આદર્શ સમાન લામાશાહ ઇતિહાસનાં પૃષ્ઠમાં પોતાનું અમર નામ ડોતરાવે છે કવિએ લામાશાહની આ ભક્તિની ખૂબી પ્રશંસા કરતાં છેવટે સાચા સ્વામીભક્ત સુગ્રીવન સાથે તુલના કરતાં કહ્યું છે :

उन किय सेवा लोभ हित, तुम निरलोभ असेस ।

सेवक घर सुग्रीव ते, भामासाह ! वैसेस ॥ ७४६ ॥

સેવા બનેએ કરી, પરંતુ સુગ્રીવની સેવા લોભના કારણે હતી. લામાશાહની સેવા નિર્ભોલપણાની હતી. એટલા જ માટે સુગ્રીવ કરતાં પણ લામાશાહ વધી ગય છે. ”



## સાહિત્ય-સેવા

પુસ્તકના રૂપમાં જ વાચકોના હાથમાં પુસ્તકોનો થોકડો મૂકવામાં આવે તો જ એ વ્યક્તિએ સાહિત્યની સેવા કરી છે, એનું માનવામાં આવે તો અનવરથાનો પ્રસંગ બિભો થશે. એ નામના કવિએ પોતાના જીવન દરમિયાન પચાસેક જેટલાં અનુવાદ-કાવ્યો લખીને સાહિત્યની જે સેવા કરી છે, તે હાયાયેલા કાવ્યોના મોટા ભાગથી યદ શકતી નથી આ તરફ સહયમાં રાખવાની જરૂર છે.

—ગોવિંદ સખારામ સરદેસાઈ

## પ્રશ્નચર્ચા

“પ્રશ્નચર્ચાનું પાલન સંસારમાં મુશ્કેલ તો છેજ, પણ જો તે જગતમાંથી નિવૃત્ત થઈને પળાતું હોય, તો તેની બહુ કિંમત નથી.”

—મહાત્મા ગાંધીજી

## દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ !

(લેખક : કવિશ્રી ત્રિભુવનભાઈ ગૌરીશંકર બ્યાસ, રાજકોટ)

[ ચારણ જ્ઞાતિને અધોગતિ-અસ્ત બનાવવામાં જગીરના મદની સાથે તેના જીવન-સહચર મધ્ય-દારૂએ કેટલો અગત્યનો ભાગ ભજવ્યો છે; અને ભજવ્યો જાય છે, તેનાથી કાણ અગ્નિ છે ? હમણાં જ મારા એક બાળપણથી પરિચિત સગાતીય રસ્તેદારે કે જેઓ અમારા પંથકમાં જ્ઞાતિને ઉપકારક નીચડવાની હું આશા સેવતો હતો, તેમનું દારૂથી થયેલું અધઃપતન મેં નગરો નગર જોયું, ત્યારે તો મારું કાળજી કપાઈ ગયું !

ગયા વર્ષથી હિંદના સાત પ્રાંતોમાં કંત્રિસી-અમલ શરૂ થતાં મદ્રાસ પ્રાંતમાં સર્વ પ્રથમ દેશના દુશ્મન એ દારૂના દૈત્યનો ફરજિયાત નાશ આદરવાયો. અને ત્યાર બાદ મુંબઈ પ્રાંતમાં પણ પ્રસિદ્ધ ઔદ્યોગિક નગર અમદાવાદમાંથી છેલ્લા ચારેક માસથી તેની કાનૂન દ્વારા ખેંધી ફરમાવવામાં આવી છે. એ માંખિક પ્રસંગે કવિશ્રી ત્રિભુવનભાઈએ આ માર્મિક-ઉત્તમ ભાવવાદો કાવ્ય રચ્યું છે. તે આપણા સમાજને પણ બહુ ઉપયોગી જણાતાં અહીં જોતાયું છે. જે કે મહાકવિ ઉમરદાનજી બાળસે દારૂના દુર્યુજોનું માર્મિક વર્ણન કરવામાં કાંઈ બાકી રાખ્યું નથી, અને એ કવિતાથી આપણા સમાજ બહુધા પરિચિત હોવા છતાં તેની કાંઈ અસર થયેલી જણાઈ નથી. છતાં એ આ નવયુગના જગતરણે પ્રસ્તુત કવિતા કાંઈક અસર નીપજાવી અન્ય સામાજિક કુરિયોની જેમ દારૂના દુર્યુજને ફગાવી દેવા આપણા સમાજને વિચાર કરતો કરશે એવી આશા છે.

—ત્રી : ગુજરાતી વિભાગ ]

### સુસણા છંદ

આજ ભારતતણો ગગન ધનધૌર છે, દુઃખ દારિદ્ર ને દર્દ દળથી,  
પીડિત છે ભંધુઓ, લગિનીઓ, બાળકો, બચનના પૂર માંહે વ્રમળથી;  
શક્તિ સદગુણને નષ્ટ કીધાં અરે ! બ્રહ્મ કીધું બલુ વતન ખ્યારું,  
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ !  
અન્ન ખાવા નથી, દૂધ પીવા નથી, વસ્ત્ર પૂરાં નથી અંગે ઉપરે,  
જીવનનાં સાધનો જરૂર પૂરતાં નથી, કામનો થાક તે ક્યાંથી જીતરે ?  
હાંડ પિંજર સમી નીપજ છે પ્રભ દેશમાં દૂર પેઠા લૂંટારું,  
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ !  
નિંદગી વેડફી છે અમારી અરે ! પાક તેં સર્વ નાપાક કીધું,  
દુષ્ટ ને પુષ્ટ અમ હિંદ સંતાનનું ઘૂંટડે ઘૂંટડે લોલો પીધું;

ધર્મની ભાવના ધૂળ ભેગી કરી, નીતિને તેં ખતાવી ખતાર,  
 સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દાર !  
 હિંદુને ના ખપે જૈનને ના ખપે, પાક ઇસ્લામને તો ખપે ના,  
 તોય તેં હાય ! પરદેશથી આવૌને, આંહી અહા જમાવ્યા જ રોના ?  
 વેશ સુધરેલનો ધારીને ભાળવ્યા, જીવન તેં ઝેર કીધું અમારું,  
 સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દાર !

કુળની કુર્જીનતા, પુરુષની પુર્નીતા, નારીની નમ્રતા તેં હરી છે,  
 ખીસતાં પુષ્પ શાં બાલુકાંતી અરે ! ગાલની લાલોંચો ઊતરી છે;  
 ઉત્સવો ટાળીને મિજલસો માંડી તેં પ્યાલીનું માન મોહું વધાર્યું;  
 સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દાર !

વેશ વિંસાયતી ધારી આ દેશમાં તેં પ્રવેશી પ્રતિપક્ષ સ્થાપ્યો,  
 દેશનાં વેશ, સાદાઈ ને શુચિ તણી ભાવનાને તિરસ્કાર આપ્યો;  
 યદ્યપિ ભૂખ છતાં મદપી વધી પડ્યા, દુર્ગુણોનું લઈ છેક લાર  
 સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દાર !

રામ ને રહોમનો બાપ જાતી પ્રજા તેમનાં વદન તેં બ્રષ્ટ કીધાં,  
 ગર્જીય ગાળો વડે એજ મુખથી અરે ! કેંક સન્નારીને કષ્ટ કીધાં;  
 જ્ઞાન હડખાયકું હોય એવું કર્યું મનુજનું મગજ તેં તો નહારું,  
 સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દાર !

સુકિતને ઝંખતી ભારતી માત જ્યાં પૂર્ણ સ્વાતંત્ર્યનાં યુદ્ધ માંડે,  
 કાણુ એવો હશે હિંદો જે આ સખે મદના પાનથી લાન છાંડે !  
 કષ્ટ હોજો બહુ નમ્ર હોજો સહુ, કિંતુ ના જોઈએ બ્રષ્ટ દાર;  
 સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દાર !

## યુગ-સંદેશ

લેખક : શ્રી જીવણલાલ નાથાલાલ વરસડા, ભાદરવા (મધ્ય ગુજરાત)

નવયુગની હાલ આજે મનુષ્ય માત્રને-  
પછી તે રહે હોવા સાગ્ર, બાળક હોવા  
વૃદ્ધ, કુશીનશાહીનો માધાતા હોવા સમાજ-  
વાદનો હિમાયતી હોવા, પરંતુ માનવ-જાત નરક  
જેને જેને આ યુગમાં જીવતું છે, તેને સાંભળ્યે  
જ છૂટકો છે. કેમકે આજનું વર્તમાન એ  
આવતી કાલનું ભાવિ બનશે. આજે આકાશ-  
વાણીના યુગમાં બહેરો માણસ પણ ગમે ત્યાં  
બેસી આ સંદેશ સાંભળી શકશે, અને જન્મ-બાંધ  
નથી દૃષ્ટિએ જોઈ શકશે. આજે તો આપણા  
વડીલોની જૂની દુનિયા અદૃશ્ય થઈ છે, અને  
આપણે વિજ્ઞાનની નવી દુનિયામાં મૂકાઈ ગયા  
છીએ. શ્રદ્ધા આંધળી બની છે, અને બુદ્ધિને  
નવી દૃષ્ટિ સાંપડી છે. આજની હવા અને  
જૂનું માનસ બન્ને વિરોધી તત્ત્વો બન્યાં છે.  
ચોમ્પેર ક્રાંતિનો ખનિ સંભળાઈ રહ્યો છે.  
એવા બુદ્ધિવાદના જમાનામાં આપણે આજે  
જીવી રહ્યા છીએ.

એક બાળ, વૃદ્ધ સામાજિકવાદ જાણે કે  
તેનાં કુકર્મોની શિક્ષા ભોગવતો હોય તેમ રોગી  
બની. વિનાશક માર્ગે ગતિ કરી રહ્યો છે,  
ત્યારે બીજી બાજુ લોકશાસનવાદ વધુ યુવાન  
અને શક્તિશાળી બનતો જતો જોવામાં આવે  
છે. એવા પ્રચંડ ક્રાંતિના પ્રવાહ વચ્ચે રહીને  
માનવ-જીવનના ગંભીર પ્રશ્નો આજના માન-  
વીએ ઊઠેલા છે. અને એ પ્રશ્નો ઊઠેલી  
પોતાના જીવનમાં મૂકવાના છે. માનવ-જાતિ  
મુક્તિને માર્ગે પોતાની કૃષ્ટ કરી રહી છે, પણ  
તેના માર્ગમાં જે કેટલાંક અવરોધો છે, તે  
હમણે વર્ષની તેની વેદનાનાં સ્મરણ ચિહ્નો  
છે. એ રાક્ષસી અવરોધોને દૂર કરી આંતર-

રાષ્ટ્રીય-દૃષ્ટિએ આજના જીવન-મરણના ગંભીર  
પ્રશ્નોનો આપણે ઊકેલ આણવાનો છે.

આદ્યમરણના, જીવન-વિકાસના અને વિશ્વ-  
શાંતિના બહુમુદ્દ્ય પ્રશ્નો પ્રત્યે ઉદારીનતા  
રાખ્યે હવે માનવ-જાતિને પાત્રની શકે તેમ  
નથી. પશ્ચિમનું વિજ્ઞાન આજે માનવ-જીવનમાં  
તાણ-વાણની ખેંચે વણાઈ ગયું છે. જીવનની  
બધી ખરી જરૂરિયાતો ઉપર આજે તેણે  
પૂર્ણ કાબુ મેળવી લીધો છે, પરંતુ વિજ્ઞાન  
દ્વારા કુદરૂત ઉપર કુતેહ મેળવવા જતાં આજનો  
માનવી તેનો કેદી બન્યો છે એમ કહીએ તો  
જરાયે ખોટું નથી. અને તેથી આપણા  
જીવન-મરણના પ્રશ્નો આજે પહેલાંના કરતાં  
તદન નિરાળા બન્યા છે. એટલે કે ભૂતકાળમાં  
જીવતું જેટલું સહેલું હતું, તેટલું જ આજે તે  
મુશ્કેલ બન્યું છે. જીવનનાં ખર્ચ, સાધનો અને  
જરૂરિયાતો-નવીન ઊભાં થયાં છે. જીવનના  
માર્ગમાં સ્વપ્ને પણ ખ્યાલ ન હોય તેવી  
મુશ્કેલીઓ આજે ઊભી થઈ છે.

આજની દુનિયામાં સૌ કોઈ જોઈ શકે  
કે, વિજ્ઞાનીઓને મન પૂરવીનો ગોગો  
એક નાની વસ્તુ બની ગયો છે. એને ધારણ  
કરનાર કાચબો ને રોપનાય કાણ જાણે ક્યાં  
આજે છુપાઈ ગયા છે ! પછી આપણા  
કવિઓ તેમનું સ્થાન જાણતા હોય તો ભડે !  
આકાશ-ઉડ્ડયન પૃથ્વી-પર્યટન, સમુદ્ર-વિહાર  
એ તો હવે સર્વ સાધારણ વિષય જેવાં બની  
ગયાં છે. આજે તો મંજળ અને ચંદ્રની  
દુનિયામાં જવાની મદત્તવાકક્ષિ કેટલાક પંચા-  
નિકા સેવી રહ્યા છે. આજનો કાળ માધાનો

માનવી તો મૃત-સંજ્ઞવતી વિદ્યાના પણ પ્રયોગ કરવા માગે છે. આજે વગર તારના દરદરના દેશો વચ્ચેના સંદેશાઓ, ગાયન, નૃત્ય વગેરે સાંભળવું કેટલું સસ્તું બન્યું છે? પરંતુ જાતિ સર્વત્ર વર્જયેત્ ની પેઠે જગતને ઉપકારક એ વિદ્યાન તેને વિનાશને પથે પણ દોરી રહ્યું છે. અને એના ફળરૂપે અનેરૂં જાતની લાગણ્યક સામાયિક સામગ્રી, મનુષ્ય સંહારનાં ઝેરી ગેસ જેવાં સાધનો દુનિયાનાં તમામ પ્રાણી રાષ્ટ્રો તરફથી હમજામ થઈ ચૂક્યાં છે. આજે જોવામાં આવે છે અને તેનું પરિણામ વિશ્વ-યુદ્ધમાં આવે તો નવાઈ નહિ. આજે દુનિયાનાં મોટાં મોટાં રાષ્ટ્રો અરસપરસ મિત્રતાના કરાર કરે છે, પરંતુ તેથી એમ માની લેવાનું નથી કે, યુદ્ધ આવવાનું નથી. એવા કરાર કરવા છતાં એ રાષ્ટ્રો અંદરખાતેથી લગાઈને પથેજ દોરાઈ રહ્યાં છે. એમની વચ્ચે પરસ્પર સાચો વિશ્વાસ અને મિત્રતાની લગ્ન લાગણી હોય તેમ જણાવું નથી. આ અંકના ષિંદી વિભાગમાં મુખ્ય તંત્રી મહોદયે માવો મહાયુદ્ધ નામક લેખમાં ફ્રાંસ અને જર્મનીની લગ્નકર કિંગ્ડમ્સનીનું જે વર્ણન કર્યું છે, તે ઉપરથી એવું જણવાન રાષ્ટ્રો યુદ્ધસામગ્રી ધરાવવાને બદલે નહીં નહીં યોગનાઓ અમલમાં મૂકી દિન પ્રતિદિન વધારતાં જાય છે એમ આપણે જોઈ શકીએ છીએ. તેમના મિત્રતાના કરારની પાછળ પવિત્રતાની લાવના મિત્રકુલ નથી. પરંતુ તેમાં એ સ્વાર્થી સામ્રાજ્યોની રાજ-રમત અને ભેદનીતિનો ઢાંકપીછોડો છે. એટલે મિત્રરાષ્ટ્રો ક્યાં અને દુશ્મન રાષ્ટ્રો ક્યાં તે કહેવું આજે મુશ્કેલ બન્યું છે. દુનિયાનાં ધણાં રાષ્ટ્રો પોતાના બહેનો મોટા લાભ યુદ્ધ-સામગ્રીમાં શેઠીને બદલે લેનો લાખને પણ ખીજાથી પાછળ ન રહી જવાય તેટલા માટે પોતાની શક્તિ વધારવા આગળ આગળ દોડતાં

અને તેની ચિંતામાં ઘેરાયેલાં જોવામાં આવે છે. પરંતુ આ બધી દોડધામ થાય છે શા માટે એ પ્રશ્ન મહત્વનો પ્રશ્નસો માગે છે.

આજે ખાસ કરીને પશ્ચિમની પ્રગમ વ્યાપારી દૃષ્ટિએ ધર્પાનો દાવાનળ સળગાવી દીધો છે; અને વિદ્યાનની શોધોએ તેમાં ઘી હોયું છે. પોતાના પુરુષાર્થમાંજ માનનારી એ પ્રજા આજે એ રીતે અવજ માર્ગે દોરાઈ રહી છે. જરૂર અને જમીનની ભૂખી એ પ્રજાને કાચા માત્રની ખરીદી માટે કાયમનાં બજાર જોઈએ છે. આ સ્વાર્થી નીતિ સિદ્ધ કરવા માટે પોતાની રાજ્યસત્તા વધુ બળવાન બનાવવાની તેમને ખાસ જરૂર લાગે છે. અને તેને માટે ગમે તે ભોગે પોતાનાં પાડોશી નિર્બળ રાષ્ટ્રોને દબાવીને અથવા ગળી જઈને ફિસિયમ કે ડિકેટરશાહીને નામે પોતાની શક્તિઓનું મજબૂત સંગઠન કરી ખીજા સ્વતંત્ર અને સમૃદ્ધ દેશોને પણ ગુલામ બનાવી જાવવાન રાજ્યસત્તા દારા ચૂસણીનીતિ ચાલુ રાખવાના નીચ પ્રયત્નોની તેમની વચ્ચે તીવ્ર દરિદ્રાઈ જાગી છે. ૧૯૧૪ના વિશ્વયુદ્ધ પછી આજ સુધીમાં આપણે આવી આંતરરાષ્ટ્રીય અને આંતરદેશીય જાતો વચ્ચે ધણું ધણું સાંભળ્યું છે અને હાલ જે નવા નવા બનાવો બને છે, તે રાજકીય દૃષ્ટિએ સમસ્ત દુનિયાનું ખ્યાન ખેંચી રહ્યા છે.

એટલે કે, એક દેશમાં ઉચ્ચપાયે થાય તો તેની અસર દરેક દેશ પર થાય, તેવા સંજોગોમાં આજની દુનિયા મૂકાઈ ગઈ છે. કારણ કે વંચવાને લીધે પ્રત્યેક દેશ એકબીજાની મિલકતુલ નજીક આવી ગયો છે. વિદ્યાનની છેલ્લામાં છેલ્લી શોધોએ દુનિયાને લપભીત બનાવી મૂકી છે. માનવ વિનાશનાં ચક્રો ગતિ-માન બન્યાં છે—માનવ સંહારનું મહાભારત

તેનો આપણે દીર્ઘદષ્ટિ રાખી વિચાર કરવો જોઈએ. આપણે ઘણું ઊંઘ્યા, હવે તો એ નિદ્રાને ખંખેરવી પડશે. દુનિયામાં સૌના જગ્યા પછી પણ સ્વમાનપૂર્વક મનુષ્ય જીવન જીવવાની આપણને ઇચ્છા હોય તો જેમ અને તેમ જાદી જાગવું આપણા માટે સજામતીભયું છે.

આપણા આપદાદાઓ આમ હતા ને તેમ હતા, તેના રાગડા આજની દુનિયા સાંભળવાની નથી. એ તો આપણી અસારની નીતિ-રીતિ જોઈ આપણું સ્થાન નહીં કરશે. આપણા દેવત્વના દાવાથી આજની દુનિયા અંતરવાની નથી. તેની સાથે આજની દુનિયા જે સંજોગોમાં મૂકાઈ છે, તેનાથી આપણે પર નથી એ નિર્વિવાદ સત્ય પણ આપણે કૃષ્ણ કરવું પડશે. આજના પ્રશ્નો આપણે કામ ઉપર છોડીશું તો જીવનના શેષમાં દેવાળિયા બનવાનો આપણા માટે વિષમ પ્રસંગ ઊભો થશે એ નિર્વિવાદ છે. અને તેમ બનતાં આપણી ભાવિ પ્રજા આપણને દોષિત ઠરાવશે. એટલે કે આપણે પિતા તરીકેનું કાલુ અદા કરીને નહિ પણ વધારીને બદ્ધે આપણી માતૃભૂમિને બાર ૩૫ જીવન જીવીને માનવજાતિ તરીકેની ફરજ અદા કર્યા સિવાય આપણી પ્રજા માટે કશકિત વારસો મૂકી ચાલ્યા ગયેલા મણાઇયાં. અને ભાવિના ઇતિહાસમાં આપણું સ્થાન ભારતના સાચા સંતાન તરીકે નહિ, પણ પેટપાણુ પામશે તરીકે હશે એ ચોક્કસ છે. ભુઓને, છેલ્લી બે સદીમાંજ આપણી કામે બિચુક-જીતિને મહત્ત્વ આપવાથી આપણો હજારો વર્ષનો જગજગતો ઇતિહાસ ફેટલો ઝાંખો બન્યો છે !

હિંદુ પ્રજાના એક ઐશ્વર્ય અંગ તરીકે, ચારણ જાતિ તરીકે, નવયુગનું જીવન જીવવા માટે આપણે આપણા આજના કર્તવ્યનો

વિચાર કરવાનો છે. બાબા આદમના જમાનાની વાતો કરતાં બેનમાં પડ્યા રહે હવે આપણને પાડવે તેમ નથી. આપણે જે વ્યક્તિગત રાજસત્તાને આપણું આશ્રય સ્થાન માની રહ્યા છીએ, તેની આજે શી હાલત છે તે આપણે સમજ લેવી જોઈએ. અને એ નામના ક્ષત્રિય રાજ્યકુટોને દોષિતમાન બનાવનાર રત્નો તરીકે આપણું તેમાં શું સ્થાન છે; અથવા સીધા અર્થમાં કહીએ તો એ નરેશોને આપણા ઉપર ફેટલું હેત છે, તેનો વ્યક્તિગત કિતની દૃષ્ટિએ નહિ, પણ સમષ્ટિ કિતની દૃષ્ટિએ આપણે વિચાર કરવાનો છે. પાંચ-પચીસ વ્યક્તિઓને કવિ તરીકે તેમની પાસે રાખે તેનાથી આપણે કૃતાઈ જવાનું નથી, પરંતુ રાજ્ય અને પ્રજાના હૃદયમાં એ કવિઓનું આજે શું સ્થાન છે, તેનો આપણે ઊંડા વિચાર કરવાનો છે. આજે તો જેના પૂર્વજોને ગયેલું રાજ્ય પાછું મેળવી આપવામાં ચારણ જાતિએ મહત્ત્વના ભાગ લીધો છે, તે જેવાડના નિઃકલ્કેડી રાણાએજ ઊડીને સત્ત્વરે કે પછી ન હોવાનું કારણ આપણી મેવાડી ચારણોની જાગીરા ઉપર કાળી નજર કરવા માંડી છે. એ સ્થિતિમાં બીજા ક્ષત્રિય નરેશોની તો વાતજ શી કરવી? અને તેમ છતાં જે જાણે કે ધરના કે ધોરના ન હોઈએ તેમ એ નિરંકુશ નરેશોની સત્તાના પીઠ ચાળનારા મણાઇ અન્ય જાતિઓનાં બદ્ધે સરદાર વસ્ત્રભાષ પટેલ જેવા સમદર્શી લોકનેતાઓનાં આપણે વારંવાર મહેલમાં સાંભળવાં પડે છે, એ શું આપણા માટે ઝોઝા દુઃખનો વિષય છે !

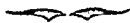
સારાંશ કે, આજનો યુગ સંગઠિત બની આંતરજાતીય સંબંધ સુધારવાનો છે-યુગનાં વહેણ ઝોળખી નવજીવન પ્રાપ્ત કરવાનો છે.



કૃપમંદુકની સંકુચિત દષ્ટિ રાખે આજે  
પાત્રે તેમ નથી. માર, સોરઠિયકે એવાળીએ  
હું બેઠો તોડી અમિત બનીને અનિતા વિષમ  
પ્રથો આજે આપણે ઊંચિતવાના છે, બદ્ધે  
બુદ્ધાગના સામાન્ય અને વનિદોદના પાપો  
પ્રાપ્તિ કરી જયતા બાવિ હવે સંપ્રામમાં  
આપણે દરેકે ઊંચિતવાનું છે-સંકુચિત બાવના-  
એથી પર બની મનુષ્ય કેવલવાનું છે-બુદ્ધા-  
મન્યોર યુક્તી-માનસ ઠોડી બાદ્ય-સ્વાત-  
ગના આપણે મૂલ્ય મૂકવાનાં છે.

નામરૂપનો મોદ ઠોડી જાતિ, અને દેશને  
માટે પોતાના સર્વેરની આદુતિ આપનારા  
દેશમાન દમર કેસરીસિંદણ મોસા જેવાળીએ  
પુરો આપણમાં સમાજની વેદાઉપર આમજ  
આવશે, ત્યારે એવા જાતિસ પ્રાણી પુરોગા

તપ અને આત્મગોમયી પ્રસન્ન મયેષ હમર  
આપણી બાવિ પેદીને સાચા આરોપાંદ આપશે.  
અને ત્યારે આપણું હવે આપણને બારકપ  
ન જાણનાં હમરની જાતિસ સમું જાણશે-  
ત્યારે આપણે વિચારનાં દર્શન કરતા હવે  
મુક્ત બનીશું-અદકારને તથા અભેદને માર્ગે  
વિચરી સત્યનો સાદાદાર કરીશું-કમગોચરને  
માર્ગે આપણે જાને દોરીશું અને 'સાચાશિવ'ને  
પ્રસન્ન કરીશું-પ્રભુતા પ્યારા પુષ્પો બની  
સ્વતંત્ર બાદનનું સ્વપ્ન સિદ્ધ કરીશું. અને  
ત્યારે સ્વતંત્રતાના, અંત્યતાના મનોહરમાં  
મુક્ત ચલિમાતાના સાચા પુષ્પો મળ્યા  
સિદ્ધ ચારણના વારસ હોવાનો દાવો આપણે  
કરીશું. એ શુભ દિવસ નહીં આપણે જોઈ  
શકીએ 'એવો પરમાત્મા પ્રભુ કો પ્રાર્થના  
ન કરીએ ?



## ભારતીય સંસ્કૃતિ : પુરુષાર્થ

મુનેરિયન, એસિરિયન, હર્મિયિયન આદિ જૂની સંસ્કૃતિઓ સ્મરિતેય થયા છતાં  
ભારતીય સંસ્કૃતિ દષ્ટિ રહી છે. પરંતુ આપણી સંસ્કૃતિએ આખ્યાત્મિકતા અને અનુસંધાન  
જોઈ છે. આવાં વર્ણો બાર મુક્યા. જેને પશ્ચિમે સમાજ નિર્મિતમાર્ગે મદજ કર્યાં, અને  
જના વચ્ચે. આજનાં જાત અને સંજમ એ અધિકારીનો આદ્ય છે. ત્યારે  
મુરુષ નો મુરિપુત્ર સત્ત્વ પુરુષાર્થમાં જ છે.  
તોડમાં જુવાન ૧૯૩૬ માં મયેષ પંચાંગકે સ્વર્ગમાં ગી મેકવાનંદ અને મી મુર્દીગામ  
(મોરારી)



## બૃહદ ગુજરાતના જ્ઞાતિ-સમાચાર

તા. ૧૧-૧૧-૩૮ ના રોજ શ્રી કૃષ્ણ-કુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય (લાવનગર) માં શ્રી ચા. હિ. સલાની કાર્યવાદક સમિતિ તથા શ્રી વિદ્યાલય વ્યવસ્થાપક સમિતિની બેઠક ગળી હતી.

ચારણ હિતવર્ધક સલાનીકાર્યવાદક સમિતિની બેઠકમાં હાજરી આપનારાઓનાં નામો—

૧. શ્રી કારણભાઈ મહેડુ, પ્રમુખ, ૨ શ્રી દલાભાઈ કાગ, ઉપપ્રમુખ, ૩ શ્રી રામદાનજી ટાપરિયા, ઉપપ્રમુખ, ૪ શ્રી હરદાનભાઈ નરેલા, ૫ શ્રી નારણભાઈ રોહિયા, ૬ શ્રી પિંગણશીભાઈ પાયક.

વિદ્યાલય-વ્યવસ્થાપક સમિતિની બેઠકમાં હાજરી આપનારાઓનાં નામો—

૧ શ્રી કારણભાઈ મહેડુ, પ્રમુખ, ૨ શ્રી દલાભાઈ કાગ, ૩ શ્રી રામદાનજી ટાપરિયા, ૪ શ્રી હરદાનભાઈ નરેલા, ૫ શ્રી હવાભાઈ શામળ, ૬ શ્રી રેવાભાઈ ચારહટ, ૭ શ્રી પિંગણશીભાઈ પાયક.

કા. સં. ની બેઠકમાં પસાર થયેલા ફરિયાદો—

આ સમિતિ દરાવે છે કે શ્રી ચા. હિ. સલાની આગામી પચમ અધિવેશન ગુજરાતમાં યોગ્ય સ્થળે વેશાળ અથવા જેઠે માસમાં કરવું.

૨ શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય માટે રજવાડાંઓમાં ફેડે બિધરાવવા માટે જનાર પ્રતિનિધિમંડળના સભ્યોની પૂર્વ અનુમતિ સાથે તે કાર્યની શરૂઆત અર્થે પોપ સુંદર ની તિથિએ પ્રતિનિધિમંડળે જવું, એમ આ સમિતિ નક્કી કરે છે.

૩ આ સમિતિ સમૈદ નોંધ લે છે કે વારંવાર કહેવામાં આવ્યા છતાં લાવનગરનાં

રાજકવિ શ્રી હરદાનભાઈ પિંગણશીભાઈ નરેલાનાં પોતાની પાસે થણાં વર્ગેથી થાપણ તરિકે રહેલા વિદ્યાલય ફંડના રૂ. ૮૫૫ (અગભગ) હજુ મુખી આપ્યા નથી. ફરીથી આ બેઠકે પ્રસંગે કહેવામાં આવતાં શ્રી હરદાનભાઈની સંદરહુ રૂપિયા ચાલુ વર્ષના પોપ સુંદર મુખી માં આપી દેવાની ખાત્રીવાળી ખાસ વિનંતિ ઉપર ખ્યાન આપીને તે મુદત મુખીમાં સંદરહુ રૂપિયા આપી દેવાની આ સમિતિ શ્રી હરદાનભાઈને લગામણુ કરે છે, અંતે આશા રાખે છે કે શ્રી હરદાનભાઈ આ વખતે પોતાના વચનનું જરૂર પાલન કરશે.

૪ થાડાક બિનજવાબદાર માણસોએ સંસ્થાને નામે (સંસ્થાની પરવાનગી લીધા વિના) નાણાં બિધરાવેલ છે, એવી જાણ થતાં આ સમિતિ દરાવે છે કે આ બાબતમાં એક ચેતવણી પ્રસિદ્ધ કરી જનતાને માર્ગદર્શન કરાવવા માટે મંત્રાંએ યોગ્ય કરવું.

૫ આ સમિતિ દરાવે છે કે, મોલા (બાબદા)ના રહીય શ્રી રંદાવનભાઈ જટાવંદર શાસ્ત્રીએ લખેલ 'સાંઈ નેહડી'ની વાત સંસ્થાને ખર્ચે છપાવી પ્રસિદ્ધ કરવી.

૬ આ સમિતિને એક સૂચન દ્વારા જાણવામાં આવ્યું છે કે હાલમાં શ્રી ચા. હિ. સલાની ચારણ સંમ્મેલનના મુખપત્ર તરીકે જે 'ચારણ' નિર્માણિત પત્ર પ્રસિદ્ધિ યાવ છે, તે પત્રના ગુજરાતી વિભાગની છપાઈ, પ્રસિદ્ધિ તથા અન્ય વ્યવસ્થાને અંગે જે કંઈપણ ખોટ શ્રી ચા. હિ. સલાની ચારણ-સંમ્મેલન ને આવે તો શ્રી ચા. હિ. સલાનીએ તે ખોટની ભરપાઈ અર્થે ફેડે જવાબદારી પોતાના ઉપર લેવી.

આ બાબતમાં સંપૂર્ણ વિચારણા કરી પછી આ સમિતિ એમ માને છે કે અત્યારનાં

સંજોગમાં શ્રી ચાં હિં સત્તા આવી જાતની જવાબદારી પોતાને શિર લેવાને અશક્ત છે.

૭. 'શ્રી હાલાર માર ચારણ મંડળ' ના રિપોર્ટના પૂંદાની અંદર તથા કવિરાજ શ્રી માવદાનજી બીમજીભાઈ રતનુએ રચેલા પુસ્તક 'શ્રી ચક્રવર્તી પ્રકાશ' માં ચારણોના પાંચ બોદા વિષે જે હકીકત પ્રસિદ્ધ થઈ છે તેમાં રીતરિવાજ, પહેરવેશ વગેરેનું જે લખાણ છે તેનાથી ઘણાં અંશુઓની લાગણી દુઃખાઈ છે એમ જાણવામાં આવતાં આ સમિતિ 'શ્રી હાલાર માર ચારણ મંડળ'ના પ્રેમુખ, મંત્રી તેમજ અન્ય કાર્યકરો તથા કવિરાજશ્રી માવદાનજી બીમજીભાઈ રતનુ (કાળોવડ) ને ખાત્રી વિનંતિ કરે છે કે ચારણ જાતના અંકુષ તથા ઉન્નતિને લક્ષમાં રાખીને આવી લાગણી દૂલવનારી વસ્તુઓ પ્રસિદ્ધ ન કરવાની કાળજી રાખવાની કૃપા કરેલી.

શ્રી વિં ૯૫૦ સમિતિની જેલકમાં પસાર થયેલ હશે—

૧. શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણ-વિદ્યાલયના ગૃહપતિ તરફથી વિદ્યાલયના મકાનમાં વધારા કરવાની યજ્ઞેષ માગણીને આ સમિતિ યોગ્ય માને છે અને હરાવે છે કે પ્રતિનિધિમંડળ રજવાડાંઓમાં જઈ આવી મદદ મેળવી આવે ત્યાં સુધી આ કાર્ય મુગ્ધતી રાખવું. પરંતુ કોઈ સંજોગવશાત્ પ્રતિનિધિમંડળ ન જઈ શકે તો આવતા વર્ષે (સં ૧૯૯૫ ના ચેન મુદ ૧ પછી) શ્રી પ્રમુખ સાહેબની પરવાનગી લઈને યોગ્ય મકાન વધારા કરવે.

૨. વિદ્યાલયના ગૃહપતિ તરફથી વિદ્યાલયની ઘણી આજ્ઞાની પસાર દરબારી જમીન ખરીદ કરી લેવાની ચૂચના મળતાં સદરજી બીન ખરીદવાનું આ સમિતિ યોગ્ય માને છે

તથા હરાવે છે કે ગૃહપતિએ આ બાબતમાં યોગ્ય પગલાં લેવાં.

૩. હાડકાના વિદ્યાર્થી વાલાભાઈ સાગકાની રૂબરૂ અરજ ઉપરથી આ સમિતિ હરાવે છે કે વિદ્યાર્થી મજકુરે નિયમ મુજબ વિદ્યાલયમાં દાખલ થવાની શરતો પૂરી પાડી નથી, છતાં પણ તેના સ્થિતિ-સંજોગોને ધ્યાનમાં લઈ તેને વિદ્યાલયમાં પ્રવેશ આપીને વિદ્યાર્થી તરિકે સગવડ આપવી.

૪. રામપરાના વિદ્યાર્થી રામદાન દેવીદાન લાંગાની રૂબરૂ અરજ ઉપરથી તેના સ્થિતિ-સંજોગોને ધ્યાનમાં લઈ તેને વિદ્યાલયમાં સગવડ આપવાનું આ સમિતિ હરાવે છે.

શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલયમાં પોષ મુદ ૬ ના રાજ તેના વાર્ષિક મહોત્સવ જઈવાયો.

શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય માટે ફંડ બિયરાવવા જેનાર પ્રતિનિધિમંડળે હવે સુધી કંઈ કંઈ નથી, એ ઘણી દુઃખની વાત છે. કવિરાજ શ્રી રામદાનજી તૈયાર છે, પણ જીન સમયોની અગવડતાને અંગે વિવ્રમ થઈ રહ્યો છે.

શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય માટે ફંડ બિયરાવવા તથા શ્રી ચાં હિં સત્તાના પ્રચાર અર્થે શ્રી જયમહેશ્વરજી શિવદાનજી પાવક પ્રથમ ગુજરાતના પંચમહાદાય, એક તથા અમદાવાદ ગિરજાઓમાં ફરી આવી હમણાં ધરાદરી, વડિઆર તથા ઉત્તર ગુજરાતને પ્રવાસે જઈ આવ્યા. સર્વે ચારણોએ તેઓને સારી સગવડ આપી હતી.

શ્રી મેરલા મેઘાણુંદભાઈ લીલાને તેમની આરણ્યસાહિત્ય અને લોકસાહિત્યની સેવા બદલ પોરબંદરના શાહ સોદાગર શ્રી નાનજીભાઈ કાળીદાસ મહેતા તરફથી એક સુવર્ણચંદ્રક ( સોનાનો ચાંદ ) અર્પણ કરવામાં આવ્યો. આ ચંદ્રક અર્પણ કરવાની ક્રિયા પોરબંદરના મહારાણા શ્રી નરવરસિંહજી સાહેબ બહાદુરનાં શુભ હસ્તે તા. ૮-૧-૩૯ ના રોજ પોરબંદર મુકામે થઈ હતી.

લોડી ( દોહિયાવાડ ) ના સાહિત્યપ્રેમી યુવાન હકીર સાહેબે પણ મેરલાને તેમની ઉપરોક્ત સેવાઓગત બદલ ૧૦૦ રૂપિયાનું વર્ષાસન પાંધી આપી હમણાં પોતાના રાજકવિ બનાવ્યા છે.

ગોંડાના યુવાન કવિશ્રી મોગી કૃત 'મે'લોના મે'લથી વાંચી' અને અમારી છું પડી' નામક લોકપ્રિય ગીતથી મેરલા લીલાએ 'પંચ છંદિયા રેકડાંમાં' ૩૦ એ. ૫૫૧૪ નંબરની રેકડાંમાં આરેક માસ પૂર્વે જિતરાંચું હતું એ રેકડાં બહાર પડી ચૂકી છે. હજારો દેખાતે હજારો મૂકનાર એ ગીતની રેકડાં ચુપી અને સંગીતપ્રેમી આરણ્ય બધુઓ પોતાને ત્યાં વસાવવાનું ચૂકે નહિ.

સામરડા (પાટણપુર રાજ્ય) નિવાસી શ્રીયુત્તમેતદાન પ્રતાપસિંહ કંજોડા કે જેઓ મેટ્રિક થઈને પાંચ છ વર્ષથી વડોદરા રાજ્યના પોલીસ ખાતામાં જોડાયેલા છે, તેઓ આજુ-સાલે વડોદરાની પોલીસ ટ્રેનિંગ સ્કૂલમાં ફર્સ્ટ ક્લાસમાં પાસ થયા છે.

અં. લા. ચા. સંમેલનના પંચમ અધિવેશન (રાજકોટ)ના સંક્ષિપ્ત હેવાલ સાંધેને ચા. હિં. સભાનો ચતુર્થ અધિવેશન (રાજકોટ) નો સુદર-દળદાર દિગોર્ડા પ્રસિદ્ધ થઈ ગયો છે. ચા. હિં. સભાનાં જે મેમ્બર બધુઓને તે ન મળ્યો હોય તેમજ તેના મંત્રીજીને લખીને મંગાવી લેવા તત્ત્વીજ કરવી.

### એક ઉત્તમ સામાજિક સુધારો

મોડવદર (કચ્છ)ના વતેની કવિશ્રી રવાજ મંજુજી રતુએ તેમનાં દાદીમા શ્રી ગંગાબાઈના સ્વર્ગપાસ થતાં કારણ કરવાના વિકૃત વિવાગને તિલાંજલી આપી (૪૨૫) દારી ધર્મદા આપી છે. તેમજે આવી જાહેર હિમત બતાવી સાતિમાં જે ઉત્તમ દાખલો બેસાર્યો છે, તે બદલ અમારાં હાર્દિક અભિનંદન. અન્ય યુવાન બધુઓ આનો દાખલો લેશે ?

## શોક-સમાચાર

૨૫૦ કવિશ્રી શાહુલજી ગાંગડા

ઉત્તર ગુજરાતમાં આઠાણુવાડા ગામના નિવાસી કવિશ્રી શાહુલજી રૂપશીલાઈ ગાંગડા વિગત પોપ સુદિ ૧૫ ને શુક્રવારને દિવસે ૬૨ વર્ષની ઉંમરે દેવલોક પામ્યા. સમસ્ત ઉત્તર ગુજરાત અને વડિયાર પંથકમાં એ પ્રાચીન શૈલીના અતિમ કવિ અને અર્જુન વાર્તાકાર હતા. જૂની કવિતાઓના તો તેઓ લઈડાર હતા. હજારો કવિતાઓ તેમને કંઠાઈ હતી. પાટણુવાડા પંથકમાં રાજપૂત અને અન્ય સમાજમાં જાહુમાન હોવા છતાં તેઓ એક નિરભિમાની અને સાદાંધેલી ભરપૂર ભક્ત આરણ્ય હતા. જૂના જમાનામાં બિછર્પા હતા, છતાં તેઓ સમયાનુકૂળ સુધારાને માનવા. તેમજે કન્યાવિકલ્ય સંબંધી એક કાવ્યગ્રંથ પણ લખ્યો છે. અમારા તો તેઓ ખાસ મુરખી હતા. તેઓ પાછળ બે નાની ઉંમરની દીકરીઓ ચૂકી ગયા છે.

તેમનાં પત્નીનો ગયે વર્ષે કરું છું રીતે દેહાંત થયેલો. એમના નિધનથી ચારણ ક્રોધને ભારે ખોટ પડી છે. પ્રભુ એમનાં આત્માને શાંતિ આપો.

૨૫૦ સર સયાજીરાવ ગાયકવાડ

વડોદરાના વિશ્વવિખ્યાત નરેશ સર સયાજીરાવ ૭૬ વર્ષની ઉંમરે સ્વર્ગસ્થ થયા. હિંદમાં ઘણાં દેશી રાજ્યો છે, પરંતુ શ્રીમંત સયાજીરાવે પ્રજાની સર્વાંગીણ ઉન્નતિ માટે જેટલું કર્યું છે, તેટલું તેમાંના કોઈપણ નરેશ કર્યું નથી. જો કે વડોદરા રાજ્યમાં વસંતો ચારણોની જાગીરા-ગિરાસ વગેરે આ મહાન નરપતિના શિક્ષાચુર ઇલિયટના પ્રતાપે નામશેષ થતાં તેમનો યુગરાતના હેલા એક હજાર વર્ષના ઇતિહાસમાં સુવર્ણકાળ રૂપે ગણાયેલો. ૬૪ વર્ષના સુદીર્ઘ રાજ્યકાળ ચારણો માટે તો દુઃખદ જ નીવડ્યો છે. છતાં જે શ્રીમંતે પંજાત ક્રોધોને કળવણી આપવા માટે ઉદાર સવલતો આપી હતી, અને તેમાં ચારણજાતિનો પણ સમાવેશ થતો હોવાથી તે દારૂ બે એક બંધુઓ જિંદગી કળવણી મેળવી શક્યા છે, અને પ્રીતએ માટે તેનાં દારૂ પુલ્લાં રાખ્યાં છે. એટલે તેટલા પૂરતી ચારણ જાતિ તેમની આસારી છે. પ્રભુ એ પ્રજાપાલક મહાન નરપતિના આત્માને શાંતિ આપો.

૨૫૦ ચારણકુળભૂપણ કવિરાજશ્રી પિંગળશીભાઈ નરેશ.

યુગરાત, ૨૨૭ અને કાશિમાંવાળા ચારણ-સમુદાયના બીજા પિતામહ, પૂજ્ય કવિરાજશ્રી પિંગળશીભાઈ નરેશનો ૮૨ વર્ષની જૂદ ઉંમરે વિગ્રહ ફગણ સુદિ ૧૨ ની રાતે સાડાગ્યાર વાગ્યે ભાવનગર મુકામે સ્વર્ગવાસ થયો.

પૂજ્ય પિંગળશીભાઈના નામ-કૃતિથી કાણુ અમળુ છે? એમનો પરિચય કરાવવો એ તેમને અપ્રસિદ્ધ કરાવવા જેવું છે. એમનું સ્થાન ચારણ જાતિમાં અજોડ હતું. એક કાળે એમનાં પ્રભુભક્તિનાં પદો પર ચારણસમાજ આધરીન હતો. એમણે એક રાજકવિ કરતાં ભક્તકવિ તરીકે છવન-છંદી જાણ્યું છે. તેઓ મધ્યયુગી સંતોના પથગામી હતા. ભાવનગરના પ્રતાપી ગોદિલ નરેશોએ તેમના એ સંતહૃદયને પ્રેરણાજનક પાઠ સદા પદ્યવિત રાખ્યું હતું. એમનો અડીખમ દેહ-આંધો જોઈ જોઈપુરનરેશ મહારાજ બાનસિંહજીની 'દેહ વગર દીસતા ડારણ, રાજાં રૂચિ સોમે કવરાજ' એ ગીત-પદ્ધિત યાદ આવતી. સમસ્ત ચારણ જાતિ એમને પૂજ્ય દષ્ટિથી જોતી. એમના જેવા એક મહાન વ્યક્તિના નિધનથી લૂટાએલી ચારણ જાતિ વધુ લૂટાઈ છે. એવા યશસ્વી ચિંતાના સ્મરણસથી તેમના સુપુત્ર શ્રીદેવદાસભાઈ અને શ્રીજીવદાસભાઈને જે દુઃખ થયું છે, તેમાં અમે ભાગ લઈએ છીએ. પ્રભુ એ મહાન આત્માને શાશ્વત શાંતિ આપો એજ પ્રાર્થના.

"चारण" वर्ष में चार बार विजयादशमी, वसंतपंचमी, अक्षयतृतीया और  
रक्षाबंधन पर प्रकाशित होगा।

वार्षिक मूल्य दो रुपये होगा और यह सर्वथा अग्रिम लिया जायगा।

चारण जातिकी सर्वांगीण उन्नति के साधक लेखादि के साथ समयानुकूल अ-  
भियोगों के लेखादि को भी "चारण" में स्थान होगा।

केवल वे ही लेखादि "चारण" में छप सकेंगे जो एकही तरफ शुद्ध एवं स्पष्ट  
लिखे हुए होंगे।

"चारण" में छपने के लिये हिंदी भाषा के लेखादि डा० ईश्वरदान आशिया,  
ग्राम-मैंगदिया, पो० नाथद्वारा (मेवाड़-राजपूताना) के एवं गुजराती भाषा के  
लेखादि श्री खेतसिंह नारायणजी मिश्रण (गडबदी), मु० मुढेरा, पो० घडापली  
(उत्तर गुजरात) के पते पर भेजने चाहिये।

"चारण" के ग्राहक कान्ते एवं रुपयेपैसे संबंधी लिखापट्टी श्री गिंगलशीभाई  
परबतजी पायक, श्री रुष्णकुमार-चारण-विद्यालय, भावनगर (काठियावाड़) के  
पते पर करनी चाहिये और वार्षिक मूल्य उन्हींके पास भेजना चाहिये।

पत्र-व्यवहार के समय ग्राहकों को अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखनी चाहिये  
और जवाब के लिये टिकट भेजना चाहिये।

प्राप्त लेखादि तुरी पापस किये जायेंगे जब इसके लिये डाकव्यय प्राप्त होगा।

बिना नाम के लेखादि नहीं छपे जायेंगे, परन्तु कोई अपना नाम न छपवाना  
चाहे तो ऐसा लिख दे।

(टाइटल पृष्ठ ४ का दोष)

और हो रहे हैं जो अपने पैसे के लिये, पैसेकी खातिर कागजों के दस्ते के दस्ते  
गिने हुए चल जायेंगे, परन्तु "चारण" में जातिहित के लिये कुछ लिखना उन्हें  
शायद दूर सर मान्य होता है। इस स्मृति के लोगोंसे यह तो आशा ही है  
की जाय कि वे पत्र के ग्राहक बढ़ाने या उसकी आर्थिक स्थिति सुधारने में  
अपने प्रभाव का उपयोग करेंगे।

जाति के विद्वानों की जब हालत यह है तो अन्य सजातीयों के लिये कुछ  
कहना ही व्यर्थ है। सम्मेलन की चाहिये कि पत्र-संचालन की व्यवस्था ठीक करने  
का शक्ति योजना कर, बरना भय है कि फिर कहीं पत्र बंद न हो जाय।

आशा है, पाठकगण उपरोक्त स्पष्टीकरण के बाद पत्र के अनियमित प्रकाशन  
के लिये प्रकाशक एवं सम्पादकों को क्षमा करेंगे।

## “चारण” का अनियमित प्रकाशन

“चारण” का प्रथम अंक भी समय पर नहीं निकल सका और दूसरा अंक तो तब निकला जब कि तीसरा अंक निकलना चाहिये था। ऐसी दशा में तीसरा अंक स्वतः देखे छपेगा और चौथा अंक जो “चारण” के प्रथम वर्ष का आखिरी अंक होगा वह भी नियत समय—रक्षाबंधन (धावणी) पर निकल ही जायगा इसमें सन्देह है। इस अनियमितता के लिये सम्पादक व प्रकाशक दोनों ही कुछ २ दोषी हैं। किसका दोष अधिक, यह यदि पूछा जाय तो कहना पड़ेगा कि मुख्य दोष उस परिस्थितिका है जिसके कारण उन्हें दोषी बनना पड़ता है।

पत्र का सम्पादक मेवाड़ में, सहकारी सम्पादक एक भाखाड़ में एवं एक गुजरात में और प्रकाशक हैं काठियावाड़ में। पत्र समय पर निकले भी तो कैसे? किन्तु और कोई उपाय भी न होने से इस अव्यावहारिक व्यवस्था का आपस में एक रूप में स्वीकार करना पड़ रहा है। इसके अलावा पत्र समय पर न निकलने का एक मुख्य कारण यह भी है कि सम्पादकों में से एक भी इस सम्पादन कार्य को अपने निजी कामों से पहिले करने की हालत में नहीं है। अतः यह कार्य गौण रूपसे होता है। भाखाड़ के सहकारी सम्पादक महोदय राज्य में नौकर हैं, सुना है ३०० लिट्रों की उपाय के लिये तयारी कर रहे हैं और अ० भा० चारण सम्मेलन के प्रधानमैत्रित्व का भार भी वहन कर रहे हैं। ऐसी दशा में ये सज्जन यदि पत्र के लिये एक संयत्ता ईश्वरभक्ति संबंधी अपना लिखा हुआ नियम और कुछ ऐसे ही छुप्य आदि भेज कर अपने दिस्ते के सम्पादन कार्य की इतिकर्तव्यता मान बैठें तो क्या ठीक नहीं है? सम्पादक स्वयं ऐसी स्थिति में है कि उस पर जो यह भार डाला गया है वह उसे कैसे निभ रहा है वही गंभीरत है, क्योंकि उसकी निजी परिस्थिति ऐसी ही है। अब रह गये गुजराती सम्पादक महोदय। वे स्वयं अभी तक बड़ौदा के वेनिंग कॉलेजके विद्यार्थी थे और जब सिर्फ पंद्रह-बीस दिन से अपने गौधमें शिक्षक की नौकरी पर नियुक्त हुए हैं। इतना होते हुए भी यही सबसे अधिक सम्पादन-कार्य में धम कर रहे हैं। प्रकाशक महोदय प्रायः बीमार रहते हैं।

इस हालतमें जाति के विद्वानों की फिर यह विलयस्थिति है कि डा० सा० केसरीसिंहजी (कोटा), श्री अक्षयसिंहजी (अलवर), श्री मोतीसिंहजी वारहठ, श्री आनंदानजी वारहठ और श्री उदयसिंहजी धियाडिया (जोधपुर), श्री किरानसिंहजी महड़ (बीकानेर), श्री जीणलालजी वरसड़ा (भादरवा), श्री भगवतीदासजी रोहडिया (शिरडी) एवं श्री नारणभाई रोहडिया के अतिरिक्त आज तक किसीने एक लाइन तक लिख कर इस कार्य में सहयोग नहीं दिया। ऐसे प्रतिभाशाली युवक विद्वान भी जाति में हैं जो विध्वंसिचालिय में सर्व प्रथम आये, परन्तु ये भी “चारण” में कुछ लिखने का कष्ट स्वीकार नहीं करते। कई बी० ५०, पम० ५० और पल० पल० बी० हैं—

(शेष आइल पृष्ठ ३ पर)

ॐ

श्री जगदीश्वरी विनयते

# चारणा

अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन

का

त्रैमासिक मुखपत्र

वर्ष १ ]

अक्षयतृतीया

[ अङ्क ३ ]

विगतसं सम्बत् १९९६

सम्पादक :

टाकुर ईश्वरदान आशिया

सहायरी सम्पादक :

भूपर शुभकण कविता, M. A. LL. B.,

गुजराती विभाग सम्पादक :

खेतसिंह नारायणजी मिश्रण

प्रकाशक :

शंकरदान जेटोभाई देया, लॉयडी

वार्षिक मूल्य (२) ]

[ एक अङ्क के III)



जा एवं राजपूत भी ऐसे हैं जो चारण जाति : परम्परागत ऐक्य एवं प्रेम-संबंध को अधुण्य मान्ये रखना चाहते हैं, पलड़ा किस तरफ़ का गरी होगा यह समय ही बतावेगा।

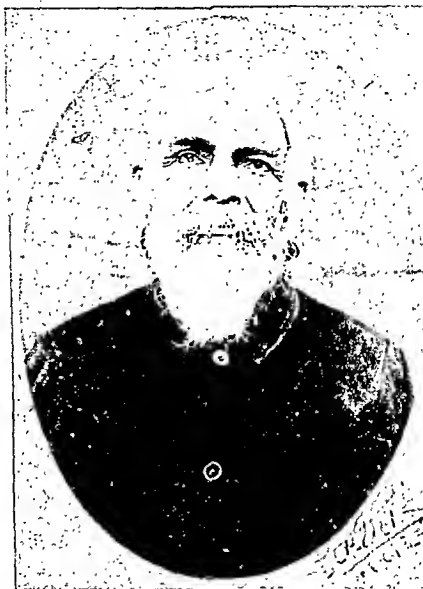
अब हम थोड़ा अपनी तरफ़ भी देखें कि हमारे प्रति ऐसी कुलित भावना की जिम्मेदारी हम पर भी है या नहीं। लेखक के मत में इसके लिये राजपूतों से अधिक नहीं तो कम भी चारण हैं। उन्होंने ही अयोग्य राजपूतों को भी पांच पंतों के स्वरूप से दान में कर्ण, भोज, वीरता में महावीर अर्जुन, सत्य एवं अण-याज्ञ में रामचन्द्र और हरिश्चन्द्र तक कह कर उन्हें आराधन पर चढ़ा दिया। और इस तरह अपने-आपको बहुत ही गिरा दिया। यह नियम है कि जो अपनी इज्जत ख़ुद नहीं समझता उसकी फौदे भी इज्जत नहीं किया करता। हमारी इस हीन मनोवृत्ति का दुष्परिणाम हमारे लियेता घातक हुआ ही है राजपूतों के लिये भी अच्छा नहीं हुआ, सिर।

अब तक हमने बहुत संश्लेष में अपनी वर्तमान दशा का विवेचन किया वह प्रत्यक्षतः जाति के पुरुषवर्ग ही से सम्बन्धित है। जाति के शेष आधे भाग के लिये यहां कुछ न कहा जायगा तो यह वर्णन अधूरा ही रहेगा।

सारे मानव-समाज में स्त्री की महत्ता के में मतैक्य है। हिन्दू भी "पितृ-सत्त-

शुभ माना" आदि कह कर इस महत्त्व को स्वीकार करते हैं। और हिन्दू जाति का अंगभूत चारण-समाज तो द्रव्य मानवशक्ति का विशेष रूप में आभासी है। चारण जाति की स्त्रियों में कुछ सौ वर्ष पूर्व ही वे देवियां हो गई हैं जो महाशक्ति के अवतार मानी जा कर राज से लेकर रंक तक बड़े भक्ति-भाव से आज भी पूजी जाती हैं और जिन के प्रताप से चारण आज भी 'देवीपुत्र' कहलाने का गौरव पाते हैं। परन्तु आज चारणों की मातायें इस पवित्र देवी शब्द को सार्थक नहीं करतीं! उनमें भी अन्य साधारण स्त्रियों के समान ही ईर्ष्याद्वेष एवं कलह-प्रियता देखने में आती है। शास-बहू, देवराणी मिश्रणी, नन्द-भाषज या एक से दूसरी कोई भां पर में हो उससे प्रेमपूर्वक रहना आज कल निरन्त्री ही स्त्रियों जानती है। सुस्ती, आलस्य प्रायः हर घर में छाया हुआ रहता है जिस के कारण न घर साफ़-सुथरा होता है और न घर की कोई चीज़। पुरुषों की ऊपर वर्णन को हुई अकर्मण्यता और अन्य कथित कारणों से गरीबी तो घर में घर किये हुए ही होती है और फिर पदों की अनावश्यक प्रथा प्रचलित होने से स्त्रियों को महीने २, दो २ महीने तक नहाना नबीब नहीं होता है और न कपड़े ही इतने होते हैं कि उन्हें बदला जाया करे। इसलिये गंदे कपड़े रात-दिन पहिने रहने से और पौष्टिक भोजन न मिलने आदि के कारण स्वास्थ्य भी उनका जैसा चाहिये, वैसा उत्तम नहीं रहता

राष्ट्र-धर्म पर सर्वस्व आहुति करनेवाले



देशभक्त कविवर ठाकुर श्री केसरीसिंहजी सा० सौदा,

प्रमुख—अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन

आयु ६६ वर्ष

फोटो ता० ७-१-३८ (सं० १९९२ वि०)

देहा

अज्ञात उपस्थित अपुन में, केसर-से नरनाह।

धीते दिन जाते बिहद, क्यों न उठाते लाह ॥

श्री केसरभाई घटी (कल्ल) के शिष्य से]

—श्री अक्षयसिंहजी रत्न (अलवर)

और फलतः न वह रूप-लावण्य हर जगह दिखाई देता है जो उत्तम स्वास्थ्य का प्रतीक है। जन्म मानवों का यह हालत है तो उनके बच्चे-बच्चियों का लावण्य-लावन्य किस तरह का होगा। इसकी कल्पना सहज ही में की जा सकती। प्रायः माता अपने वात्सल्य-भाव से पुत्र को और पत्नी अपने प्रेम एवं गृहकार्य-उत्पादितोः से पति को संतुष्ट रखने में असमर्थ है। कई जगह पुत्रों का माताओं के साथ और पत्नियों का पतियों के साथ का व्यवहार भी संतोषजनक नहीं होता। कई जगह विधवाएँ उनके मर्यादितों द्वारा नैसी-कपड़े तक के लिये कष्ट पाली हैं।

हमारी जाति की स्त्रियों की इस दयनीय दशा में एक बात अवश्य ऐसी है जो उनके लिये शौर्य की है और वह है उनके सदाचार को। इस संबंध में आज भी वे आदरणीय एवं अनुकरणीय हैं। माना कि यश-रत्न विधवाएँ भी मुनी जानी हैं परन्तु आज के दूषित वातावरण में ऐसी शिक्षाएँ अपवाद-स्वरूप ही सम्झी जाती हैं। आज यदि कल्पनों की समुचित शिक्षा को और भी ध्यान दिया जाय तो ऊपर दिखाये हुए दोष बहुत शीघ्र मिट जायें और वे मनुष्य श्रेष्ठ हो जाने लगे।

ऊपर के सब विवरण से यही निष्कर्ष निकलता है कि चारण जाति की सामाजिक अवस्था भूतकाल में चितनी ही उन्नत रही हो, वर्तमान काल में वह संतोषजनक नहीं और यदि समय रहते उस पर ध्यान दिया जा कर सुधार

के कुछ कारगर उपाय शीघ्र नहीं किये गये तो भविष्य भी अन्धकारमय ही समझना चाहिये।

समाज में अपने अधिकारों में इस अवस्था पर ध्यान दिया है और आवश्यक सुधारों के लिये प्रयत्न पास कर जाति को अपनी दशा उन्नत करने का मार्ग दिखा दिया है। अब आवश्यक है हर जगह ऐसे व्यक्तियों को जो सम्मेलन के प्रस्तावों को अमल में लाने का माहस दिगायें। यदि जाति के समस्त लोग लगे हैं, यह माहस आ जाय तो अब भी हमारी सामाजिक अवस्था का सुधार जाना असाध्य नहीं है। संतोषप्रद रूप में नहीं तो भी शिक्षा का कुछ प्रचार हो चला है। जोधपुर के चारण छात्रालय की स्थापना से मारवाड़ में इस दशा में अच्छी प्रगति है। उदयपुर व कोटा में भी छात्रालय स्थापित हो चुके हैं जयपुर व बीकानेर में एकत्रित धन से चारण विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियों की प्राप्ति है। अलग-अलग छात्रालय स्थापित हो जाने की संभावना है और अन्य स्थानों पर भी सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत रूप से शिक्षाप्रचार की तरफ प्रयत्न हो रहे हैं। ये शुभ लक्षण हैं। शिक्षित युवकों में और उनके सम्पर्क में आनेवाले में अपनी सन्तान को शिक्षित बनाने का अनुराग और हानिकार रुढ़ियों के प्रति मानसिक और नाचिक विरोध शुरू हो गया है। यह अनुराग एवं विरोध व्यक्तिगत उदाहरणों से सब जगह फैल सकता है जिस का परिणाम रुढ़ियों का नाश और शिक्षा का प्रचार अवश्यम्भावी है। जगदेवा, जाति के सम्मानकों में जातिहित की भावना से नम्र को शिक्षाने की और तदनुसार व्यवहार की स्मृति एवं साधन उत्पन्न करे।

## तब और अब

( प्रथमाह से आगे )

( ले० राजस्थान-केसरी देशभक्त ठा० सा० श्री केसरीसिंहजी बारहठ, कोटा )

### राजा का व्यक्तित्व

यों तो प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में वैशिष्ट्य रहता ही है फिर भी एकीकरण की सामान्य पद्धति से मानवस्वभाव और चरित्र में सामंजस्य निरूपण करना समाजशास्त्र का सिद्धान्त है। उस निरूपण में कर्म, अकर्म, धर्म, अधर्म, नीति, अनिति आदि का विवेचन ही मनुष्यत्व को निखर देने की कसौटी है।

किसी जीवनसंस्कारवद्ध भावुक व्यक्ति के राजा चाहे देवताओं का व ईश्वर का अंश क्यों न प्रतीत होता हो, परन्तु राजा भी है आखिर मनुष्य नानधारी प्राणी ही। काम, क्रोध, लोभादि पङ्क्तिवारों से लित साधारण से साधारण व्यक्ति में कोई भी राजा, केवल राजा होने से ही उत्तर नहीं उठता। अतः उसके व्यक्तित्व को भी मनुष्यत्व के नाते प्रारम्भिक दृष्टि से जांचना

होगा; और फिर, वह सत्ता का प्रतिनिधि होने के नाते विदेश कसौटी से कसे जाने का पात्र है।

असंस्कृत मानवस्वभाव में मनुष्यत्व और पशुत्व का संमिश्रण रहता है। सात्विक चरित्र के अनुप्रात में ही मानव मनुष्यत्व के निष्कट पहुँचा हुआ कहा जायगा और सामासिक चरित्र उसे पशुत्वमें ही व्यक्त करेगा। यही कारण है कि चरित्र के पैमाने से ही किसी भी समाज या राष्ट्र का उत्थान और पतन नापा जाता है। यह सत्य है कि सामान्य व्यक्ति की चेष्टा उतनी सामने नहीं आती जितनी राजाकी, क्योंकि हजारों-लाखों आँखें उसकी ओर निरन्तर घूरती रहती हैं। अतः वह सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा भी दया का पात्र हो जाता है। यह उसका सौभाग्य समझा जाय या दुभाग्य !

राजा का व्यक्तित्व कैसा होना चाहिये इस संबंध में तो आर्यजाति के धृति, स्मृति, महाभारत, रामायण, शुकनीति आदि धार्मिक और राजनैतिक ग्रन्थों में आदेश और आदर्श भरे पड़े हैं। उन्हीं आदर्शों पर अति मावधान होकर चलने के पुरस्कार में यह कहना अनुचित नहीं आ कि “नराणां न नराधिपः।” परन्तु अब ये हमारे लिये काल्पनिक चित्र हैं। हमारा लक्ष्य तो वर्तमान राजाओं के व्यक्तित्व पर ही प्रकाश डालना है।

जहाँ विधानबद्ध राज्य-व्यवस्था है, जैसे कि इंग्लैंड, वहाँ राजा का व्यक्तित्व देश के हानि-स्वार्थ, सुख-दुःख में महत्व नहीं रखता। परन्तु हमारे यहाँ राजराजा का सर्वोत्तम केन्द्र एक ही राजा नामक व्यक्ति पर आ जाने से देश के सुख-दुःख, शान्ति-अशान्ति का वही मूल हेतु हो जाता है। हमारे सामने इंग्लैंड के साठे तीन राजा चले गये और पट्टे ऊँच आ गये तथापि इस आने-जाने में न किसी का दना न बिगड़ा। परन्तु इधर किसी राज्यों में जानेवाले अच्छे-बुरे राजाओं की पुरानी जायमे (पत्रा) उल्टी रही और नया के साथ सर्वथा नई जायमे बिलती रही। कौन कह सकता है कि उदयपुर के महाराणा सरूप सिंहजी की दोस आर्थिक व्यवस्था, अंग्रेजों के महत्वे में आने पर मार्ग तक की गंगाजल से शुद्धि, महाराणाओं को भयपान न करने की पाषाणलेखबद्ध प्रतिज्ञा, महाराणा सजनसिंहजी

की देशकालानुसार बांधी हुई सुसंबद्ध राज्य-व्यवस्था, गौरवपूर्ण नातिपटुता एवं महाराणा पृतहसिंहजी का भारत के समस्त राजाओं और बड़े से बड़े ब्रिटिश अधिकारियों पर पड़नेवाला वह अनुपम प्रभाव, गवर्मेन्ट हिन्दू तक को कमल करनेवाला वह स्वाभिमान आज भी शीप है? यह मैंने केवल उदाहरणरूप से एक राज्य का नाम लेकर बताया है; बाकी इन समस्त राज्यों में इतना नाटकीय परिवर्तन हो गया कि जहाँ दिन था, वहाँ रात हो और रात थी वहाँ सुंदर दिन। कारण यही है, नये ने पुराने पर छाड़ दिया और नई लीला रचाई। इस अस्थिर व्यवस्था में किसी को वह सोचना नहीं कि प्रजा का जीवन कल किस प्रवाह में बहेगा। जिस राज्यव्यवस्था से भाग्य का कोई संबंध नहीं, वहाँ प्रजा के हृदयपट पर तो नहीं लिखा है कि “राजा करे तो न्याय, पासा पड़े तो दाव।” अर्थात् सब उस अलख भाग्य ही का खेल है। संक्षेप में हमारे राज्यों की दशा और साक्षों व्यक्तियों का भला-बुरा जीवन एक राजा के व्यक्तित्व पर ही निर्भर रहा है। ऐसी स्थिति में राजा के व्यक्तित्व को सामान्य उपेक्षा की बात मानी ही कैसे जा सकती है।

आगे चलकर हम अधिकांश राजाओं की सामान्य दिनचर्या एवं भावोक्त कुछ दिग्दर्शन करेंगे। उससे स्पष्ट है कि उससे अपवादरूप से राजा साधारण सज्जन व्यक्ति के अनुसार ही

हते हैं वे भी अक्रिय हो जाते हैं। निष्कर्ष  
ही कि कथित राजभक्ति की पुरानी लक्ष्मी  
र चलनेवाली बेचारी प्रजा जब राजा में सामान्य  
मनुष्य मितनी भी सीलता आज कल देखती है  
तो संतुष्ट हो जाती है। परन्तु आज सामान्य  
मनुष्य भी राजाओं में दुर्लभ हो रहा है वहाँ  
आर्ज-भार्या राजसूयों की तो चान ही क्या?

इस पतन के हेतुओं की उत्पत्ति इहंवा  
बुझ नहीं है—

(१) धीवनन्द, धनन्द और राजनन्द वे एक  
एक ही अन्तर्ध के मूल हैं। जहाँ वे तीनों  
झटके हो जायें वहाँ अन्तर्ध का तो डिकना ही  
क्या! इस तिसारे सत्र पर मनुष्य चले जाने-  
वाले मनुष्यीय कर्मों न हों! होंगे कभी, क्योंकि  
मुझे ऐसा कहने है कि ये। इतिहास के परि-  
शीलन में भी जाना जा सकता है कि, जब  
प्रतिपक्ष मनुष्य प्रजा के भावने उत्तरदायित्व  
और बाहरी आवरणों में राजा के प्रजा मुद्रों में  
रहते हैं। एक राजभक्ति में परिचित ऐक-  
मत्तात्मता पर और प्रजा की भक्त-जन में प्रत्यक्ष  
सामुदायिक बन्धन के कारण पर ही राजसिंहासन  
के पक्षे अवस्थित हो, वहीं राजा का व्यक्ति  
मनुष्यी, मनुष्य, उत्तर एवं प्रजासत्त्विकता भूतों  
में, दुष्ट होता राजभक्ति ही है। किन्तु अब  
जि मनुष्य ही दुष्ट है। अब राजा का भूत भूमि  
की ही नहीं रहता। जिसका मनुष्य बनी अन्तिम

धूती है, धूती रहे। राजसिंहासन के पक्षों  
का आधार ही दूसरे स्थान पर सिद्ध कुछ। जन-  
शक्ति, धन पर और धनशक्ति जूत के जोर  
पर आ टहरी। अतः आंतरिक नियंत्रण हट जाने  
से राजा के व्यक्तित्व का प्रजा के पक्ष में जन्म-  
राल और विचित्र हो जाना ही स्वाभाविक हो गया।

(२) किसी भी राष्ट्र या जाति के जीवन का  
आधार है उसकी भाषा और संस्कृति। भाषा-  
परिवर्तन से संस्कृति स्वयं विरुद्ध हो जाती है  
संस्कृति विगड़ने से प्राचीन व्यवस्थाबद्ध पद्धति  
के विध्वंसक होने में देर नहीं लगती। प्राचीन  
पद्धति के अभाव में अपने आपकी उसी पूर्णत्व  
में विघटन रहना हास्यास्पद हो जाता है। राजाओं  
के ह्रास की ओर परिवर्तन होनेका भी यही  
अनुक्रम है। वे अपनी संस्कृति और पद्धति में  
रहते हुए आज के जैसे पाठ के पुतले बन नहीं  
सकते थे। इसी में ऊपर की मूढनीति ने मनुष्य  
प्रथम इन्हीं अमेरी भाषा के चाले में बैठने  
के लिये ही इन राजाओं और इनके प्रधान  
अंग उमरावों, मरदानों, जामीनदारों के लिये मंगल  
कर्मों, देवी पूजित, राजपुत्र पूजित, एविगल  
पूजित आदि विरुद्ध शिक्षा के माध्यम मूढ़ किये  
और हिंस्रता के नाम पर राजाओं और मरदानों  
का दण्डका कर उनके राजपुत्रों आदि को  
इन माध्यमों में रखा गया। कर्मल संकट (अग्निपर्व,  
मैत्रेय कर्मल) के समय तक इन माध्यमों का कर्म  
ही करने लगे, आज फिर कहने के पीछे की पत्ती

हुए कहा कि " आप भी तो देखी ही है न ? " इस पर : महाराजा : खिसिया कर सुसज्जित दिये । लेखक की : आंखों ने उस सुसज्जित में : छिपाई जानेवाली खिसियाहट में : यही पढ़ा कि महाराजा अपने अंगरेजी में उठते हुए भाव का हिन्दी अनुवाद ठीक न कर सके : यह राजा अपने भाव पर नहीं, केवल भाषा पर थी । जहां सत्य के संपीकृत : में एक पक्ष में उपरोक्त महाराजा के लिये स्पष्ट संकेत है वहां यह भी स्पष्ट करता : उचित है कि ऊपर भाषा और संस्कृति के संबंध में जो कहा गया है उसमें वर्तमान उदयपुर-महाराजा भूपालसिंहजी, कोटा के ऐक-प्रिय महाराज अम्मेदसिंहजी, सीतामऊ के राजाराम-सिंहजी एवं उनके उदीयमान राजकुमार रघुवीर-सिंहजी : जैसे : कतिपय : न्यूनाधिक अपवाद-रूप भी हैं ।

(४) राजाओं के घरों में विलासिता की पहिले भी कमी नहीं थी । परन्तु नई शिक्षा और नये प्रयोगों ने संस्कृत की स्वाभाविक हकाबट को टुकट कर यह कहावत चरितार्थ कर दी कि " गिलेय और नीम चंदी " । चारित्र्यभ्रष्टता ने उच्चाखल होकर सर्वतोमुखी प्रवाह बहा दिया । यह सच है कि सब यकसां नहीं है । प्रशस्त-योग्य जीवनचर्यावाले राजा भी हैं ; परन्तु है आटे में नमक के बराबर । अधिकांश राजाओं के खानगी जीवन में जो रोमांचकारी रहस्यमय अंगरेजियों नमरूप में हैं, उनके संबंध में

दिग्दर्शन के लिये केवल इतना सा कह कर हम मौन ही रहेगे कि—

" धिक्कार है उन राजमहलों को,  
जहां विष भर रहा ।  
नारकी है दृश्य सब,  
शतान ताण्ड्य कर रहा ॥ "

राजा के व्यक्तित्व के नाते इस चारित्र्यदोष का प्रजा पर क्या भयंकर परिणाम होता है, यह अग्रगणी दुनिया से छिपा नहीं । इसे छोड़ कर राजनैतिक दृष्टि से देखने पर भी कहा जायगा कि : राजाओं की इस समय जो दुर्गति हो रही है, पूर्वजों के बाहुबल से उपार्जित अंगरेज जाति के जन्म से भी अति प्राचीन, दार्ष्टिकाली राजघोरासनों पर गढ़े हुए भी वे अग्रभवत कठपुतली के समान इसारों पर नचाये जा रहे हैं—इसके लिये अंगरेज उतने दोषी नहीं, यह दौर्बल्य इन राजाओं के वैयक्तिक दुर्बल ही का परिणाम है । इनके लोभ और काम चलाप के सबके सब कारनामे ऐतिहासिक विप-टमेंट में चुपचाप जमा होते रहेते हैं । वायदा जब अपनी नीति के लिये आवश्यक समझें हैं तब ऊपर से दो शब्द टपकते हैं कि " या तो चुपचाप गद्दी छोड़ दो, या हमारे नि-किये हुए अंगरेज के हाथ में समस्त राजस सौंप दो—हां, ऐसी दसा में तुम्हारे नाम का प्र-अवश्य किया जायगा, परन्तु खयाद रखो कि : भी दखल दिया तो सदा के लिये राजधानी

दूर रख दिये जाओगे—यदि उपरोक्त बातें स्वीकार न हों तो अपने पुत्रों की जांच के लिये कमीशन स्वीकार करो।” वस, इस सहसा वज्रपात पर राजा भौंचक्का रह जाता है, उसके ए० डी० सी० और कृपापात्र बगलें तक्कने लगते हैं। उस समय उसके दुश्चिन्त एक-एक करके सब सामने आ खड़े होते हैं। दुनिया में रहते हुए भी वह कयामत का दृश्य देखने लगता है। उस दिन वह अपनी असलियत पर आंख भोळता है, अतः यह कहने की हिम्मत रख ही नहीं सकता कि “आने दो तुम्हारे कमीशन को।” लाचार रोते हुए आत्मसमर्पण कर देता है उस दुःख के हाथ की कठपुतली बनना ही पड़ता है। सत्य है “आत्मैव रिपुरात्मनः।”

इन राजाओं की व्यक्तिगत जीवनचर्या समान न होते हुए भी कुछ बातें ऐसी हैं जो सामान्यतः न्यूनाधिक रूप में प्रायः सब राजाओं में मिल सकती हैं। किसी में एक नहीं तो दूसरी होगी ही। ऐसी बातों का संक्षेप में हिन्दुस्तान में हो सकता है—

राज में जागना, दिन के आठ-दस बजे दिल्ली से उठना, सब काम छोड़ कर बिहार के लिये भाग जाना, छोटे अर्थान्न जिनको वे अपनेसे कम बुद्धि के गमसे उन कृपापात्रों से या तुलने में फिर रहना, दिमाग लड़ने जैसे गूढ़ विषयों में शुरुआत पर आधीन राजदमचारियों पर उन्हें

छेड़ देना, प्रजा से दूर रहना, मनतरंगों पर जीवन के क्षण व्यर्थ विताना, राजकोष के बपौती मान कर मनचाहा खर्च करना या दिखावे के लिये हथखर्च (जसरत से बहुत ज्यादा) लेकर उससे प्रादवेद व्यापार-लेनदेन करना और उस रकम को राज्याधिकार से बटोरना, अंगरेज चाहे किसी। हैसियत का क्यों न हो उसे खुश रखने में ही अपने सुख की गैरटी समझना, कितना ही योग्य परन्तु देशी व्यक्ति या डिप्युटेशन मिलना चाहे तो छुसामदियों में निछले बैठे गये मारते या सास के पत्ते खेळते हुए भी उत्तर दे देना कि अभी फुरसत नहीं, घर ही के सरदारों या प्रतिष्ठित नागरिकों को सौभाग्यवश कभी मिलने का भौका दिया भी तो चलती मुलाक़ात देना—जैसे कि अँग्रेज़ अफ़सर साधारण हिन्दुस्तानी को देता है, देशी भाषा को त्याग्य समझ कर घर में भी अँग्रेज़ी ही का बोलवाला रखना, अँग्रेज़ी भाषा न जाननेवाले या देशी पोशाक में रहनेवाले को दूर से ही मूर्ख मान लेना, अपने किसी भी कर्म का समावेचना पर मुँह चढ़ लेना, कृपापात्र होने मात्र से ही अयोग्य व्यक्तियों को राज्याधिकार में स्थान दे देना, प्रत्येक मार्गजनिक कार्य में चौक कर उसे तोड़ टाटने में अपनी सावधानता समझना, स्वयं, स्वयंत्रता आदि मन्त्रों में भटक कर इन्हीं में सन्नद्ध होना, गद्दी-जैसे में गनय और कुछ समय तक उगार और फिर घोर कृपण हो जाना, और अगरंग, मय, हाहा-हीही,



ने इनको फौलारी और मनेवाँछित बनाया जिनमें कोई कच्ची कौड़ी-ढल जाने की शुद्धादश न रहे। जिस समय इस कैलेज-संबंध में श्री डॉडिन्सन, श्री जाडन और श्री हिल लाई कर्जन का प्रतिनिधित्व कर रहे थे उस समय कुछ मन-चले सरदारों ने जिनमें लेखक भी एक था, आवाज उठाई कि इन कैलेजों का पाठ्यक्रम हीन और घोर है अतः यहाँ भी भारतीय युनिवर्सिटियों का पाठ्यक्रम रहे, वही बी० ए०, एम० ए०, की डिग्रियाँ रहें; परन्तु दुत्कार दिये गये। डॉड कर्जन की सरकार ने इन गुड़िया साँवों का युनिवर्सिटी की शिक्षा से अछूत रखने में ही विदिशाभीति की सफलता देखी; क्योंकि युनिवर्सिटियों की शिक्षाप्रणाली सदाप हीते हुए भी उनमें से न्यायमूर्ति रानाडे, सर टी० माधवराव, लेक-मान्य तिलक, गोखले, लाजपत, महात्मा गांधी, सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू जैसे निकल सकते हैं। परन्तु यहाँ तो उद्देश्य है इन 'गाँठ' के पूरे और अङ्ग के अर्थों का प्रारंभ ही से विदेशी भाषा और संस्कार सस्कृति में ऐसे डाँक देना कि जिसके बंधन में न अपना स्वरूप दिखाई दे न संसार का ही ठीक देख सकें। नाम मात्र की शिक्षा के साथ खूब खेलकूद और विलायती विलासिता की मोहिनी के रंग में रंगे जाकर ऐसे विचित्र प्राणी बनाकर निकाले जाते हैं कि जो घर के न घाट के। लेखक ने अनेक राजाओं को कहते सुना है कि कोई बात अंग्रेजी में लिखी हो तो हम फौल समझ जाते

हैं। हिन्दी तो बाधियात है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भरतपुर के अधिवेशन में सम्मेलन के प्लेटफॉर्म से हजारों व्यक्तियों को सबेना कर जिनमें कविमन्नाडू श्री रवीन्द्रनाथ टागोर भी थे, भरतपुर के स्वर्गीय नरेश कृष्णसिंहजी : कहा था कि "मुझे कहते हुए दुःख होता है कि हिन्दी मेरी मातृभाषा नहीं है। मेरी मातृभाषा तो अंग्रेजी वन गई, क्योंकि मैं मेरी माता व गोरी में नहीं पला, पला हूँ इंग्लिश लेडियों व गोद में और उन्हीं की लकी सोहबत में। इस समय जो कुछ हिन्दी बोल रहा हूँ वह मैं आंतरिक अंग्रेजी भाषों का अनुवाद मात्र हूँ। मैं अपने भाषों का अंग्रेजी ही में ठीकर प्रण कर सकता हूँ, हिन्दी में नहीं। मुझे स्वप्न में अंग्रेजी में ही आते हैं। महाराजा कृष्णसिंहजी इस समय हमारे संसार में नहीं रहे परन्तु उनके प्रतिमूर्तियाँ अनेक राजमहलों पर आज धँस हुई हैं। ऐसी दशा में राष्ट्रभाषा एवं अन्य देश भाषाओं के मार्मिक कवि एवं दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्रों के वे धुरंकर लेखक जो देशोद्धार के साथ राजाओं की भी हितैषिणा रखते हैं, अपने सारगर्भित भाषों, विचारों और एलीलें के द्वारा देश की वास्तविक परिस्थिति पर राजाओं का ध्यान आकर्षित करने की धारणा रखते हैं, वे महान् भ्रम में हैं। राजा लोग अपनी भाषाओं को तो प्रायः छूते ही नहीं। अंग्रेजी पत्रों से भी व्यर्थ सरपन्ची करना पसंद नहीं करते। अलबत्ता इलस्ट्रेटेड, वीकली लंडन, स्पीयर, फ्रीलड, पिकचरल एंजुवेशन, पंच, मैट्र ऐसे

विलायती पत्रों के प्राहक रहते हैं जिनमें विलायती खी-सौंदर्य, खेल, शिकार एवं कुत्तों की जातियों की ही विशेषता रहती है। इन पत्रों में भी केवल चित्रों को ही उत्सुकता से देखते रहते हैं। कोई कोई कभी कालकोप के लिये प्रेमी-प्रेमिकाओं के अंग्रेजी उपन्यास भी उठा लेते हैं, यह दूसरी बात। घर में भी रात-दिन अंग्रेजी ही बोलना पसंद करते हैं, हो चाहे वह एक बुढ़र के जैसी हो या उससे भी गढ़े बीती। ये इस शिक्षा-साधने में डल कर न रहे हंस और न रहे क्रोध। ऐसी दशा में यह तो केन्द्र आदा ही कैसे करे कि ये पुरानी राजप्रथा के अनुसार ब्राह्ममुहूर्त में स्नान करके ईश्वर-उपासना में बैठें और शांतिपूर्ण दरबार भरे हुए गीता, महाभारत, रामायण आदि की कथाएँ सुने और ईश्वरतत्व या राजधर्म की विवेचना में सूर्योदय के सात्विक समय का लाभ लें। अब तो प्रातःकृत्य है “इंग्लिश मॉर्निंग” अर्थात् प्रहर दिन चढ़ने बाद बिस्तर छोड़ना और सबसे पहिले गिगारेट का धुआँ उड़ते हुए शेविंग बाक्य सामने रख कर मूँछें पेटना और चाय पीकर शिकरी बट्फ या पोले को मोलट उठाना। यह है भाग्य-परिवर्तन के माघ-परिवर्तन का भाग्य ही आय-संस्कृति का अन्त।

(३) उपरोक्त शिक्षा की रंगारंग पर चित्रचित्र लगा कर रंग पटा करने के लिये अत्यधिकता हुई विलायतयात्रा की और लगे उधर धकेले जाने। कुछ मोले लेगी के आदा हुई की कि हमारे

नरेश विलायतयात्रा से लेकतंत्री शासन का व्यापक और उदार अनुभव प्राप्त कर के अपनी प्रजा को उन्नत दशा की ओर ले जाने में योग्य सिद्ध होंगे; किन्तु इस यात्रा के चसके का परिणाम निष्फल विपरीत। ये बोये दिमाग ऐशआराम भोगविलास की अनुपम सामग्री के चाकचिक्य में पैन कर पूर्वसन्धित राज्यकोप के लाखों रुपये की मुकदहस्त आहुति डाल कर वहाँ से विलायती विलासिता के शिवाय लो ही क्या सकते थे? यदि कुछ सीखा तो यही कि संसार में यदि मनुष्य हैं तो इंग्लैंड में, परिस्नान हैं तो पैरिस में, जीवन-मुनार्थता है तो यूरोपनिवास में। और हाँ, इंडिया व इंडियन्स! नोन्सेंस, डैम। यही कारण है कि प्रायः इस समय के नवयुवक राजा गोधूमरूप की संतान पैदा कर चुकने पर भी भारतीय रंग और रहन-सहन से पूरी नफरत करने लगे, अपनी प्रजा से दूर से दूर होते गये। इतनी ही नहीं, अंगरेजों की सोसाइटी के बिना चैन मिलने में अपनी राजधानियों को भी विलायत का रूप देने के अनर्थ को न समझ सके। उदाहरण देर लिया जाय। राजस्थान में आज कल जहाँ की चर्चा खूब है, वहाँ के नर्तयान महाराजा विलायती शिक्षा पाकर प्रथम बार लौटे और अपने पड़ोसी राज्य में बेहमान हुए। नव वहाँ के महाराजकुमार से प्रयागगत चल करते हुए बोल उठे कि “देशी आदमी मूर्ख और बेईमान ही होते हैं” इस पर महाराज-कुमार ने प्रियवन्त को मीठी चुटकी लेते

मेटर, वायुयान, शिकार, व्यवहार की सुख-  
तरंगों में ही राजत्व की कृतकृत्यता मान लेना।

इन सब बातों के साथ जो एक बात इनके परिवर्तन और पतनकी मूलभूत सभ्रमें सनातनरूप से पाई जाती है वह है इनके स्वाभिमान का नाश। इस आत्मस्वरूप की विस्थिति के कारणों का उल्लेख हम ऊपर कर ही चुके हैं। यदि ये राजा अपनी आधीन प्रजा के साथ ऐंठने को ही स्वाभिमान मानते हों तो वे महान् भ्रम में हैं। उस मिथ्याभिमान में तब ही क्या है? वह तो गौरवत्रप्यता का प्रत्यक्ष चिह्न है और उसको कोई भी घेहपाई के नाम से अधिक पहिचान सकता है।

मेवाड़ के महाराणाओं को छोड़ कर राजस्थान के राजाओं में देशाभिमान, कुलभिमान एवं धर्माभिमान की इतिथी तो मुसलिमशाही के आगमन के साथ ही हो चुकी थी। महाराणा-वंश की यह वृत्ति भी मराठाशाही के समय से क्षिणिल हो चुकी। फिर भी हमने अपनी आयुष्य के प्रथमभाग में इन राजाओं में स्वाभिमान की जो शेष झलक देखी उसका भी आज कहीं पता नहीं। उदयपुर के महाराणा राजनसिंहजी, फ़तहसिंहजी, धूबी के महाराजराजा रामसिंहजी, एक छोटी-सी रियासत बांसवाड़ा के महाराजलक्ष्मणसिंहजी आदि स्वाभिमानी नरपतियों की यह तेजस्विता आज भी हमारे स्मृतिपटल पर

प्रकाश डाल रही है। उस झलक को हम तीन-चार तरह के उदाहरणों से स्पष्ट करेंगे जिससे पाठक तब और अब का मार्मिक स्वरूप सहज जान सकें।

(१) संवत् १९४० में उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंहजी मेहमान होकर जोधपुर गये वहां जोधपुर-महाराजा जसवन्तसिंहजी ने महाराणा से कहा, “कि मैं एक असह्य घटना से विचलित हो रहा हूँ और वह यह है कि मेरा ननिहाल और सगुराल नवानगर (जामनगर) में है वहां वे वर्तमान नरेश जाम कीभाजी अपनी एक मुसलमानी खपास (पासवान, रखैली) के पेट से पैदा होनेवाले सबके (काकूना) को गोद लेकर राजगद्दी का बारिस करार दे दिया है और गवर्मेण्ट ने भी स्वीकार कर लिया है। इससे हमारा उस राज्य से सदा के लिये संबंध नष्ट होने जा रहा है। मैं अकेला कुछ नहीं कर सकता, आपकी मदद चाहता हूँ। महाराणा सदा हिन्दूधर्म के रक्षक और राजपूत जाति के शिरामणी रहे हैं”। इस पर महाराणा सज्जनसिंहजी ने सहायता देना स्वीकार कर लिया। दोनों ने सलाह करके उज्जदारी के तौर पर दो तार और दो खरीते गवर्मेण्ट-हिन्दू के नाम लिखे और महाराजा जसवन्तसिंहजी ने वे अपने मुसाहिब पंजानी श्री हरदयालसिंह के साथ जोधपुर के तत्कालीन रेजिडेण्ट कर्नल बेली के पास भेज कर ज़ायगी कहलाया कि जामनगर के जाम

साहिब बीभाजी ने मुसलमानों के पेट में पैदा हुए लड़के को अपनी गद्दी का हकदार कायम करके गवर्नट से मजूरी ले ली है उससे उच्चात वायत महाराणा साहिब उदयपुर और मैं दोनों ही तार व बाज़ाज़ा खरीते देते हैं वे सरकार अंग्रेज़ों में पहुँचा दें। पोस्टलकल रेजि-डेन्ट ने वे तार-खरीते उस समय के एजेन्ट टू दि गवर्नर जनरल राजपूताना कनॅल जाडफोर्ड के पास भेज दिये और सूचना दे दी कि दोनों ही रईस आप से अजमेर में मिलेंगे।

महाराणा सज्जनसिंहजी उदयपुर छोड़ते समय महाराजा जसवंतसिंहजी के साथ अजमेर पहुँचे। वहाँ ए० जी० जी० कर्नल जाडफोर्ड दोनों रईसों से मिलने के लिये कियानगढ़ की कैठी पर आये। उस समय ए० जी० जी० ने कहा “कि आप दोनों रईसों ने जामनगर के मामले में तार व खरीते भेजे थे वे ज्ञात हैं, क्योंकि हरएक रईस को अपनी ही रियासत के मामले में तहरीर देने व उच्चात पेश करने का इस्तिफार है। कोई रईस दूसरी रियासत के मामले में हस्त नहीं दे सकता। इसके अलावा राजपूताने की रियासत का कोई मामला होना तो किसी राम मूरत में आपका कहना और मेरा मुनना कुछ ठीक भी समझा जाता। मगर जामनगर काठियावाड़ में है इसलिए आपका उच्च करना चेज़ा है, आप अपने खरीते वापस ले लें आम बीभा के सारी चीज़ें हूँ सचियों में कोई आनन्द नहीं है, वह अपनी ग़ुनेअंदाज़ी के दुरे मुग़लमान औरत के पेट में गुम उसी के मुँह से पैदा हुए लड़के को अपना कबोअहद बनाना चाहता है तो उसे कैसे रोका जा सकता है। महाराजा साहिब

की तो कोई रिस्तेदारी भी नहीं है।” इस पर महाराजा जसवंतसिंहजी तो चुप हो गये परन्तु महाराणा सज्जनसिंहजी ने उत्तर दिया कि किसी समय समस्त भारतवर्ष पर हम राजपूत जाति बहुत कम हो गई। फिर मुसलमान बादशाहों की लड़ाइयों में लाखों राजपूत मारे गये इससे हमारे राज्य गिनती के रह गये जिसका हमें दुःख है। अब इस अमन के ज़माने में भी राजाओं की खानेअंदाज़ मुसलमान व अंग्रेज़ औरतों के पेट से पैदा होने वाले श्रेणले लड़के रईस बना दिये जायेंगे तो ये ग़रीब-तही रियासतें भी मुसलमान व ईसाइयों की हो जायेंगी। इसको हम कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते। अपनी जाति की रक्षा करना हमारा फर्ज़ है। आप खुद अपनी पैम व मङ्गहब की तरफ़ी के लिये कैसी २ कैशिशें कर रहे हैं? पादरी लोगों की मिशन को दूर २ मुल्कों में, बल्कि हमारी रियासतों में भी भेजकर हर तरह की मदद देते हैं और उनके रहने व गिरजा बगैरह के लिये ज़मीन आदि देने के लिये हम लेगों पर दबाव डालते हैं। आपकी अपनी काम का खयाल है उसी तरह हमें भी अपनी पैम का खयाल होना स्वभाविक है। क्या हम मतुप्य नहीं हैं। जामनगर काठियावाड़ में होने से क्या हुआ ? है तो राजपूतों का ही। मान्द्रम होता है जाम का दिमाग थियड गया है, मगर हमारा तो ठिकने है। हम इस तरह राजगद्दियों को ध्रष्ट नहीं होने देगे। यह ठीक है कि आपका मान्द्रम काठियावाड़ में नहीं है। इसी लिये तो ये खर्गने आपसे नाम नहीं बल्कि वायसराय के नाम है। रही मेरी रिस्तेदारी की बात। रिस्तेदारी दो-तीन पीढ़ी तक ही चलती है, मगर मेरा मंथप उगने भी अधिक व्यापक और

विरस्थायी है। चाहे आप मानें या न मानें परन्तु 'कालव' में 'ननस्त' संसार 'उदयपुर' के महाराणा का 'हिन्दूत्व' फटना है और मैं भी अपनी उस जिम्मेदारी को मानता हूँ। अतः जहाँ कहीं भी हिन्दू हैं वहाँ तक मेरे अधिकार की सीमा है। यह मानना तो मुझ मेरी जाति के एक राजघराने का है और यहीं मेरे प्रथम प्रतिवाद का कारण है। हम अंग्रेज सरकार के भी शक्ति हैं इसलिए नहीं चाहते कि 'व्यर्थ' में ऐसा भयानक उठे जो नामसराय को भी फटकार दे। इसलिए आप मेरे नाम से यह एक सलाह वायसरय को भेज दें कि वे जाम विभा की मूर्खता पर स्वीकृति न दें। महाराणा के इस उत्तर पर ए० जी० जी० निरुत्तर हो गये और कहा कि ठीक है, मैं आपकी सलाह से वायसरय को परिचित कर दूँगा और खुद भी कोशिश करूँगा। उम्मीद है, गवर्नमेंट जाननगर संबंधी फाइल आपके पास देखने के लिये भेज दे।

थोड़े ही समय बाद वह फाइल पोलिटिकल डिपार्टमेंट ने उदयपुर भेज दी। परन्तु दुःख है, इसी अरसे में महाराणा का स्वर्गवास हो गया। फिर भी परिणाम यह हुआ कि वह वादवादा जामनगर का उत्तराधिकारी न रहा। किंसात्वाभिमान भरा या सज्जन का वह अनुपम व्यक्तित्व।

कालान्तर में उसी जाम बीमाजी ने दूसरी बार उसी मूर्खता भरी सलाह से अपनी उसी ग्रांथी ही किसी मुसलमानी के पेट के दूधरे लड़के जसवंतसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया उस समय किसी राजा ने यूँ तक न की, महाराजा जसवंतसिंहजी भी मन-मोहास कर रह गये, क्योंकि सज्जन की तेजस्विता का बल संसार से

उठ चुका था। वह उदाहरण है हिन्दूत्व की आत्मसुश्रूषा भारत पर आत्मीयता का, पुढोभिमान का, स्वधर्मभिमान का और सर्वोपरि क्षात्रोचित स्वाभिमान का।

(२) सन् १९३७ में मेवाड़ के भगवा जिले के हजारी मीलों ने मद्रमशुमारी पर एतराज करके राज्य के विच्छेद चलवा कर दिया। उस प्रजाविद्रोह को शान्त करने के लिये महाराणा नज्जनासिंहजी ने अपने पूर्ण विश्वस्त प्रधानमंत्री गुप्रसिद्ध कविराजा श्यामलदासजी को फौज देकर भगवा जिले में भेजे। वे साम-दान आदि से युक्तिपूर्वक शान्ति-स्थापन में लगे हुए थे। कुछ समय बीतने पर सरकार-हिन्दू ने महाराणा को लिखा की "इतने अरसे तक भी मेवाड़ में नीलिका चलवा नहीं दया। माहूम होता है इस काम के लिये महाराणा की शक्ति नाकाम है। गवर्नमेंट इस देरी को अपने लिये भी खनरे से पाली नहीं देखती, क्योंकि मेवाड़ से मिले हुए भुजरात के सरकारी इलाक़ों के भीलों पर भी चलवा का कुछ अंतर पड़ रहा है। इसलिए चलवा तुरन्त दयाया जाय या महाराणा गवर्नमेंट से सैनिक सहायता भर्गे।" महाराणा नज्जनासिंहजी ने गवर्नमेंट की उपरोक्त तहरीर को उत्तर के लिये फौजी कैम्प में कविराजा श्यामलदासजी के पास भेज दी और उनके असली उत्तर का ही अपना उत्तर कहकर गवर्नमेंट में भेज दिया जिस पर पोलिटिकल डिपार्टमेंट इस संबंध में सदा के लिये चुप हो गया। वह उत्तर यह था—“महाराणा बारह सौ वर्ष से जिस शक्ति के बल द्वारा अपनी इस प्रजा पर राज्य करते आ रहे हैं वह शक्ति-बल अब भी वर्तमान है। गवर्नमेंट तो कल की आई

हुई है। हमें उसकी मदद की कोई आवश्यकता नहीं। यह मुक़बला किसी बाहरी शत्रु से नहीं है कि जिसमें सेनाबल का प्रयोग किया जाय। महाराणा अपनी प्रजा को मारकर शान्ति नहीं करना चाहते। प्रजा तो पुत्र के समान शान्ति से ही समझाई जा सकती है। यदि इस विलंब में गवर्नर को अपने इलाकों का डर है तो वह अपने घर का आप प्रवध करे। उसका उत्तरदायित्व इस राज्य पर कदापि नहीं।” यह उदाहरण है राजा-प्रजा के बीच ‘दाल-भात में मुसलचन्द’ धननेवाली तीसरी शक्ति को करण उत्तर मुना देने की शक्ति रखनेवाले राजनैतिक स्वाभिमान के।

(३) अंग्रेज़ जाति अपनी दूरदर्शिता से जिस कूटनीति को निर्धारित करती है उसका बीज प्रारम्भिक दशा में अति प्रच्छन्न-अज्ञेय स्थल पर रखती है और समयानुसार धीरे-धीरे रूपान्तर में उसका पोषण करती रहती है। प्रत्येक राज्य में प्रधान पक्षों पर अंग्रेज़ कायम करके राज्य की सर्व सत्ता पर अधिकार कर लेने की योजना आज गुलामख़ा व्यवहार में आ रही है उसके बीज आज से साठ वर्ष पहिले भी कुछ अंशुरूप में दिखाई पड़ने लगे थे। राजपूताना के एजेन्ट टु दि गवर्नर जनरल कार्ल वान्टर ने महाराणा सज्जनसिंहजी को अपने आवू के अंग्रेज़ सैकिन्ड असिस्टेंट को राज्य में ले लेने का विनीत अनुरोध किया और उस असिस्टेंट की कार्यकुशलता को खूब ही प्रशंसा की। नीति! नम्र महाराणा सज्जनसिंहजी भविष्य तक को ताड़ गये और उत्तर दिया कि मैं उसको यहां भी असिस्टेंट ही की जगह दे सकता हूँ। ए० जी० जी० ने कहा कि एक अंग्रेज़ किसी

देशी अफ़सर के नीचे कैसे रह सकता है!! महाराणा ने हँसते हुए उत्तर दिया कि मैं भी तो एक देशी ही हूँ तो क्या आप चाहते हैं कि वह मेरा भी अफ़सर बन कर आवे? मुझे अपने सब देशी अफ़सरों (राजकर्मचारियों) की योग्यता पर पूर्ण विश्वास है। अंग्रेज़ की कोई ज़रूरत भी नहीं, आप मेरे मित्र हैं अतः आपकी सिफ़ारिश के कारण मुझे उतना-सा भी स्वीकार करना पड़ा। आशा है, अब आप भी आवश्यकता नहीं समझेगे। यह उदाहरण है दूरदर्शिता और अपने घर के स्वामिमान का।

(४) एक छोट्टा-सा परन्तु अन्धा उदाहरण हम और देखे। वह है बांसवाड़ा जैसी छोटी, सी रियासत के अति वयोवृद्ध सीतादिया महारावल लक्ष्मणसिंहजी के स्वामिमान का।

एक बार बांसवाड़ा के असिस्टेंट रेज़िडेन्ट मि० पिनही ने महारावल लक्ष्मणसिंहजी के नाम एक ख़ानगी चिट्ठी लिखी। उसके लिफ़ाफ़े पर लिखा था “प्राइवेट”। महारावल ने ‘प्राइवेट’ शब्द देखते ही उसे बाज़ारता ख़रीते के साथ लौटा दी। ख़रीते में लिखा “कि मैं सोते, जागते, खाते, पीते, यहाँ तक कि शौचालय में होते हुए भी प्रत्येक क्षण राजा हूँ। मेरे जीवन में कोई ऐसा क्षण ही नहीं कि जिस समय मैं अपने आपको राजा न मानता होऊँ। ऐसी सूरत में मेरे यहाँ ‘प्राइवेट’ का कोई स्थान नहीं। हाँ, तुम्हारे लिये प्राइवेट और ऑफिशियल का भेद हो सकता है क्योंकि तुम्हारी निजी हैसियत कुछ और है और ओहदे का कुछ और। तुम यदि निजी हैसियत से मुझे लिखना चाहते हो

## ‘टोका’ और ‘रीत’ के दुष्परिणाम

(ले० श्री मोतीसिंहजी रोहड़िया, बी० ए०, जोधपुर)

विवाह-सम्बन्ध मनुष्य जाति के लिये आवश्यक और महत्वपूर्ण है। आवश्यक इसलिये कि इसके बिना समाज में अव्यवस्था, अशान्ति और व्यभिचार फैल जायेंगे और महत्वपूर्ण इसलिये कि मनुष्य-जीवन को शान्त और सुखमय अथवा अशान्त और दुःखमय बनाना इसी पर निर्भर है, और जहाँ विवाह-विच्छेद की प्रथा प्रचलित नहीं है वहाँ तो इसका महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि एक घर जिसको जैसा साथी मिल गया उम्र भर उसी के साथ निर्वाह करना ही पड़ता है चाहे उनका मेल मिले या न मिले। तात्पर्य यह कि यदि यह कहा जाय कि घर के स्वर्ग या नर्क बनाना इसी सम्बन्ध पर निर्भर है तो इसमें अतिशयोक्ति न होगी।

प्रेमा महत्वपूर्ण सम्बन्ध बहुत विचार-य छानबीन के बाद होना चाहिये इसमें तो कोई इन्कार नहीं करेगा। हमेशा के व्यवहार की वस्तुह भी जय हम काफी छानबीन के बाद लेते हैं तब समूचे जीवन के एक साथी

का चुनने में, जिसके साथ सारी जिन्दगी बितानी है और जो हमारे मानसिक सुख या शान्ति का कारण है बहुत विचार से काम लेना चाहिये इसमें दो राय कैसे हो सकती है?

विवाह-सम्बन्ध को स्थिर करने के दो तरीके हैं। पहिला वह जिसमें युवक-युवतियों के माता-पिता द्वारा सम्बन्ध स्थिर किया जाता है और दूसरा वह जिसमें युवक-युवती अपना साथ आपसी चुनते हैं। हमारे भारतवर्ष में पहिला तरीका ही प्रचलित है। पश्चिम के संसर्ग में आने से कहीं-कहीं दूसरा तरीका भी अख्तियार कर लिया जाता है, पर ऐसे मामले इतने कम होते हैं कि यदि उनकी अवहेलना कर दी जाय तो कोई अन्याय न होगा। इन दोनों तरीकों में से कौन-सा अच्छा है यह बताना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। एक दूसरे की श्रेष्ठता के विषय में दोनों की तरफ से बहुत-सी झूलें दी जा सकती हैं। पर इतना तो कहना ही होगा कि यदि पहिला तरीका (युवक-युवतियों का स्वयं अपनी मायी चुनना)

सालहों आने दीक होता तो पश्चिम के देशों में जो सलाहनामों की धूम मची रहती है वह न होती। दूसरे हमारे यहाँ आमतौर पर युवक-युवतियों की शादी क्रमशः १८ व १९ वर्षों की उम्र में हो जाती है और इस उम्र में यदि उनको अपनी मरजी से ही अपना साथी चुनने का खुला छोड़ दिया जाये तब वे इसका सदुपयोग कर सकेंगे इसमें सन्देह है। युवक सौंदर्य के उपासक होते हैं इसलिये भय है कि कदा सुन्दरता के पीछे वे अन्य आवश्यक गुणों की अवहेलना न कर बैठें। अतः वर्तमान परिस्थिति में हमारे समाज के लिये पहिला तरीका ही उचित मालूम पड़ता है। हाँ, जब शिक्षा का प्रचार हो जाय और शादी की उम्र बढ़ा दी जाय तो बात और है, पर अभी तो हमारी जाति में ऐसा वातावरण पैदा होने में बहुत समय लगेगा।

यह मान लेने पर कि माता-पिता द्वारा सम्बन्ध स्थिर करना ही क्षेयस्कर है, यह प्रश्न सामने आता है कि सम्बन्ध करने में हमारी जाति में जो 'टीका' व 'रीत' की प्रथाएँ काम में ली जाती हैं उनका लेना-देना कहाँ तक उचित है।

हमारे समाज में जितने भी सामाजिक सुधार करने का प्रयत्न किया जाता है उनके विरोधियों का प्रथम व ज्वरदस्त विरोध धर्म के नाम होता है। सुधार की चर्चा शुरू हुई। विरोधी लोग 'धर्म स्वतरे में है' व 'दीका' 'रीत' के पक्ष में कोई धर्म की दुहाई नहीं देता, पर यह दिखाने के लिये। दूसरे सुधारों के समय धर्मकी अं लेनेवाले अपने स्वार्थ के मामलों में धर्म की ओर किस प्रकार आँखें मूँद ले दें—इन प्रथाओं को धर्म की कसौटी पर कसना आवश्यक प्रतीत होता है।

हिन्दू-शास्त्रों में आठ प्रकार का विवाह माने गये हैं—(१) ब्राह्म, (२) देव, (३) आर्ष, (४) प्राजापत्य, (५) आसुर, (६) गान्धर्व, (७) राक्षस, (८) पैशाच। इनमें से प्रथम दो प्रकार के विवाह उत्तम एवं और शेष छ मध्यम और वर्जित हैं। यह देखने के लिये कि 'टीका' और 'रीत' लोक विवाह करनेवाकिस प्रकार का विवाह होगा—आठों प्रकार के विवाहों की परिभाषा नीचे दी जाती है—

(१) ब्राह्म—विद्यायुक्त, शीलवान् घर का बुलाकर वस्त्र व भूषणादि



पहनाकर वेद-मन्त्रों द्वारा कन्यादान करना।

(२) देव-यज्ञ में भले प्रकार यज्ञ करानेवाले ऋत्विज वरको भूषण पहनाकर कन्यादान कर देना।

(३) आर्ष-जो वर के पिता से कुछ धन लेकर किया जाता है।

(४) प्राजापत्य-जो वेद-मन्त्रहीन केवल वाणी से ही कन्यादान कर दिया जाता है।

५) आसुर-वर के माता-पिता को उनकी इच्छानुसार धन देकर कन्यादान करना।

(६) गान्धर्व-अपनी इच्छा से कन्या और वर का विवाह होना।

(७) राक्षस-कन्या या उसके माता-पिता के मारपीट कर कन्या ले जाना।

(८) पेशाच-सातो हुई और नशा की हुई प्रमादिनी कन्या को जहाँ मनुष्य न हो वहाँ होसे प्राप्ति करना।

ऋषि को परिभाषा को देने पर मायूम हो जायगा कि 'रीति' लेकर

विवाह करना 'आर्ष-विवाह' है। और 'टीका' लेकर करना 'आसुर-विवाह' है। यह माना कि प्राचीन ज़माने में-जब यह धर्मशास्त्र बने थे, निन्दित विवाह होते थे पर इससे यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि 'टीका' और 'रीति' लेनेवाले तो धर्मशास्त्रों के भी विरुद्ध आचरण कर रहे हैं।

यह कहा जा सकता है। कि कोई भी धर्मशास्त्र हमेशा के लिये नहीं है। संसार परिवर्तनशील है और समाज के नियम, रीति रिवाज भी बदलते रहते हैं तब हमें व्यावहारिक हानि-लाभ का आश्रय लेना पड़ता है। अतः अब हमको इस बात पर विचार करना है कि व्यवहार एवं लोकमत की दृष्टि से 'टीका' व 'रीति' का क्या हानि-लाभ होता है।

यह हमें मानना ही होगा कि विवाह का मुख्य ध्येय समाज की सुव्यवस्था, शुद्धि या सुचारु रूप से चलाना व सन्तानोत्पत्ति है। यदि इसका द्रव्योपा-जन का एक साधन बना लिया जाय तो इसका महत्व ही मारा जाता है।

परन्तु 'टीका' व 'रीत' लेने से बात इससे विपरीत होनी-चे। लड़के-लड़की के अभिभावक पहिले यह देखते हैं कि अमुक जगह सम्यन्ध स्थिर करने में उनको कितना धन मिलेगा। लड़के-लड़की के चुनने का सवाल गौण हो जाता है और धन-प्राप्ति का मुख्य। ऐसी हालत में कितनी ही कोशिश क्यों न की जाय, सम्यन्ध सोलहों आने टीका हो नहीं सकता। जहाँ माता-पिता लड़के-लड़की के हित का छोड़ अपने स्वार्थ को प्रधानता देते हैं, वहाँ ऐसा हो भी कैसे सकता है। कई 'टीका' लेनेवाले कहा करते हैं कि हम लड़की की छानबीन भी पूरी करते हैं और फिर धन भी लेते हैं, इनमें कौनसी हानि हुई। पर ऐसा क्या सभी विवाहों में हो सकता है? उदाहरणार्थ दो लड़कियाँ हैं जिनमें एक बहुत सुन्दर, सुशील व समझदार है। दूसरी भी पहिली के गुण मौजूद है पर कुछ कम मात्रा में पहिली का पिता (५००) दे सकता है जब कि दूसरा (१०००) की बोली लगा देता है। ऐसी हालत में लड़के का पिता पहिले का छोड़ दूसरे को लड़की के साथ सम्बन्ध स्थिर करेगा और यह कह देगा कि

दोनों लड़कियों में कोई विशेष अन्तर नहीं, तिस पर तुर्श यह कि (५००) ज्यादा मिल रहे हैं। सारांश कि यदि 'टीका' की प्रथा न होती तो इस विशेष अन्तर, की आवश्यकता न रहती और पहिली लड़की ही के साथ शादी होती।

अन्य खराबियाँ 'टीका' की यह हैं कि इस नीलाम की बोली के कारण कम पैसेवाले व्यक्तियों की लड़की के लिये योग्य घर मिलना मुश्किल हो जाता है, अतः कई जगह लड़कियाँ काफी घबराह हो जाने तक बचारी ही रहती हैं और बाद में उनसे कम उम्रके लड़के के साथ उनका विवाह करना पड़ता है जो सर्वथा अनुचित है। कहीं-कहीं तो इस भय से कि हमें बाद में लड़का न मिलेगा लड़की धीले छोटी उम्रमें ही लड़के-लड़की का विवाह कर देते हैं जो लड़के की शिक्षा में बाधक होते हैं और कभी-कभी उसको परिणाम बहुत भयकर होता है। कहीं तो ऐसा भी होता है कि ससुरालवाले लड़की को इसलिये तकलीफ देते हैं कि उसके पिताने उनको इच्छा के मुताबिक दिया नहीं। यह अमानुषिक व्यवहार कुछ मामलों में यहाँ तक बढ़ जाता है

कि लड़की को जान से हाथ धोना पड़ता है। और यह बात तो केवल हमारी जाति तक ही सीमित नहीं है। 'दीका' के ही अनुरूप 'दहेज-प्रथा' की घालघेदी पर भारत की कितनी ही निर्दोष युवतियाँ प्रतिवर्ष अपना बलिदान चढ़ाती हैं।

'रीत' का परिणाम भी कम भयंकर नहीं है। प्रथम तो चारण जाति की आर्थिक दशा इतनी गिरी हुई है कि बंधुओं के पास 'रीत' देने का पैसे नहीं होते और इसी वजह से बहुत-से युवक अविवाहित रह जाते हैं; और जो भर पच कर कुछ पैसे इकट्ठे करते हैं। उनको 'रीत' देने के बाद अपनी भावी पत्नी और भावी सन्तान के पेट पालने की फिक्र पहले से ही लग जाती है। वृद्धविवाह भी इसी प्रथा का परिणाम है जहाँ माता-पिता अपनी गरीबी के कारण या धन के लोभ से ज्यादा उम्र के घर के साथ अपनी लड़क़ी का विवाह कर देते हैं। मारवाड़ी भाषा में एक कहावत है कि घरहण देणी पण घरहाण नहीं देणी। पर 'रीत' लेकर ज्यादा उम्र के घर साथ अपनी लड़की का विवाह करने वाले माता-पिता दोनों

हानि करते हैं। 'घरहण' तो घरकी ज्यादा उम्र होने से है 'ही और घर के पास जो कुछ धन है उस को 'रीत' के रूप में लेकर 'घरहण' भी कर देते हैं।

इन कुरीतियों का सारा दोष वृद्ध जनों को ही देना उचित नहीं। युवक-युवतियों का भी इस में कुछ हिस्सा अवश्य है क्योंकि वे इसका प्रतिवाद करना जानते ही नहीं। अशिक्षित और पर्दे की चहारदीवारी में बन्ध युवतियों से तो कुछ आशा रखना दुराशा कहना मात्र है पर युवकों में तो शिक्षित भी हैं, और जमाने का पहचानने वाले भी हैं पर वे भी मूक पशु की तरह जहाँ उनके बाँधा जाता है दब जाते हैं। इससे मेरा मतलब माता-पिता के खिलाफ बिश्रोह फैलाने का नहीं है, पर जहाँ युवकों का मालूम हो जाय कि उनके माता-पिता उनके सच्चे हित को प्रधानता न देकर केवल स्वार्थ को प्रधानता दे रहे हैं वहा नव्रता युवक प्रतिवाद करना हरेक युवक का अधिकार है परन्तु आमतौर पर घंसा न करने पर उनमें नैतिक माहस के अभाव का परिचय मिलता है। यह केवल छिप्पने की बात नहीं मेरी

आँखों देखो हुई बात है। मेरे एक परिचित शिक्षित संजातीय युवक को अपनी सरज़ी खिलौफ़ अपने माता-पिता की आज्ञा पालने के लिये विवाह करना पड़ाया, पर उसका साहस न हुआ कि वह प्रतिवाद वाद करे। मुझे पता नहीं की उसका अब क्या हाल है। सारांश कि यदि भाग्यवश पाशा टिक पड़ गया तो तो अच्छा, नहीं तो वास्तव में बड़ी दयनीय दशा है। कुछ इन्-गिने युवक ऐसे भी मिलेंगे जो माता-पिता

को तबह धन के लाभ में अपने पैसे आप ही कुलहाड़ी मारते हैं। वे और भी अधिक दौपी हैं क्योंकि दूसरे के धनसे धनी होना चाहते हैं अपनी उन्नती में स्वालम्बन का सहारांना लेकर विवाह द्वारा धनी बनने का प्रयत्न करते हैं। और जब तक विवाह में धन प्राप्ति का प्रधानता दी जाती रहेगी चाहे वह माता-पिता से हो अथवा युवकों से तब तक 'टीका' व 'रीत' की प्रथा का बन्ध होना असम्भव है।

## • चारण-वाणी

### ओपाजी आढा के गीत

( गताडू से आगे )

( ६ )

[ निम्नोक्त गीतों की कुछ पंक्तियाँ रेखांकित की गई हैं, इनका तात्पर्य यह है कि, या तो वे पंक्तियाँ संदिग्ध-सी हैं या उनके छिराने का क्रम नहीं रहा। —सम्पादक ]

दिये, व्याज-दुणा लिये न मांगे दोकड़ो, रोकड़ो देखियां घणो रोजीं ।  
आगले घेरै तेड़ावियो आंघळा, पाछला घरां री म' कर पाजी ॥ १ ॥

लाभियो परीया खेत संदकै लिये, दबाये आंकड़ा भरे ढाला ।  
आंगणे बैठ दरबार रा आदमी, कसी घरबार री आस काला ॥ २ ॥

पटीडै जौ ने गहूँ वेयै परा, भाटके रुपिया करै भेळा ।  
राम रा हाय री दूत लाये रुको, चायळा ! जोयणी कितिक बेळा ॥ ३ ॥

न पावै राय मोठा कदै न जीमे, न पैरै लूंगड़ा कदै नीका ।  
डाकि जमराण भा प्रसण हेला दिये, कसी पर आवसी नींद काला ॥ ४ ॥

कळह री मूळ कड़यो घणी कुटुम्ब सूँ, नारायण नाम मन मांय नांन ।  
ओठ रा दूत खोटी हुवै आंगणी, जैतु ओ अठा री आस जाणी ॥ ५ ॥

युद्ध की भयानकता से कालिका को भयभीत देख कर वीरगंगा कहती है कि हे काली ! तू व्यर्थ ही क्यों उरली है ? तू तो अपने व्यवसाय-रक्षण के लाभ को मत खो। जिसकी वजह से पृथ्वीपति होते हैं उससे युद्ध तो अपने होता ही है।

काली करे बधावणों, सतियां आयो साथ।

हथलेवै जुडियौ जिकौ, हमै न छूटे हाथ ॥ ३१ ॥

( सतियों का सनूह युद्धभूमि में आया देखकर कालिका इन उत्साहवर्धक शब्दों से उनका अभिनंदन करती है कि पाणिग्रहण के अवसर पर जो हाथ जिस हाथ से जुड़ गया है वह भला अब छूटगा थोड़े ही ! )

धीरा धीरा ठाकुरां, जमी न भागी जाय।

घाम्भीयां पग लूबी धरा, अचखी ही घर आय ॥ ३२ ॥

धियां।

किरी बर के मुकामिले के शिरो जानेवालों से कहा गया है कि ठहरो, ठाकुरो ! जरा ठहरो। जमीन कहीं भागी खली नहीं जा रही है। याद रखना, जिन मालिकों के पैरों से उनकी जमीन बँधी हुई है वह आपके पर मुकिल ही आएगी अर्थात् जिनका जीवन उनकी पृथ्वी के साथ है वह पृथ्वी ले लेगा सहज नहीं है।

भूल न दीजे ठाकुरां, पावक मोयै पाव।

राख रहीजे दाशियां, तियां धरीजे चाय ॥ ३३ ॥

शती की उक्ति है कि हे सरदारो ! भूल कर भी आप लोग आप पर पैर न रखना। जिसके स्पर्श से राख ही बाँधी रहती है, उसमें स्नान करने की उमंग तो हम त्रियाँ ही रख सकती हैं।

भोला की हठ ठाकुरां, रोला हेक न राह।

गेह रहीजे रोवणै, देह सहोजे दाह ॥ ३४ ॥

ये भोले सरदारो ! वह भी केड़े हठ है ? ये उत्पात एक भी ठीक नहीं। इनसे आपके शरीर को सन्ताप होगा और आपके घर में रोना ही रोना रह जायगा।

खता नाहर सारखा, साळं न छोड़े खर।

कंत विणठा काच-सा, दो ही विलखां दूर ॥ ३५ ॥

आप तो सिंह के गमान निःशंक तो रहे हैं पर उधर वीर आफगणकारी भी मकान को नहीं छोड़ते हैं; दग परिस्थिति में विनष्ट भौंच के गर्मान हे कन्त ! हम दोनों दूर ही दूर विलख रहे हैं।

कंठ न छेड़ों ठाकुरां, काळों जाण करंड ।

इण भोगी रा जहर थी, दूजों की ईजमदंड ॥ ३६ ॥

ऐ ग्रन्थो! इस खयाल से कि यह छन्दे में पड़ा हुआ काल विपश्य है, मेरे पति को तुम मत छेड़ो। ज्ञाते नहीं हो इस भोगी (कले बांध) के जहर (तोष) से बढ़कर और बस-दण्ड कौन सा है?

नींदाणों गिण टेकड़ों, पुटों, न छेड़ों पीव ।

प्राय पुजावी पावही, चूड़ों घण चिरजीव ॥ ३७ ॥

जा

इन प्रणवीर को सोये हुए समस्त कर तुम लेग भाग जाओ और इन्हें मत छेड़ो। तुम्हारे चले जाने से तुम्हारी स्त्रियों का चूड़ा चिरजीवी होकर पूजा प्राप्त करेगा।

भोळा जाणों भूलिया, घरसां आठां घाळ ।

पय घरार्गों सो हगी, केयर जणों सो फाळ ॥ ३८ ॥

ठो। ठो

ऐ भोले लोगो! तुम क्या इस भ्रम में हो कि यह बच्चा आठ ही वर्ष का तो है? अरे भाई! इस घराने में तो सिहिनी-वीरांगना जिस कुमार को जन्म देती है वह कालरूप ही होता है।

बाळ चाल म चीसरे, मो घण जहर समाण ।

रीत मरन्तां, ढील की, ऊठ गियो यमसाण ॥ ३९ ॥

ऐ बच्चा! अपनी चाल को मत मूल। मेरे स्तन में जहर समाया हुआ है। युद्ध में प्राणहत्या करने की तो अपनी परम्परा ही है। फिर अब देर क्यों? लड़, घमासान युद्ध हो रहा है।

नागणजाया चीटला, सोदणजायां साव ।

राणीजाया नहं रुकै, सो कुळपाट सुभाव ॥ ४० ॥

नागिनी से उत्पन्न सर्पशिशु, सिहिनी से प्रवृत्त शाक और रानियों से पैदा हुए राजकुमारों का तो यह स्वभाव ही होता है कि वे अपने कुलगर्भ में कभी रुकते नहीं।

असिधाघण तो पीव पर, घारी घार अनेक ।

रण साटकतां कंठ रै, लगै न साटकार्य पक्क ॥ ४१ ॥

७

ऐ शिकलघरनी! मैं तेरे खाबंद पर अनेक बार चलिहारी हूँ कि उसने तलाश को धार शनी तीक्ष्ण कर दी है कि उसे युद्ध में चञ्चल समय मेरे पति के एक भी झटका नहीं लगना।

लोहारी तो पीव रा, चले न पूजू हत्य ।

फूलतां रण कन्त रै, कड़ी समाणी मत्य ॥ ४२ ॥

ऐ लुहारिन ! तेरे पति के हाथों की अब मैं कभी पूजा नहीं करूंगी—मेरे प्राणाधार जब युद्ध में फूले अंग नहीं समाये तो दोष-वस्त्र की कड़ी उनके शिर में घुस गई ! उसे इतना भी अंदाज नहीं !

सूतों देवर सैज-रण, प्रसव अठी मो पृत ।

ये घर भाभी बांट यज्ञ, पाँछों उभय प्रसूत ॥ ४३ ॥

भावज ! आपके देवर रण-शय्या पर सो गये हैं और इधर मेरे पुत्र-प्रसव हुआ है । अब उचित यही है कि आप घर के दोनों बच्चों को अपना एक २ स्तन बाँट कर मालन करें मैं सती होऊंगी ।

सायण ढोल सुहावणों, देणों मो सहदाह ।

उरसां खेती बीज फिर; रजवट उलटी राह ॥ ४४ ॥

ऐ सखि ! मेरे सती होने के समय बड़ा सुहावना ढोल बजना । तू तो क्षात्रधर्म के इस उलटे रास्ते को जानती ही है कि बीज तो इस पृथ्वी पर बोया जाता है और उसकी खेती फलती है आकाश—स्वर्ग में ।

ढोलण ढोली खं कहे, पछां उतावळ मांह ।

भीडे वाह दुवाह चर, भीडे नाह सनाह ॥ ४५ ॥

सखी लखी २ मैं डोलिन ढोली से कहती है कि साईस घोड़ों पर सामान कस और मालिक वस्त्र धारण कर रहे हैं—तुम भी तय्यार हो आओ ।

काळो फील कडाह ले, की खप्पर तो हत्य ।

हेके साथ घपाडही, मोचे दळ गजमत्य ॥ ४६ ॥

कालिके ! तैने भी क्या हाथ में खप्पर ले रक्ता है ? तू तो थिदाळ कड़ाह हाथ में ले लेने जिनमें गजमस्तक जल २ कर मेरे पति तुझे एकदम तुम कर दूँगे ।

नाग द्रमका की पडै; नागण धर मचकाय ।

गणहार / इण मैग्रहणार जे, आज भिड्डाणा सुाय ॥ ४७ ॥

शेषनाग से नागिनी पूछती है कि आज ये धमाके क्या पड़ रहे हैं ? नागिनी ! क्या तु नहीं जानती कि पृथ्वी आज इसलिये उचके खा रही है कि उसके उपभोगकर्ता परस्पर मिट गये हैं ।

निधडक, सूती केहरी, तो भी विमुहो पांव ।

गज गंडा धीर न धरे, बस पड़े बधवाव ॥ ४८ ॥

केसरी निधडक से रहा है तो भी हाथी और गंडे आदि धैर्य धारण नहीं कर सकते । वे उलटे पांव लौट रहे हैं । उन्हें व्याघ्र गंध क्या आती है मानो उन पर बज्रप्रहार हो रहा है ।

झंडा औछाढ़ै गयण, बसुधा पाड़े वाह ।

तो भी तोरण बीद तिम, धीरे २ नाह ॥ ४९ ॥

युद्धारंभ में आकाश शब्दों से ढँक गया और घोड़े चलने की त्वरा में पृथ्वी को खोद रहे हैं । प्राणनाथ तो तोरण पर जाते हुए डूल्हे के समान बिना किसी प्रकार के उद्देग के धीरे २ बढ़ रहे हैं ।

आज घरे साख कहै, हरख अचानक काय ।

बह बळेवा हलसे, पूत मरेबा जाय ॥ ५० ॥

सास कहती है कि आज घर में यह अकस्मात हप्पे क्या है ! ओह ! अब उन्हें मादुरम हुआ कि पुत्र धारातीर्थ में स्नान करने जा रहा है और पुत्रवधु सती होने को हुलस रही है ।

—कमला:



## काव्य-कुंज

### (१) क्षत्रिय बही है

—कवित

सदा ही सताये जात, दीन बलवान हाथ,  
अबलों में बात कटु गोली गिट जाने की।

परवान-कर्म ही में धर्म-मर्म पौरुषवः  
जानते न साहस के पुंज सिट जाने की

भारत का हाथनाद, सुन सकते न वीर,  
गाजि उठें दशा देखि दीन पिट जानें की।  
क्षत्रिय बही है, जिसे स्याभिमान स्वतः पर,  
बिना दुषिधा के चाह मर मिट जाने की ॥ १ ॥

### (२) चारण बही है

कवित

चारण बही है जो स्वतंत्रता उपासक हो,  
वाणी का वरद पुत्र जाने सत्य तत्व को।

अभय-अडोल अयलम्ब निज शक्ति पर,  
क्षत्रियों के देता पाठ व्यापक समत्व को

साहस को ज्वाला फुंकि मुरदे जगाय देत,  
नाशवान देह दे खरीदे अमरत्व को।

वीररस-निशेर बहाय-बिथुराय स्थग्य,  
न्याय के दिशाय देत मरन-महत्व को ॥ २ ॥

## (१५) रजपूतानी

तय और

दीदा

धध भागां धुधकारती, रजघट कुळ हिय रक्खि ।

(अब) सौंड घुसाई सोहडी, 'अरे बाहरे' अक्खि ॥ १ ॥

पहिले रजपूतानी अपने कुलभिमान के धारण कर, युद्ध से भाग आनेवाले पति को घुरी तरह फटकारा करती थी और अब ऐसे अवसरों पर अरे बाहरे कहकर उसे अपनी घगल में घुसा लेती है ।

मंगळ मरण मनायती, रणचण्डी रच रास ।

(अब) जीय बच्यां जलसा जुई, रजपूतां-रणवास ॥ २ ॥

रणचण्डीका रास रचकर जहाँ मरण-महोत्सव मनाया जाता था वहाँ अब प्राण बच जाने पर राजपूतों के रनिवातों (अन्तःपुरों) में जलसे किये जाते हैं ।

राग सिन्धुवां रीझती, सूत धचडातां सोय ।

(अब) लैला-मजनू नाटकां, हरख जागरण होय ॥ ३ ॥

पुत्र को स्तनपान कराते समय जो मिथु (युद्धकालीन) राग से आनन्दित हुआ करती थी वही सब लैला-मजनू के नाटक देखने में जागरण कर प्रसन्न होती है ।

ले खागां ललकारती, धक फळसे धाड़ाह ।

(अब) कंफे पडई कामणी, लज भय लूंगाडौह ॥ ४ ॥

कृपाण लेकर जो दरबारों से आगे बढ़ लड़कों को ललकारा करती थी वह अब घर में होनेवाले रोटी-खर्च के लिये 'हाथ' २ करती हुई हृदय में जला करती है ।

चळती नहँ कुळचाल थी, जळती जौहर झाळ ।

(अब) 'हाथ' करे चळती रहै, भोजन खरचां भाळ ॥ ५ ॥

जो कुलमार्ग से विचलित नहीं होती थी और जौहर की ज्वाला में जल जाया करती थी, वह अब घर में होनेवाले रोटी-खर्च के लिये 'हाथ' २ करती हुई हृदय में जला करती है ।

ऊठे नित देती भरघ, कधे न लज्जे कूख ।

(अब) नाम सुणन्तां मरण रो, धुधकारे भर धूक ॥ ६ ॥

जो हमेशा उठकर भगवान् भास्कर को इस प्रार्थना के साथ अर्घ्य देती थी कि हे सविता हे मंत्री कुक्षि को कभी न लजाना; वही अब संतान के लिये मृत्यु का नाम सुनते ही मुँह में धूँक भरकर धुधकी डालती है !

चढ़ती काठां चूड़लै, धव धर पर ढळियांह ॥ ७ ॥  
(अब) खरच बंधावण ताखड़ी, लंबी कांचळियांह ॥ ७ ॥

पति के धरावासी होने पर पर ओ सौभाग्यवती चित्तरोहण किया करती थी वह अब अपने वैधव्य के जीवन-निर्वाह के लिये प्रबंध को आतुर है ।

धरतां पग धर धूजती, दाकलतां दिगपाल ।  
(तब) जणती रजपूतानियां, यण थी झाळवंचाळ ॥ ८ ॥

पहिले रजपूतानियां अपने स्तनों से ऐसे आग के टुकड़ों को पैदा करतीं कि दिगपालों को ललकारकर जिनके पैर बढ़ते ही पृथ्वी धूज उठती थी ।

(अब) पोल कढयां पग लडखडै, घर वारं घिघियाय ।  
न/ पड़ै पूरी पदमण्यां, जोधा किण बिध जाया ॥ ९ ॥

उपौड़ी से निकलते ही जिनके पैर लड़खड़ाने लगते हैं और घर से झट्टिर होने पर जो घिघिया उठती हैं, वे यहाँ में दूँसी हुई कोमलानियां योद्धाओं को घेरे जन्म दें ?

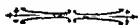
खळगी रजपूतानियां, खूटी रतनां खाण ।  
पूयळियां अब प्रेम री, प्रसव रही पाखाण ॥ १० ॥

अब रजपूतानियां ढुल गई, स्तनों की वह खानि निःशेष हो चली; अब तो प्रेम-मुत्तलिकाएँ केकड़-फंथर निकाल रही हैं ।

हे सिंघनियां आज लग, निरधीजां धर नांह ।  
वंस-उजाळक वाहुडी, मिलै झुपडां मांह ॥ ११ ॥

इतने पर भी निर्धन भूमि कहू न होय इन उक्त के अनुसार आज भी सिंहिनियाँ हैं, किन्तु वे पुल का उगल करनेवाली वे रजपूतानियां मिलेंगी सिर्फ झोपडियां में ।

—राजस्थान-केसरी देशभक्त कविपर ठा० श्री केसरीसिंहजी सौदा, कोटा



## बाघा कोटडिया

(लेखक—स्व० कुंवर श्री आईदानजी बारहट, बी० ए०, एल-एल० बी०, मथानिया)

वेदा

कोटडियो बाघा फटे, आता ढाभी आज ।

गवरीज जस-गोतडाँ, गया भोतडाँ भाज ॥

—कविराजा बाँकीदासजी आशिया

जोधपुर के राजमहलों में

रिमझिम-रिमझिम बूँदें पड़ रही थीं। भादों की घनी अंधियारी रात्रि में चारों ओर प्रगाढ़ अंधकार छाया हुआ था। आकाश में घिरा हुआ था। जोधपुर के मद्रोन्मत नरेंद्र राव मालदेव राजमहलों में बैठे हुए झरोखे के बाहर मुँह किए पावसप्रसू का आनंद ले रहे थे कि विद्युत के प्रकाश में उन्होंने एक पहरेदार को हाथमें लगी तलवार लिए हुए दहलते देखा और आवाज दी—“कौन हैं पहले पर ?

पहरेदार ने नम्रभाव से प्रत्युत्तर दिया—

“अन्नदाता, बाघा कोटडिया” ।

“कृप इधर आना ।”

पहरेदार तुरंत अपने हाथ में तलवार लिए राज के महल की ओर बढ़ा। महल में पैर रखते ही एक नवयुवती का देख बह चैंककर बाहर निकलने लगा। राव ने कहा—जो उरो मत; आ जाओ, यह तो भारमली है ।”

भई प्रकाश के साथ दीपक जल रहा था। बाघजीने राव को झुककर सलाम किया। राव शराव में मस्त होकर एक पलंग पर बैठे हुए थे और एक कोने में लावण्य की प्रतिमा स्वरूप एक बीचन-मुंदरी खड़ी थी।

राव ने कहा—

“बाघजी ! अभी इसी दम बड़िया से बड़िया ऊँट पर सवार कर, इस भारमली को तुम अपने गाँव कोटडें ले जाओ और जब तक मैं न बुलाऊँ, वहीं रहो ।”

“जो हुक्म अन्नदाता,” कहते हुए बाघजी सलाम कर अपने साथ भारमली को ले नाला और दोनों उसी समय ऊँट पर सवार होकर कोटडें की ओर रवाना हो गए।

## कोटड़े की करामात

भारमली राव मालदेव की रानी उमादे भटियानी के दहेज में आई हुई एक परम लावण्यमयी दासी थी। अपनी ही भूल के कारण अपने पति राव मालदेव के साथ उसका अनुचित संबंध हो जाने का संदेह कर उमादे उसके साथ-साथ अपने पति से भी हट हो गई। इस संदेह से निपटारा पाने के लिये राव महादेवने भारमली की याथा कोटडिया के साथ सदा के लिये उसके गौव कोटड़े भिजवा दी।

कोटड़े पहुँचकर बाघजी ने भारमली को अपने घर में रक्खा। जोधपुर से आए आज कल करते आठ-दस दिन हो गए थे, परंतु दोनों ने एक-दूसरे को भर नज़र देखा नहीं था।

पावसेकृतु थी। सलसलाती हुई विजली भी अपने प्रियतम मेघ से लिपट-लिपटकर आनंद मना रही थी। पृथ्वी अपने प्रियतम का संदेश पाकर हरित हो रही थी। उमड़ी हुई सरिताएं मद्यन्मत्त होकर समुद्र से मिलने को द्रुतगति से वहीं जा रही थीं। चारों ओर संयोग ही संयोग दृष्टलाई दे रहा था तो नद्ययुवा प्राणियों के बिज ऐसे समय में किस तरह तटस्थ रह सकते हैं? जैसे बाघजी गौरवर्ग-लंबा-पूर खूबसूरत जवान था वैसे ही सौंदर्य और सुदुमरता की प्रतिमा भारमली भी कुछ कम न थी। दोनों में एक-दूसरे को भर नज़र देखते ही प्रेम हो गया। बस, फिर तो “मो मन लगो ते मना, ते मन मो मन लग।” हीन्दी दशा में “दिनड़ा जाय ताळी ज्यूं देता।” सबसुच,

“पनरा बरसां कांमणी, मगर पचीसां कंत।

वे दिन वळै न आवसी, जोवन रा भहामंत ॥”

## इसके पाँच वर्ष बाद

दरबार में राव मालदेव बैठे हुए थे। आसपास भुवसी, अमीर-उमरा, कवि-शंडित और अन्य दरबारी बैठे हुए थे। राव का चित्त कुछ उदास सा था। थोड़ा देर के बाद उन्होंने सबको लंकापिल करवा हुआ—

“अच्छा, अब सब जाइए तुझे बाह्यदुनी आवाजी से कुछ बान करनी हैं।” और आवाजी को इशारा करके अपने पास बुलाया।

आवाजी की उम्र पचास वर्ष के लगभग थी। लंबी अर्द्धश्रेत दाढ़ी थी। रूह से मंभीरता और अनुभूति उल्लेखनीय। दाढ़ के पास ज. वे लड़े रहे।

रावने कहा—

“बाह्यदुनी, कोटड़े जाकर बाघजी और भारमली अगर आने में राजे हो तो उन्हें लिखा लइए।”

“जो हुक्म अन्नदाता,” कहकर चारहठजी खाना हो गए।

आशाजी के आने का संवाद सुनकर बाघजी दौड़ता हुआ अपने गाँव की सीमापर उनके स्वागतार्थ खानने गया और जल्ते ही उनके पैरों को धूलि अपने मस्तक पर लगाकर कहा—“आज मेरा धन्य भाग्य है, जो आप मेरे घर पधारे।

चारहठजी का नाम सुना तो भारमली के भीअपर आनंद हुआ।

दोनों रात-दिन चारहठजी की उहल-चढ़ाई में रहने लगे। यहाँ तक कि बाघजी चारहठजी के वस्त्र धोता और बहुत मंदा करने पर फड़ना कि “मेरा अन्नोभाग्य है कि, मुझे इस तरह आपकी सेवा का लाभ मिल रहा है।”

“एक दिन संध्या को भारमली चारहठजी के लिये भोजन-सामग्री थाल में सजाकर ले आई। स्वयं बाघजी हाथ में हाथ-मुँह पोंछने का ढंगोछा लिए खड़ा था। भारमली भोजन परोसने लगी। चारहठजी के जी में इन दोनों के प्रेम की दृष्टि एक अद्भुत भाव पैदा हुआ। उन्होंने सोचा कि ऐसी युगल जोड़ी का वियोग किस तरह किया जा सके। है? खज्जी चाहें जो कहें, मैं तो इनके बीच में वियोग की नदी नहीं बहा सकता। इतना ही नहीं, उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—

“तख़्तवर ज्यूं त्यूं मारियो, ज्यूं सरवर त्यूं हंस।

यापो ज्यूं ही भारमलि, दारू ज्यूं ही मंस ॥”

“भाई बाघजी! मैं तो भारमली को लेने आया था, परंतु मैं तुम्हारे आनंदपूर्ण जीवन में बाधा-स्वरूप होता नहीं चाहता। अब तो मैं भी नहीं रहूँगा।”

बाघजी ने कहा—

“मेरा धन्य भाग्य है जो आप मेरे यहाँ रहेंगे। मेरा छोटा-सा घर आपके रहने से बड़े-बड़े महलों की बराबरी कर सकेगा।”

इसने दिन तक इन प्रणियों का केंद्र केवल दो जीव-धारियों तक ही सीमित था। परंतु अब तीसरे प्राणी चारहठजी के आ जाने से उन्हें बहुत आनंद हुआ। बाघजी इस बात की कोशिश करता कि जितना अच्छे से अच्छा भोजन हो चारहठजी को खिलाऊँ, अच्छे से अच्छे कपड़े उन्हें पहिनाऊँ और जैसे भी बने हर तरह से उन्हें संतुष्ट रखूँ। रात-दिन सोते-बैठते वह चारहठजी की सेवा किया करता। एक पुत्र पिता की और छेन्नाभाई बड़ेभाई की सेवा एवं स्तुति इससे अधिक क्या कर सकता है। किसी भी वस्तु के लिये बाघजी यह नहीं कहता कि यह मेरी है और आपकी नहीं।

शान्ति के साथ यह जीवन-स्रोत बह रहा था। तीनों जीवधारियों का परस्पर का प्रेम संसार में दुःख क्या पस्तु है इस बात को भूल चुका था। रात-दिन कितनी तेजी से व्यतीत

होते यह किसी को खबर न थी। अकस्मात् उस रात आनन्द-सात म एक प्रबल बहान आ गया और सामने एक महान् स्फोट पैदा हुई जिसने उसके बहाण को फेर दिया।

बाघजी दो दिन बीमार रहकर इस संसार से सदा के लिये चले गये।

भारमर्जी के प्रेम का केंद्र, उसके जीवन का उत्साह, उसकी एकमात्र निधि सदा के लिये लुप्त हो गई। वह फूट-फूटकर रेत लेगी। उधर एक तो बाघजी सदैव परम मित्र का वियोग और दूसरी भास्मली की तज्जय करण दशा, इन दोनों ने मिलकर बारहठजी के जी को भी जबरदस्त धक्का पहुँचाया। बारहठजी पागल हो गए और रात-दिन बाघों की कथा कदक इधर-उधर भटकने लगे। बाघजी के रहते जो चीजे उन्हें सुखदायी थीं वे आज उनके लिये दुखदाई हो गईं। दिन के प्रकाश में-रात्रि के गहन अंधकार में बाघों की याद उन्हें सताते लगी। मजन् का पागलपन तो एक सुंदरी के पीछे था, परंतु बारहठजी की चित्त-उद्धिगता एक सखे मित्र का देहांत हो जाने पर थी। दिन को चैन नहीं, रात्रि में नींद नहीं, इधर-उधर वे बस भटका ही करते।

एक दिन बाघजी का एक धनुष्य लूटी पर टंगा हुआ बारहठजी ने देखा कि बाघजी की याद प्रबल हो उठी। निश्वास डालते हुए उनके मुँह से तत्काल यह दोहा निकल गया-

“बाघाजी रे कोटड़े, टंगी लाल कवाँण।  
साजनियो सालै नहीं, सालै आई ठाँण ॥”

(बाघजी के कोटड़े में उनकी लाल कमान टंगी हुई है। मित्र का वियोग इतना नहीं सताता जितना कि उसकी वस्तुएं देखकर दुःख होता है।)

### उदयपुर का आश्वासन

कई लोग आशाजी को देखकर हँसते कि, चारण दोग कर रहा है। कई सहृदय व्यक्ति उनकी अवस्था पर तरस खाते। कृपण-कृषिप्रायों पर खरी सुदूरोंवा उनकी हासत देख, एक निश्वास डालकर रह जातीं। बाघजी के बिना आशाजी को जीवन भाररूप हो गया। वे एक जगह से दूसरी जगह जाते, घर आते-बाहर जाते, कभी सोते-कभी जड़ते, परंतु हरदम वही याद उनकी सताती थी। चित्तभ्रम हुए-से फिरते-घूमते वे उदयपुर पहुँचे। नारवाड़ के एक राजपूत सरदार उन दिनों महाराणा का पास रहते थे। वे आशाजी के अच्छी तरह पहिचानते थे, अतः अपने वहाँ उन्हें इनके ठहराया। परंतु वहाँ भी आशाजी पागल की नाई गली-गली “बाघा! बाघा!” का उच्चारण करते भटकते। कुछ दिन पश्चात् किसी ने जाकर आशाजी को अज कर दी कि “अबदात! एक आदमी आया है जो पागल की नाई ‘बाघा’ बाघा!” कहता हुआ फिर धरता है।” उस समय नारवाड़ के वे सरदार भी पड़ी उपस्थित थे। उन्होंने यह सब हाल विस्तारपूर्वक वर्णित किया और कहा कि, “हमने लाख उपाय किए, परंतु वे बाघजी के नाम को नहीं छोड़ते।”

यह सुनकर राणाजी ने कहा—“स्वयों का मोह ऐसा ज़हरपस्त होता है जो मुनियों का मन भी चलिता कर देता है। बारहठजी को एक लाखपसाव था कहा कि धन के डालच में वे बाधा को तो क्या, अपने-आपको भी भूल जायेंगे।”

राणाजी ने बारहठजी को बुलाया। बारहठजी के साथ में उनका लड़का था जो हरदम उनकी देखभाउ रक्ता करता था। राणाजी ने बारहठजी का मत्कार किया और स्वयं खड़े होकर उनसे मिले। इधर-उधर की बानचीत होने के बाद राणाजी ने कहा—

“बारहठजी! मैंने सुना है कि आप बाधा, बाधा को रट लगते हैं। यदि आप आज चार प्रहर तक बाघजी का नाम न लें, तो रात्रि के प्रत्येक प्रहर के हिमाच से आपको चार लाखपसाव हूँगा।”

बारहठजी ने उत्तर दिया—

“अन्नदाता! बाघजी का नाम तो मेरे राम-राम में रम रहा है उसकी याद धाम की गति के साथ बहती रहती है। उस मित्र को मैं कैसे भुला सकता हूँ?”

बारहठजी के पुत्र ने यह बात सुनकर उनसे बहुत अगुनय-विनय करके कहा कि—  
“पिताजी! मेरी आर्थिक अवस्था को तो देखिए! एक रात भर आप ज्यों-ज्यों करके अपनेको रोकिए और बाघजी के नाम को न लीजिए।”

पुत्र के अत्यंत आग्रह से उन्होंने हृदय पर पत्थर रखकर इस बात की कोशिश रखने का प्रण किया।

राणाजी महल के झरोखे में घिराज गए और बारहठजी नीचे दरीखाने में। ज्यों ही एक प्रहर रात्रि बीतने को थी कि बारहठजी को बाघजी की याद हो आई। बढ़ते हुए हृदय का वेग शब्दों से ही कम होता है। हृदय का वेग रह-रहकर बढ़ता था। बाघजी का नाम मुँह तक आकर रुक जाता था। आखिर वे इस प्रबल वेग को रोकने में असमर्थ हुए। उनके मुँह से यह दोहा निकल गया—

“बाधा आय चलेह, धर कोटड़े व धणी।

जासी फूल झड़ेह, यास न जासी बाघजी।”

(हे कोटड़े का स्वामी बाधा! तू एक बार फिर आ। जैसे फूल झड़ जाते हैं, फिर भी उनमें सुगंधी बनी रहती है, वैसे तेरे इस लेक से चले जाने पर भी तेरी याद मुझसे भुलाई नहीं जाती।)

दोहा सुनकर झरोखे से राणाजी ने कहा—

“बारहठजी! अभी तो तीन प्रहर रात्रि बाकी है। मैं तीन प्रहर में चारों ही लाखपसाव दे दूँगा।”



मध्यरात्रि व्यतीत होने को थी। चारों ओर सुनसान था। अबतक आशाजी ने अपने जी को कड़ा रक्खा। परंतु ज्यों ही एक मुर्गे ने दौग दी, बारहठजी के हृदय में ऐसा प्रतीत होने लगा मानों मुर्गा भी बाघजी के वियोग में व्याकुल हो रहा है। आखिर उनसे बाघजी का नाम लिए बिना न रहा गया। उन्होने यह दोहा कहा—

“क्यूं कुरलायो कूकड़ा, गळती मांसल जोग।  
विहंग थनै ई चींटियो, बाघा तणे विजोग ॥”

(हे मुर्गे! इस अर्द्धरात्रि के समय तूने व्याकुल होकर क्यों कुरलाहट मचाई है क्या तुझे भी बाघजी के वियोग ने घेर लिया है, जो ऐसी दर्दभरी आवाज़ में चिल्ला रहा है?)

अब तो उनके पुत्र से रहा न गया। उसने कहा—

“बाबाजी! यह क्या करने जा रहे हो। दो लाखपसाव पर तो पानी फेर दिया। कुछ मेरी स्थिति का भी खयाल है या नहीं? अब दो प्रहर तक तो मन को कड़ा रक्खे?”

रात्रि का तीसरा प्रहर व्यतीत होने को था कि आशाजी को कोटड़े की याद हो आई। किस तरह वे दोनों मित्र सुखप्रद जीवन व्यतीत करते थे। अकरमात् काल के शोक ने आकर अपने मित्र का जीवनदीप किस तरह बुझा दिया। अब बाघजी के वियोग में कोटड़ा उन्हें कैसा प्रतीत होता है, यह एक दोहे में बताया—

“बाघाजी बिन कोटड़ी, लागे मो अहड़ोह।  
जांनी घनै सिधाचियों, जाँणे मांडवडोह ॥”

(बाघजी के बिना कोटड़ा ग्राम मुझे इस तरह सुनसान प्रतीत होता है जैसे कि बारत के खाना हो जाने पर लग्न का मंडप-गृह।)

अब तो केवल एक प्रहर रात्रि शेष थी। बारहठजी को बाघजी की याद अधिकाधिक सताने लगी। एक तो सुनसान रात्रि, तिस पर वियोगाग्नि का हृदय के अंदर प्रज्वलित होना, इन दोनों ने मिलकर आशाजी के हृदय में तूफान मचा दिया। उधर राणाजी ने झरोखे से आवाज़ दी—

“आशाजी! अब तो केवल एक प्रहर रात्रि शेष है। यदि इसमें भी आप बाघजी का नाम न लें तो मैं आपको चारों ही प्रहर के चार लाखपसाव दे दूँ।”

यह कहना ही था कि बारहठजी बोल उठे—

“चींघण चाळधियांह, खह मांही खंखेरियां।  
रांणा! राख थयांह, बीसरसों जद बाघने ॥”

( हे राजाजी ! अग्नि में प्रज्जलि होकर राख बनने के बाद ही इस शरीर से वाघजी का नाम भुजया जायगा । )

“यहै मसांण ययांह, आतम पूगों अलखिपद ।

गंगा हाह गयांह, बीसरसों जद बाघने ॥”

( जब वाघजी के स्नान की जगह के पास मेरा स्नान घनेगा और आत्मा का संबंध परमात्मा से हो जायगा और मेरी हड्डियां गंगाजी की धारा में बहाई जायेंगी तभी वाघजी का नाम भुजया जायगा । )

राजाजी झरोखे से तन्हाल नीचे उतर आए और बारहठजी को गले लगाकर कहने लगे—

“बारहठजी ! आपका स्नेह धन्य है । मैंने तो आज तक कोई ऐसा उदाहरण नहीं देखा । सचमुच यही कारण है कि क्षत्रिय, चारणों के पवित्र और सच्चे पथ-प्रदर्शक मानते हैं । हमारी जाति और आपकी जाति का संबंध आजकल का नहीं वरन परंपरा से निःस्वार्थ चला आता है । अब मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि आप यहीं पर रहें । मैं आपको चारों ही तरफ-पसाव देता हूँ ।”

राजाजी ने कहा बारहठजी के पुत्र को चारों तरफ-पसाव दे दिए ।

राजाजी की यह भरसक कोशिश रहती कि किसी प्रकार मैं इस चारण के दुःख को दूर करूँ । खाने-पीने एवं पहनने-ओढ़ने में कोई कसर न रखती ।

एक दिन महाराणा हीज पर नहाने गए और अपने साथ बारहठजी को भी ले गए । दोनों ने पात-पात ही अपने वस्त्र खेड़कर रखे । बारहठजी नहाकर पहले आ गए । उन्हें चित-भ्रम दशा में कुछ विशेष ध्यान तो था नहीं, उन्होंने महाराणा की पोशाक पहन ली । पाम में कोई नौकर भी न था जो उन्हें देखे, क्योंकि नौकरों को अंदर आने की आज्ञा नहीं थी । पोशाक पहनकर बारहठजी एक ओर बैठ गए । पीछे से महाराणाने आकर बारहठजी को अपनी पोशाक पहने देखा तो कहा कि—

“बारहठजी ! आपने तो मेरी पोशाक पहन ली है !”

इतना सुनते ही बारहठजी को वाघजी की याद आई । अतीतस्मृति पुनः जाग्रत हुई । उनकी आँखों के सम्मुख बाघाण कपड़े पहने हुए बाघजी, महाराणा से बहुत उच्च स्थान पर दिखलाई दिए । एक निःस्वास छोड़कर उन्होंने कहा—

“की कह की कह की करो, कहा करो बखान ।

थारो म्हारो नह क्रियो, पे बाघा अहनाण ॥”

( मैं अब क्या क्या कहूँ और बाघजी का क्या बखानूँ कहूँ ? उसको तो पहिचान ही यह थी कि, वह किसी चीज़ को यह मेरी है और यह तुम्हारी है, ऐसा नहीं कहता था । )

थरा, तुरंत ही उन्होंने महाराणा के वस्त्र उतार दिए और अपने वस्त्र पहनकर वे यह कहते चलने लगे—

“चाल मना रे! कोटड़े, पग दै पावड़ियांह।

वाघा सूं बातां. करों, गळ दै बांहड़ियांह ॥”

(हे मन! इस हौज की सीढियां पर पैर रखकर कोटड़े को चल। वहाँ पर वाघजी के गले में बाँहें डालकर बातें करेंगे।)

राणाजी ने उनको रोकने के लिये बहुत कुछ अनुनय-विनय की, परंतु उन्होंने एक न सुनी और मारवाड़ की चल दिए।

**पुनः कोटड़ा को**

एक स्थान से दूसरे स्थान भटकते-फिरते आशाजी कोटड़े की सीमा में पहुँचे। वहाँ से कोटड़ा गाँव एक मील की दूरी पर था। वसंतक्रतु थी, चारों ओर वृक्ष हरेभरे दिखलाई दे रहे थे। बावली के किनारे पर खड़े अपने पूर्वपरिचित एक बरगद के वृक्ष के पास कि जहाँ उन्होंने वाघजी के साथ कई बार वसंतक्रतु में महफिलें मनाई थीं, खड़े रहे। बरगद को नीचे से ऊपर तक उन्होंने देखा तो मालूम हुआ कि वह हराभरा है। बस, क्या था उनकी पूर्वस्मृति जाग पड़ी। वाघजी का चिरवियोग हो जाने पर भी यह बरगद हराभरा है, यह उनके वियोगाग्नि से जलते हुए हृदय को कब सहा हो सकता था? उन्होंने बरगद को लक्ष्य करके यह दोहा कहा—

“बड़ बावड़ी तणाह, नीमाणा नीलो थयो।

बाघा बीछड़तांह, साख तणो सूखो नहीं ॥”

(हे बावली ऊपर के निर्लज्ज बरगद! मुझे आश्चर्य है कि, वाघजी का चिरवियोग होने पर भी तू शाखाओं तक सूखा नहीं और हराभरा है!)

थोड़ी दूर चलकर वे एकदम नीचे बैठ गए और चारों ओर निराशापूर्ण दृष्टि से देखने लगे। उनकी आँखों के सामने चारों ओर अंधकार फैल रहा था। वे थके-मंदि वहाँ से रहे।

उदयाचल की ओर से सूर्यदेव लालिमा लिए उदित हो रहे थे। समस्त संसार निद्रा से जाग उठा था परंतु एक आदमी आज सदा के लिये सो गया था। आज चिरकाल का वियोगी पक्षी पिंजड़े को छोड़ संयोग की ओर उड़ चुका था। जहाँ उसका जीवन-सखा वाघजी है वह मंजिल उसने प्राप्त कर ली थी। अब तो उस बरगद के पास पड़ा था सिर्फ़ चारहठनी का निर्जीव शरीर कि जिसका घेरे आठ-दस आदमी खड़े थे। एक आदमी उनमें से बोल रहा है—

“गए बेचारे वारहठनी। परंतु वाघजी, क्षत्रियजाति और कोटड़े को तो वे सदा के लिये इतिहास में अमर बना गए।”

आज इस बात को ४०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, परंतु मारवाड़ ही क्यों समस्त राजपूताना एवं गुजरात-काठियावाड़ में वाघजी और आशाजी का नाम लोगों की जिह्वा पर है। जगह-जगह उनकी बात कही जाती है। क्षत्रिय और चारण जाति के पारस्परिक सच्चे स्नेह का यह उदाहरण दिया जाता है। ऐसा विरल ही क्षत्रिय या चारण होगा जिसे वाघजी का एक भी दोहा याद न हो।

## सम्पादकीय टिप्पणियाँ



### मेवाड़ के चारणग्राम

फरवरी १४ वि० सं० १९९५ के दौरान बहादुर गुरु प० धर्मनाथयजी सा० भक्त, एम० ए०, बार० एट० लॉ०, सी० आई० ई०, सुराहिय आला-राज्य मेवाड़ की सेवा में मेवाड़-चारण-सभा की ओर से जिस डेपुटेशन के जाने का संवाद प्रकाशित हुआ है उसके द्वारा पेश किये गये आवेदनपत्र से मेवाड़ के चारणग्रामों की वर्तमान स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है, अतः पाठकों की जानकारी के लिये उसकी प्रतिलिपि नीचे दी जाती है—

“अपरिचः अमी आपका पधारना धीमान् श्री ११ गुरु के साथ जब चौधपुर हुआ था तब हां मारवाड़-चारण-सभा की ओर से एक डेपु-शन ने आपकी सेवा में उपस्थित होकर मेवाड़-चारणग्रामों की जन्ती की परीवाई के खिल-ते में आपसे जो धर्म की ओर उसका जो अनुभूतिपूर्ण उत्तर आपने डेपुटेशन को दिया, की सचन मारवाड़वालों ने बहाल की है। के लिये हम लोग मारवाड़-चारण-सभा व के आभारी हैं।

मेवाड़वालों की ओर से अब तक इस संबंध में धर्म मारवाड़ न करने-कराने का कारण संक्षेप में ही कि, कितने ही दुःखभाव से हो, कल अपने सामाजिक कष्ट को मिटाने के लिये जानेवाले सामूहिक प्रयत्न को भी राज्य की सेवा की दृष्टि से देखे जाने की प्रवृत्ति है। हम लोगों में से कुछ मुखिया लोगों के हैं। परंतु जब हम देख रहे हैं कि

जिस मुख्य हेतु से हम उक्त भय की इतना भयते हैं वही जब मित्रता जा रहा है तो अपने स्वार्थ व राज्य-हितकामना से भी अपनी दुःखगाथा राज्य के महामंत्रों-आप दयालु महोदय के सामने निवेदन कर देना हमारे लिये लाजमी हो गया है।

हम लोगों को जो माफियां हैं वे हमारे पूर्वजों की सेवाओं से प्रसन्न होकर राज्य की ओर से बड़ी २ धार्मिक प्रतिज्ञाओं के साथ दी हुई हैं, जिस प्रकार कि आजकल भी राजालेख प्रसन्न होते हैं उन्हें देते हैं।

इन माफियों के गांवों पर हम लोगों का धर्म के बरतों का कच्चा निरन्तर बला आ रहा है।

राज्य ने अब तक इनके तांबापत्र या पट्टे-परचमों के होने न होने का कभी सवाल नहीं उठाया और उन्हें बराबर बहाल रक्ता है।

किन्तु आजकल किसी भी सरकारी महकमे में माफियों के गांव का किसी भी बड़ा का यापत्र पेश होवे ही उसकी सनद तलब करने का आम उसूल, न माहस यों, इस्तिस्नार किया गया है।

इस रवैये से चारणों के करीब बीस-बाईस गांवों पर मुर्खी व जन्ती की परीवाई जारी है और कुछ के लिये तो जन्ती के हुकम भी हो गये हैं; जिससे हमारे धर्मियों दुःख माने २ के लिये मुहताब होने की हालत में आ गये हैं और उन्हें पूर्ववत् अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा खबरम रखना असंभव हो रहा है।

सच अर्ज किया जाय तो आज मेवाड़ का प्रत्येक चारण राज्य के इस खैये से अत्यन्त दुःखी और व्रस्त है।

आप जानते हैं कि चारण जाति में अपनी जायदाद के अनमन भाईभाग होने का रिवाज है। ऐसी दशा में सनद किसी भाई के पास रह जाने से और उसकी औलाद की नाबालगी, नादारी या आपसी ईर्ष्याद्वेष आदि के कारण उसका खो जाना, गिरवी रख देना या इधर-उधर ऐसे हो जाना कि फिर पता न लगे;—साधारण समझ में भी आ जाने लायक है। और यह न मान कर यह कहना तो कितना बेबुनियाद है कि वे गांव जिनकी सनदें न मिलें, चारणों के दबाये हुए हैं।

इस परिस्थिति में सिर्फ सनद न होने के कारण पीड़ियों से चले आते हुए कच्चे को कि जिसको राज्य भी स्वयं अपने महकुमों के कगजे में स्वीकार करता आ रहा हो, उठा देना न्यायधर्म के सर्वथा विपरीत है।

आपको वसूली मान्यून है कि मारवाड़ में ऐसा शकाल उठने पर कच्चे को ही महत्व दे कर सब माफिया बहाल रखी गई हैं और गाठ रात में पहिले की माफिया के लिये सनद यद देना त्यागनी नहीं माना गया है। और राजपूताना के मुख्य राज्यों में चारणों पर ऐसा वज्रप्रहार कहीं नहीं हुआ है।

फिर, जिस राज्य की धर्मप्रियता, न्यायनिष्ठा एवं मयादापादन को दूसरे सब आदर्श मानते आ रहे हैं, उसमें हमारे गांधी प्रभार का निर्देश इतना है,—और यह भी वर्तमान श्रीमान् कारगजबुलकमल-दिवाकर जैसे उदारगिण, प्रजा-पटक, धर्मशाला नरेश्वर के शासनकाल एवं आज

जैसे न्यायप्रेमी सर्वोपरि अधिकारी के कार्यकाल में हो; यह हमारे लिये तो घोर दुर्भाग्य है ही, राज्य के लिये भी कहां तक शोभाप्रद है, इसके लिये हम क्या अर्ज करें !

हमारी विनम्र सादर प्रार्थना है कि जिन गांवों के लिये सनद पेश न होने से ही ज़न्ती व कुर्का के हुक्म हुए हैं वे तुरन्त मन्सूर फरमाने की कृपा की जाय और भविष्य में इस प्रकार सनद-तलबी के खैये को भो बंद किये जाने को आज्ञा प्रदान की जाय। ”

× × ×

इसके बाद की खबर है कि डेपुटीमैजिस्ट्रेट को दिये गये वचनानुसार श्री मुसाहिय आला साहिय ने श्रीमान् मेदपाटेखर को सेवा में अर्ज की तो श्रीमानों ने इस विषय पर शृपापूर्वक विचार करने के लिये फरमाया।

इसके पश्चात् यह भी समाचार है कि जिन चारणप्रान्तों पर ऐसी कार्यवाई हो रही है उनकी फूहरेस्त महकुमा राजा से तलब फरमाई गई है और श्रीमान् मेदपाटेखर के यह दर्याफ्त फरमाने पर कि चारण क्या चाहते हैं, रोमपुर थ० सा० करनीदानजी ने कुछ लिख-लिखाकर पेश भो कर दिया है।

× × ×

इस अनुकूल परिस्थिति में भी मेवाड़ के जो चारण मरदार गपूती व रोमयता का दम भरते हैं, अपने प्रनाद, अहंकार व पारस्परिक ईर्ष्याद्वेष के कारण कुछ सफ़ाद प्रयत्न न कर सके तो क्या जागिरद्वेष के लिये कां गई इग अशम्य बेवक़फी का उन पर अमिट कलंक न रहेगा !

## सम्मेलन का आगामी अधिवेशन

अ० सा० चारण-सम्मेलन के पांचवें अधिवेशन के अवसर पर छठे अधिवेशन के लिये मेवाड़ की ओर से आमंत्रण दिया गया था किन्तु अब तक मेवाड़ में इसकी कोई चर्चा नहीं; क्यों ? इसका कुछ उत्तर नीचे के प्राप्त विवरण की पंक्तियाँ—जिन्हें हम बड़ी हिचकचाहट और हार्दिक दुःख के साथ कर्णव्य-विवश हो प्रकाशित करते हैं; देनी।

“उदयपुर में पांच-सात चारण सरदारों की हवेलियाँ हैं उनमें एक अरसे से दधिवाड़ियों और महियारियों का पारस्परिक द्वेष एक खुला भेद है। इनके इस द्वेष के कारण मेवाड़ों चारणों की तो अकथनीय हानि हुई और हो ही रही है, किन्तु अब उसका विपैल असर समस्त जाति तक भी पहुँच जाना चाहता है और वह इस तरह कि मेवाड़ की ओर से सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन (जोधपुर) के अवसर पर ही कुछ उन्साही जाति-हितैषियों ने आगामी अधिवेशन को मेवाड़ में आमंत्रित करने के उद्देश्य से निमंत्रण लिखकर हस्ताक्षररूप में अनुमति प्राप्त करने के लिये 'अ० सा० कानीदानजी दधिवाड़िया के पास भी भेजा; परन्तु उपरोक्त जातिहितैषियों में महियारिया भी थे और ऐसे सत्कार्यों को टाल देने के लिये राजकीय भय का काल्पनिक भूत सदा ही उनके गिर पर सवार रहता है इसलिये वे हस्ताक्षर करने से इन्कार हो गये। फलतः दूसरे लोग भी ठिठक गये और निमंत्रण न दे सके; हालाँकि जोधपुर सम्मेलन में पहिले किसी अधिवेशन में शरीक न हुए उतने मेवाड़ी प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे।

पंचम अधिवेशन का स्थान (राजकोट), मेवाड़ से बहुत दूर पड़ता था इसलिये मेवाड़ से

सिर्फ एक-दो व्यक्ति ही पहुँच पाये। जिनमें प्रतिनिधिरूप से तो 'अ० सा० प्रतापसिंहजी महियारिया ही थे। उन्होंने इस विश्वास पर कि ऐसे सामाजिक काम में राजकीय तो कोई बाधा हो ही नहीं सकती प्रत्युत राजकोट-नरेश के समान ही सम्मेलन को हर तरह की सहायता और परमदानी श्रीमान् हिन्दूमूर्ध से भी आशा ही है, और विरोधभाव रखनेवाले भी जब देखेंगे कि मेवाड़ के नाम पर निमंत्रण दे दिया गया है तो वे भी अपने रागद्वेष को छोड़ सहयोगी हो जायेंगे, जातिसेवा की भावना से निमंत्रण दे दिया।

इसी धीन में सम्मेलन के अध्यक्ष महोदय की जब यह शक्त हुआ कि मेवाड़ में सम्मेलन को न आह्वानेवाले लोग श्रीमान् महाराणा साहिब के नाराज हो जाने का डर लोगों को दिखाते हैं, तो उन्होंने श्रीमन्मेदपाटेधर के प्राद्वैत सैमेटरी महोदय प० रामगोपालजी सा० त्रिवेदी को इस संबंध में लिखा। उत्तर में सैमेटरी सा० ने अध्यक्ष महोदय को इस आशय से सूचित किया कि श्रीमान् श्री जी हुजूर का कमी ऐसा खयाल नहीं है, अतः यदि अर्ज करवाई जायगी तो सम्मेलन के लिये बचुसी आशा हो जायगी।

परन्तु परिस्थितिवश विरोधियों की अनुकूलता प्राप्त होना सम्मेलन-प्रेमी भी आवश्यक समझते हैं और वह अभी तक अप्राप्य है, इसलिये अभी तक न तो श्रीमन्मेदपाटेधर की सेवा में अर्ज करवाई जा सकी है और न कोई अन्य प्रबंध सम्मेलन के अधिवेशन संबंधी हो रहा है।

क्या ग़ी अच्छा हो, जिस प्रकार नई पीढ़ी के दधिवाड़िया (श्री कविराजा साहिब शक्ति-दानजी आदि, व महियारिया (अ० सा० प्रताप-

सिंहजी आदि) जातिहित के कार्यों में आपसी रंजिश को बीच में लाना पाप समझने लगे हैं उसी प्रकार इन दोनों खोंपों के वृद्धजन भी समझने लगे।”

ऊपर वर्णन की हुई परिस्थिति में उचित यही प्रतीत होता है कि सम्मेलन के प्रधान पदाधिकारी अपने प्रभावशाली प्रयत्न से मेवाड़ के सम्मेलन-प्रेमियों के अनुकूल, विरोधभाव रखनेवालों को चना दें या फिर स्वयं धीमन्मेदपाटेधर की सम्मेलन के अधिवेशन के लिये स्वीकृति प्राप्तकर मेवाड़ के सम्मेलन-प्रेमियों को सूचना दे दें। और यदि ऐसा करना ठीक न मालूम हो तो फिर सम्मेलन-पदाधिकारियों को अपने नियमादुसार मेवाड़ में या कहीं सम्मेलन का अधिवेशन करने की योजना करनी चाहिये, क्योंकि बिना सम्मेलन के प्रभाव के निकट भविष्य में मेवाड़ में सम्मेलन होने के आसार नज़र नहीं आते।

अंत में हम मेवाड़ के सम्मेलन एवं जाति-हित-विरोधियों से तो राष्ट्रभाषा के प्रमुख कविवरों के शब्दों में निवेदन करेंगे कि—

“सुन्दरता है व्यर्थ, व्यर्थ वह कुलीनता है।  
जिन मूढ़ों में नहीं जाति की कुल भमता है।

जिन में हठ, दुर्भाव भयङ्कर भरे हुए हैं।  
जीते ही वे सभी पूर्णतः मरे हुए हैं॥

धिक् जिसका व्यवहार नहीं कुछ भी सच्चा है।  
अब भी सोचो ज़रा स्वार्थजीवन कच्चा है॥

कहते हो कुछ और, हृदय में और भरा  
करते हो कुछ और कौन यह परम्परा है?

हुआ वही भूभार और जननी दुखदाता,  
परोपकृति के लिये दुःख जो नहीं उग्रता।

रुपयों ही के लिये शास्त्र क्या पड़े-पड़ाये?  
सुकवि बने क्या साक! काव्य कर लिये किराये॥

देख जाति-दुर्दशा पसीजी तनिक न छाती।  
मुखिया फिर भी बने रहे, क्यों लान न आती॥

बिना हुए निःस्वार्थ काम क्या चल सकता  
बिना गले क्या धीज कमी भी फल सकता है?

ब्रह्महीन ‘गृहहीन तुम्हारे प्यारे भाई-  
कलष रहे हैं किन्तु तुम्हें हा! दया न आई॥”

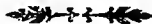
—श्री रामचरित उपाध्याय  
(किंचित् शब्दपरिवर्तन के साथ)

“रहे न भूल के कसी सदान्ध तुच्छ चित्त में।  
सनाथ जान आपसो करो न गर्व चित्त में॥

अनाथ कौन है यहां त्रिलोकनाथ साथ हैं।  
दयालु दीनबन्धु के बड़े विशाल हाथ हैं॥”

—श्री मैथिलीशरण गुप्त

## शोक-सम्वाद



हा! देशभक्त राव साहिब श्री गोपालसिंहजी राष्ट्रधर !!

गत १२ मार्च १९३९ को खरखा के राव सा० गोपालसिंहजी राष्ट्रधर का ६६ वर्ष के आयु में दुःखद स्वर्गवास हो गया। अजमेर जिले में रायगढ़ के कई ठिकाने हैं जिनके स्वामी अमूमन

इस्तिमरदार कहलाते हैं। इन्हीं में से एक स्वर्गीय राव साहिब भी थे। परन्तु अपने अनेक सद्गुणों के कारण अपने जिले से बाहिर सारे राजपूताना के अलगा देश के अनेक भागों में वे सुविख्यात

थे। आजकल राजपूत सरदारों के रहन-सहन और आकृति-प्रकृति से प्रायः विलसिता ही परिलभित होती है किन्तु राव साहिब गोपाळसिंहजी के व्यक्तित्व में राजपूती काकाश और दौर्ब्य मूर्तिमन्त दिखाई देता था। इतना होते हुए भी आप अक्रान्त नहीं थे बल्कि बड़े मिलनसार और सहृदय थे।

राव साहिब में अपने कुल और धर्म का बड़ा अभिमान था और था उज्ज्वल देशप्रेम। अपने धर्मप्रेम के कारण वे हिन्दू-महासभा के एक अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए थे और देशप्रेम के कारण पाँच वर्ष की नज़रबंदी हो सदा के लिये छिपाने के अधिकार से वंचित हुए थे। चारण जाति के साथ राव साहिब का सहज प्रेम

था और वे इसे बड़ी आदर की दृष्टि से देखते थे। उनके निधन से राजपूताना-मालवा का प्रत्येक परित्यक्त चारण अपने को एक प्रकार से निर्जन हुआ-सा अनुभव करता है और राव साहिब के घनिष्ठ मित्र डा० सा० केसरीसिंहजी बारहठ (कोटा) के शब्दों में दुःखी हो कहता है—

“परम उदार त्यागमूर्ति पुंज साहस की,  
ममति को पुजारी दुख देश को सखी नहीं।  
भारती-स्वतंत्र-अलिखेदी मैं बिहँसि चल्यौ,  
दासता विलापिता की धार में बस्यौ नहीं।  
धीरज-धुरीण सहि संकट अटल रख्यौ,  
ईशभक्ति भिन्न अन्य आश्रय गह्यौ नहीं।  
राष्ट्रवर राव श्री गोपाल के सिपाये रस्यौ  
आज राजपूती के नमूने हूँ रख्यौ नहीं ! ! !”

## हा ! कुँवर श्री आईदानजी सा० बारहठ ! !

अन्यत्र प्रकाशित संवाद से पाठकों को ज्ञात होगा कि मयागिया (मारवाड़) निवासी कुँवर श्री आईदानजी सा० बारहठ, पी० ए०, एल्-एल्० पी०, का युवावस्था में ही गत २० मार्च को जोधपुर में अचानक दुःखद स्वर्गवास हो गया।

आईदानजी सा० से लेखक का प्रथम परिचय दि० १९९४ के फाल्गुन में जोधपुर हुआ था और तत्पश्चात् राजकोट-सम्मेलन के अवसर पर कुछ दिन साथ रहने और वहाँ से श्री द्वारिका तक की यात्रा सम्मेलन के अन्य राजस्थानी प्रतिनिधियों के साथ साथ करने का सुखद संयोग प्राप्त हुआ था। इस अल्प परिचय से भी उनके व्यक्तित्व एवं निःछल प्रेमपूर्ण व्यवहार और जातिहित-कामना की जो छाप हृदयपट पर अंकित हुई यह अमिट-सी है। उनके आकस्मिक परलोक-

गमन से ऐसा मालूम हो रहा है जैसे कोई घनिष्ठ मित्र धोखा देकर चला गया हो। हृदय में बड़ी वेदना होती है और निःश्वास के साथ मुँह से रुकते २ शब्द निकलते हैं—

हँसमुख करता जातहित,  
मन न रखे अभिमान।  
कुण अव वो थां ज्यूं करै,  
दिलसुध आईदान ! !

आईदानजी सा० के सुयोग्य व्यक्तित्व से उनके परिवार को तो न मालूम क्या ५ आशायें होगी ही जति को भी उनसे बड़ी आशा थी। जातिसेवा के लिये अपने समय का कुछ भाग वे प्रतिदिन देते रहते थे। सम्मेलन के इस सुखपत्र के लिये भी हर अंक में अपनी तरफ



से एक कहानी देने का उन्होंने वादा किया था और जहां दूसरे कई युवक विद्वान् “चारण” के लिये एक लाइन भी लिखकर नहीं भेज सके हैं, उन्होंने दो कहानियाँ “बाघा कोटड़िया” और “औसर” नामक लिखकर भेज भी दी थीं। खेद है, इनमें से एक भी वे प्रकाशित न दे सकें! “औसर” शीर्षक कहानी में उन्होंने मृत व्यक्ति के पीछे किये जानेवाले भोजों के दुष्परिणाम का कारुणिक वर्णन किया है। पता नहीं, उनके पीछे इस कुरीति का पालन किया गया या त्याग?

जगदम्बा से हम आईदानजी सा० की आत्मा के लिये सुख-शान्ति की प्रार्थना करते हैं और उनके सन्तान परिवार के साथ अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

खेद है कि, नोक (मारवाड़) निवासी डॉ० भनसिंहजी कविया—सब इन्स्पेक्टर पुलिस का देहांत हो गया।

## जरा इस ओर ध्यान दें—



मि० डब्ल्यू० ब्रोम्ज ने नाथ-संप्रदाय एवं उसकी योगिक प्रणालि के विषय में ‘गोरखनाथ एन्ड द कनफेड्रज्’ नामक अँगरेजी भाषा में एक संशोधनात्मक ग्रंथ लिखकर अभी प्रसिद्ध किया है। चारण जाति में भी उस संप्रदाय के चारह योगी हुए हैं, जिनमें महात्मा चरपटनाथ तो उस संप्रदाय के प्रमुख आचार्यों में होने से परम प्रसिद्ध हैं। इतिहास लेखक एम० ए० होनेवाले सजातीय विद्यार्थियों भी क्या उनके विषय में एक ग्रंथ लिखेंगे!

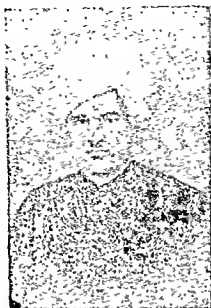
प्रसिद्ध राजस्थानी विद्वान् सेठ श्री कन्हैयालालजी पोद्दार महाकवि श्री सूर्यमल्लजी मिश्रण, श्री स्वस्वदामजी एवं गोस्वामी गणेशपुरीजी की कविता के विषय में आलोचनात्मक लेख लिखने के लिये उनकी जीवनियाँ प्राप्त करना चाहते हैं।

यह यताने की कोई आवश्यकता नहीं कि पोद्दारजी हिंदीभाषा के सुप्रसिद्ध कवि और अलंकारशास्त्र के उद्भट विद्वान् तो हैं ही, अपने को महाकवि सूर्यमल्लजी की शिष्य-परंपरा में भी मानते हैं। हम आशा करते हैं कि, हमारे जो बंधु-इन कवियों की जीवनियों से परिचित हैं, वे फौरन ही उनके इस पते पर लिख भेजेंगे—सेठ श्री कन्हैयालालजी पोद्दार, पोद्दार-भवन, मथुरा



# कुँवर श्री आईदानजी सा० चारहठ (मथाणिया) के असामयिक स्वर्गवास पर शोकसभा एवं श्रद्धांजलियाँ

अत्यंत दुःख की घण्टा है  
कि दिगत सा० २१-३-१९९९  
फर रात्रि के पीने ग्यारह बजे  
कुँवर श्री आईदानजी सा०  
चारहठ, बी० ए०, एड० ए०  
बी० (मथाणिया-निवासी),  
प्रोवेंशनरी नायब हाकिम का  
जोधपुर में अचानक अगमय  
हो में देहांत हो गया !



आप मरुधरा के सुचोम्य,  
कमरेसील, लोकप्रिय एवं होन-  
हार पुत्र थे और अपनी  
वैभवंता एवं विद्वता के कारण  
जागीरदार-एसेसिएशन, जोधपुर  
राज्य; मारवाड़ प्रांतीय चरण-

सभा; श्री उम्मेद चरण-छात्रालय-प्रबंधसमिति  
एवं अखिल भारतीय चरण-संमेलन आदि सार्व-  
जनिक संस्थाओं के मंत्री-उपमंत्री थे और उनका  
सुचारु रूप से संचालन कर रहे थे।

इस शोकसभा में  
निम्नोक्त प्रमुख नागरिकों  
और राज्यकर्मचारियों ने  
भाषण किए थे—

श्री अनूपसिंहजी,  
बी० ए०, एल० एल०  
बी०, असिस्टेंट लीगल  
रिमेम्बरेंसर, जोधपुर;  
श्री द्वारिकादासजी एडी,  
बी० कॉम०, ज्वाइंट  
कैतवाल नं० १, जोधपुर;  
श्री रंगरामजी, एड-  
वेक्टर, जोधपुर; श्री  
रामगोपालजी, अवसर-  
प्राप्त बामदार-श्रीमती

माजी चौहानजी साहिबा; श्री सूर्यराजजी व्यास,  
बी० ए०, विचारद, महकमाकास, जोधपुर; ठाकुर  
श्री दुर्जनसिंहजी सा०, दातर्जी; श्री हरलालजी  
दाक्षिण, जोधपुर; श्री बदरीदासजी कविआ

“आज हम श्रीयुत् आईदानजी बारहठ, वी० ए०, एल्-एल्० वी०, के चिरवियोग पर शोक प्रगट करने के लिये एकत्र हुए हैं, जिनकी अल्पकालीन बीमारी के बाद ता० २१-३-३९ की रात्रि को असांनयिक मृत्यु हो जाने से उनके समस्त मिलनेवालों में गहन शोक एवं उदासी के कारण सन्नाटा छा गया है और उनके परिवार पर अत्यंत भयंकर आपत्ति आ पड़ी है।

मैं यहाँ संक्षेप में स्व० श्रीयुत् आईदानजी की जीवनी और उनके द्वारा संपादित सत्कार्यों का वर्णन करता हूँ।

सन् १९१२ ई० में मधाणिया गाँव के प्रतिष्ठित चारण-परिवार में जन्म लेकर उन्होंने उम्मेद-चारण-छात्रालय में रहते हुए श्री दरबार-हाईस्कूल, (जोधपुर) में दसवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त कर सन् १९३१ ई० में वे जसवंत-कॉलेज (जोधपुर) में प्रविष्ट हुए। वहाँ वी० ए० तक शिक्षा प्राप्त कर सन् १९३५ ई० में काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए, जहाँ से वे एल्-एल्० वी० (प्रथम वर्ष) और एल्-एल्० वी० (द्वितीय वर्ष) -दोनों कक्षाओं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। शिक्षा समाप्त होनेपर सन् १९३८ ई० में उन्होंने बकालत शुरू की, परंतु थोड़े ही दिन बाद उसे छोड़ दिया और जोधपुर राज्य ने उन्हें प्रोवेदानजी हाकिम के पद पर नियुक्त किया। तबसे स्वर्गवास तक वे उक्त पद जोधपुर शहर की कोतवाली में कार्य करते रहे।

अपने संपूर्ण शिक्षा-काल एवं राजकीय कार्य-काल में वे बहुत ही लोकप्रिय राजन मित्र हुए। वे सामाजिक, साहित्यिक, एवं शिक्षा आदि सभी प्रकार के सत्कार्यों में भाग लेते थे। उनका मानसिक दृष्टिकोण अत्यंत विस्तृत और उनकी

सुसंविधौ विभिन्न थीं। अपने सरल स्वभाव, चित्ता-कर्षण शिष्टाचरण, शीतल प्रकृति, सुस्मित अवस्था, खरापन और हार्दिक सच्चाई आदि महान् सद्गुणों के कारण उन्होंने अपने शिष्यों एवं परिचितों के हृदय में बहुत ही सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त किया था। वे अत्यंत सहनशील और उदारवृत्ति के व्यक्ति थे। अपने जीवनकाल में उन्होंने कभी किसी के साथ, जो उनसे मिला, मतभेद या गलतफहमी होने का मौका नहीं दिया। उनमें सबसे बड़ा सद्गुण था परोपकार से प्रेरित उनका जनसेवा-प्रेम। जिसका ज्वलंत प्रमाण यह है कि अपने अल्पकालीन जीवन में वे चार से भी अधिक संस्थाओं के मंत्रित्व का कार्य करने के लिये समय निकाल सके; यथा-मंत्री, मारवाड़-जागीरदार-ऐजेंसिएशन; मारवाड़ प्रांतीय चारण-सभा; उम्मेद-चारण-छात्रालय-प्रबंध-समिति और सहायक मंत्री, अखिल भारतीय चारण-समेलन।

उनके निधन से हमारे देश ने एक उपयोगी नागरिक, जोधपुर राज्य ने एक होनहार पदाधिकारी, चारण जाति ने एक सुयोग्य होनहार नेता और उनके शिष्य-समुदाय ने एक सच्चा एवं अंतर्गत मित्र खो दिया। जीवन के यौवनकाल में इस महान् व्यक्ति का स्वर्गवास मुझे इस अंग्रेजी कहावत का स्मरण दिलाता है—“जिन्हें परमात्मा प्यार करते हैं, वे यौवनावस्था में ही मर जाते हैं।”

बारहठ आईदानजी के आकरिमक, अंगाम-थिक एवं हृदयविदारक निधन से उनके परिवार की जो अमिट हानि हुई है वह वर्णनीय है।

उनके परिवार की सब आशाएं और अभिलाषाएं, जो उन पर अवलंबित थीं सहसा खूब-खूब हो गईं। उनका परिवार जो अभी होरी के त्थीहार के अवसर पर गुरामा था, आज अत्यंत

असहाय और दुःखग्रस्त हो गया। उनके वृद्ध पिता कि जिन्होंने उनको उपाशिक्षा में बहुत कष्ट व्यक्त कर चुका था, उनसे धन का भारी बोझ उठाना, उन श्री जैतदानजी की दशा आज अपने पुत्रपत्न के अचानक छीन लिए जाने के कारण पागल मनुष्य की-सी हो रही है। स्वस्थ आईदानजी अपने पीछे एक असहाय विधवा एवं दो छोटे-छोटे बच्चे छोड़ गए हैं, जिनकी दुःख दशा अत्यंत करुणात्पादक है।

मैं सभी उपस्थित सज्जनों से निवेदन करता हूँ कि वे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से स्व० आईदानजी की आत्मा को चिरशान्ति एवं सद्गति तथा उनके परिजनों को इस असीम दुःख को सहन करने की शक्ति देने के लिये प्रार्थना करें।

मैं उपस्थित महाशयों से यह भी प्रार्थना करता हूँ कि वे स्व० आईदानजी के अत्यंत दुःखी परिवार के प्रति सहायभूति प्रदर्शित करें और जोधपुर राज्य से उनकी असहाय विधवा और छोटे निराधार बच्चों के भरण-पोषण के लिये आर्थिक सहायता प्राप्त करने में सहयोग दें \* ।

इस शोकसूक्त में निम्नोक्त गण्यमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे—ठाकुर श्री देवीसिंहजी सा० (भाद्राङ्गन); ठाकुर श्री अमरसिंहजी सा० (जसाल), सेशान्य जज, जोधपुर; श्री बलदेव रामजी सा०, सिटी पुलिस सुपरिटेण्डेंट, जोधपुर; श्री प्रतापमलजी मेहता, ऐडवोकेट, जोधपुर; श्री हमराजजी सा०, एम् ए०, प्रोफेसर, जसवंत-कॉलेज, जोधपुर; श्री दयामलदानजी उज्ज्वल, एम् ए०, इंस्पेक्टर, कोओपरेटिव सोसाइटीज, मारवाड़; श्री अमृतराजजी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ऐडवोकेट, जोधपुर; श्री सरदारसिंहजी, बी० ए०, पर्सनल असिस्टेंट सुपरिटेण्डेंट, फॉर्ट ऑफ वाइज, जोधपुर; ठाकुर श्री जोरारसिंहजी सा०, पाटौदी श्री सी० जे० फरनेन्सडिस, अध्यक्ष, पशुसुधार-विभाग, जोधपुर; श्री टी० जी० वासी, बी० ए० हेडमास्टर, श्री सुमेरु-स्कूल, जोधपुर; श्री पन्नालालजी बी० ए०, एल्-एल्० बी०, सुपरिटेण्डेंट, हेम सेक्शन, महकमा खास, जोधपुर; श्री दीनदयालजी शर्मा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, वकिल सुपर चाइजर, रेलवे-विभाग, जोधपुर; श्री कविराज

\* श्री अमरसिंहजी ने अजमेर से प्रकाशित होनेवाले “क्षात्रधर्म” मासिक के अप्रैल १९३५ के अंक में भी पृष्ठ ४१ पर श्री आईदानजी के स्वर्गवास का संवाद इस प्रकार प्रकाशित कराया है—

### श्रीयुत आईदानजी वारहट का स्वर्गवास

गत २१ मार्च को मारवाड़ के सुयोग्य विद्वान् श्री आईदानजी वारहट बी० ए०, एल्-एल्० बी०, प्रोवेंशनरी नायब हाकिम का आधिकारिक निधन हो गया। आप बड़े ही कर्मशील एवं लोकप्रिय व्यक्ति थे। कई संस्थाओं का संचालन-भार आप सुचारु रूप से वहन कर रहे थे। आपसे मारवाड़ के बहुत-सी आशाएं थीं, किंतु खेद है कि मारवाड़ को अब उनसे वंचित रहना पड़ेगा। हम समाज के प्रति ईश्वर से प्रार्थना करते हुए उनके शोक-संतप्त परिवार के साथ समवेदना प्रकट करते हैं।

स्वर्गीय वारहटजी को भद्रांजलि अर्पण करने के लिये २३ मार्च को जोधपुर में रायबहादुर ठाकुर जयसिंहजी, ठिकाना—उन्मैदनगर के सभापतित्व में सभा हुई थी, जिसमें अनेक गण्यमान्य सज्जनों की उपस्थिति में शोक-सूचक प्रस्ताव भी पास हुआ था।

तेजदानजी, जोधपुर; श्री वैजदानजी बारहठ, ऐडवोकेट, जोधपुर; श्री छकुर माद्धमसिंहजी सा० चड्ढावा; रावराजा श्री इन्द्रसिंहजी सा०, जोधपुर; हुँवर श्री फतहसिंहजी, विसलपुर; श्री उत्तवल्लजी ऐडवोकेट, जोधपुर; श्री लक्ष्मीदानजी साँद, बी० ए०, जुडीशल सुपरिंटेंडेंट, फथेरी एवं श्री मगरूपमलजी भंडारी, बी० ए०, केतवाल, जोधपुर।

विविध वक्ताओं के भाषण के पश्चात् श्री अमृतराजजी महेता; बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ने अंग्रेजी में शोक-सूचक प्रस्ताव पेश किया, जिसका निम्नलिखित हिंदी अनुवाद श्री रंगरूपमलजी, ऐडवोकेट ने पढ़ा—

“यह सार्वजनिक सभा श्रीयुक्त आईदानजी बारहठ, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, प्रोवेशनरी नायब हाकिम; सेंक्रेटरी, जागीरदार-ऐसेसिएशन; मंत्री, माखाड़-चारण-सभा एवं उम्मेद-चारण-छात्रालय-प्रबंधसमिति और सहकारी मंत्री, अ० भा० चारण-संमेलन के अतामयिक, आकस्मिक एवं दुखद स्वर्गवास पर महान् शोक और उनके शोककुल परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रदर्शित करती है और सर्वशक्तिमान् ईश्वर से प्रार्थना करती है कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति एवं अक्षय शांति तथा उनके व्यथित परिजनों को इस असह्य हानि को सहन करने की शक्ति व धैर्य प्रदान करे।

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि श्रीमान् आईदानजी जो महारा के एक सुयोग्य, होनहार एवं सुशिक्षित नवयुवक थे, राजकीय सेवा में श्रविष्ट होते ही असहाय विधवा और दो छोटे बच्चों को बिना किसी भरण-पोषण के साधन के छोड़कर असमय में ही अचानक चल बसे, यह सार्वजनिक सभा श्रीमान् परम कृपालु हिज हाईनेस श्री महाराजा साहब बहादुर की गर्वनमेंट को, जिसकी दानशीलता, उदारता एवं दुःखप्रसन्न सहायता नौकरों के परिजनों को उनके आपत्तिकाल में सहायता देने की लगन सुविख्यात है, सादर प्रार्थना करती है कि कृपया वह नृत् व्यक्ति के दुःख की हृदयद्रावक एवं दयनीय अवस्था पर पूर्ण सहानुभूति से विचार करे और उनकी विधवा के लिये आजीवन भरण-पोषण एवं छोटे बच्चों की शिक्षा के लिये शासतौर से समुचित मासिक आर्थिक प्रबंध करने की परवर्तिता फरमावे।”

इस प्रस्ताव को सभासदों ने अपने-अपने स्थान पर खड़े होकर स्वीकार किया और उसको एक नक़ल श्रीमान् हिज हाईनेस महाराजा साहब बहादुर की सेवा में भेजने को अध्यक्ष महोदय के प्रार्थना करने के पश्चात् यह सभा विसर्जित हुई।

—सहकारी संपादक, हिंदी विभाग।

## महान् आत्मा

(रचयिता-श्री गुलाबचंद्रजी चूड़ामणी, अध्यापक, सुमेर-स्कूल, जोधपुर)

देहा

भलपण बहु सदगुण भयों, विसद हुतो विद्वान।

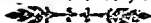
(हा!) क्यूँ की ओछी ईसवर, (यारी) ऊमर आईदान! ॥ १ ॥

जात-सुधारक हो जघर, प्रिय छात्रालय-प्राण।

(हा!) क्यूँ की ओछी ईसवर, (यारी) ऊमर आईदान! ॥ २ ॥

सद्ब्रिचा अर सुजनता, मुख पर मृदु मुसकान।

(हा!) क्यूँ की ओछी ईसवर, (यारी) ऊमर आईदान! ॥ ३ ॥



## राजस्थान केसर



देशभक्त कविवर ठाकुर श्री केसरीसिंहजी सा० सौदा,

जन्मदाता—अग्रिल भारतीय चारण-मंडलन

आयु ५९, वर्ष

देहा

फाल्गु सं० १९८८ वि०

मुख्य राजनैतिक रसिक, सुजस-सुगंध-समीर ।

'केसर' सम केसर जहाँ, कुल चारण कसमीर ॥

श्री शशीभाई बाटी (कलाल) के वंशज से ]

—श्री अध्यापिका रत्न (अलवर)

## યાચના

ચાચક : આઇ શ્રી પુનાદે

રાગ-પ્રભાતી

લણ્ણતીયુ' કાનજ કાળા ! મીઠી મેરસિયુ'વાળા ! ૨૬

પાંચસે' તો મેચે પોઠિયા દેજે, પાંચસે' ગુણાળા;  
લાં મી આંચડેલીએ ચારણ દેજે, ગાયુ' આચાળા. લણ્ણતીઃ

પાંચ તો મેચે પૂતર દેજે, પાંચ, છાગાળા;  
છૂટી તો મેચે ધીહુડી દેજે, આણાં લોગાળાં. લણ્ણતીઃ

ડહી ને મેચે ડાયશ દેજે, અદીહુના માળા;  
મે'માતુંની મેઠણુ' દેજે, પીનારા ભોળા. લણ્ણતીઃ

કાળી ને વળી કુઠિયુ' દેજે, ગાયુ'ના ટોળા;  
વાંકે નેણે વૈવાડ દેજે, હુમરડે માળા. લણ્ણતીઃ

ગોમતી કાંઠે ગામ અમારાં ને, અરડા અમરો દેશ;  
ચારણ' પુનાદે' એમ ભણે, મોસે લીલો રાખે નેસ. લણ્ણતીઃ

સમ-વાસ, મર્દપ્રદેનનો પતિ અને તેનો જ મહત્ત્વ પરિવાર, ગાય, બેંસનાં ટોળાં, દૂધ-  
 દીની ડોળો, દાતારી અને ચારણ જનનિના પ્રાચીન વ્યવસાય-વેપારી પોઠોની ભિતે પ્રભાતે  
 શ્રીકૃષ્ણચંદ્ર પાસે યાચના કરી છે. એટલું જ નહિ પણ 'મેસે લીલો રાખ્યે નેસ' એ  
 પંકિતથી આજના ચારણ-માનસ માટે વિરલ પોતાના પાંચ પાડોશી બધે સમસ્ત નેસ-  
 વારીઓને પણ સુખી વાંચી દિદુધર્મની 'પાડોશીધર્મ'ની ઉદાત્ત ભાવના વ્યક્ત કરી છે.  
 ને કે તેમાં આજસુઓના ઉતારા સમાં 'ડેલીને ડાયરા' માટે 'અશીણનાં ગોળાં' પણ માગ્યા છે,  
 પરંતુ એ તો ગયા જમાનાની શાંતી પરોણા-ચાકરી અને ઉદારતાની એક વિશિષ્ટતા લેખાતી.  
 જતાં એ એટલો દોષ આદ કરીએ તો નેસવાસી ચારણોની સ્વાભાવિક ભાષામાં 'રચાયેલું' આ  
 ગ્રીત થાણું અર્થયુક્ત અને મુંદર છે.

—સંપાદક : 'ગુજરાતી વિભાગ'



## આજનું આપણું માનસ-ચિત્ર



લેખક:—શ્રી જીવણલાલજી નાથાભાઈ વરસડા, ભાદરવા (મધ્ય ગુજરાત)

આમાં નથી કટાક્ષ કે પક્ષપાત, તેમ નથી સ્નેહ કે દ્રેષ; માત્ર સર્વ વ્યાપી વિશુદ્ધ પ્રેમની દિવાલ પર અંકિત થયેલું દેશ, કાળ અને સંસ્થાઓ પરત્વેનું આપણું-ચારણું હાલનું માનસચિત્ર-દર્શન છે.

આ ચિત્રની રેખાઓ દોરતાં કલમ અટકે છે, ફેરવ અને જવાબદારી તેની સ્વતંત્રતા ખેંચી લે છે. પરંતુ સમભાવના દેશમાં તો એ ચિત્ર ક્યારનું ચે પ્રગટ થઈ જાય છે, અને તેથી જગતના અરીસામાં આજે તે દેખાય છે. એ ચિત્ર વ્યક્તિનું છે કે સમાજનું? માયાનું છે કે બ્રહ્મનું? કોણ જાણે! નરો વા કુંજરો વા !! લેખકે પણ સત્યનારાયણનો થોડોક દ્રોહ પોતાની અપૂર્ણતાને લીધે કરવો જ પડશે ને? આજનું નામ માયા; ત્રિલોકને વશ કરનાર મહામાયા. લોકતા જનનારને પોતાના ખર્ચપરમાં ખપાવી દેનાર એ જોગમાયાના પુત્રો-

ચારણોને આ ચિત્રદર્શનની સમાલોચના જરૂર દિશાસૂચક છે, અને તેથી ખિચારી કલમ તેને ન છટકે અપૂર્ણ સ્વરૂપમાં એ પ્રગટ કરે છે; એમ સમજવાયકો વિચારશે: સમજી પુરૂષો અસારમાંથી સાર બ્રહ્મ કરશે: હંસવૃત્તિના વિચારકોનીરક્ષીર જીવંત કરશે: તો સમજશે શું? આજનું આપણું માનસ !

આપણું માનસ સમજવાને પ્રથમ આપણે કોણ છીએ, એ વિચરીએ તો જગતના મહાન અરીસામાં આપણે પોતે જ રજી કરેલા આપણા આ માનસ-ચિત્રનું દર્શન કરી શકીએ. એટલુંજ નહિ પણ ભૂતકાળ અને વર્તમાનની વચ્ચે ઉભી થયેલી આંટીઓનો જીકેલ લાંબી ભાવિ નવસર્જનની ક્રિયામાં આપણા પોતાના લાગ્યવિધાતા તરીકે આપણે ઉત્તમ ક્ષણો આપી શકીએ. બીજાના ભાગ્ય પર આપણો આધાર ન રાખતાં, એટલે કે પોતાનાં સ્વતંત્ર જીવન પાણીને મૂલ્યે

વેચી ન નાંખતાં આપણે આપણી કોમના અને સ્વદેશના ભાગ્યસપ્તા બની શકીએ. સમાજની સેવા માટે સુંદર તૈયારી સાથે દેશ અને જાતિના સાચા સુપુત્રોને સ્વકર્તવ્યની નિઃસ્વાર્થ પ્રેરણા આપી, આપણે દેશ અને જાતિની સ્વતંત્રતા યુક્ત સાચી ઉત્તતિ સાધી શકીએ. આપણી સ્વતંત્રતાપ્રિય-સત્યપ્રિય-કર્મવીર દેવજાતિનો પુરાતન આદર્શ, જીવનમાં મૂકી ભારતવર્ષની જૂની જાહોજલાલી અને મુક્તિનાં સ્વપ્ન સિદ્ધ કરી શકીએ. દેશ અને સમાજની મુક્તિ માટે બલિદાન બનેલા રાષ્ટ્રવીરોને પ્રવિત્ર અંજલિ આપી ચારણ તરીકેનું જીવન સફળ બનાવી શકીએ શુદ્ધ ક્ષાત્રતેજને અજવાળી શકીએ. શિષ્ટ સાહિત્યના સાચા પૂજારી બની દેવચારણોનો સજીવન અક્ષરો લખવાનો હક્ક હાંમેશાં માટે જાળવી શકીએ. કોઈ પણ જાતિને સખળ બનાવવા માટે આ નવયુગમાં આથી વધુ જાંચો આદર્શ શો હોઈ શકે ?

આપણે કોણ છીએ; કેવળ છીએ, શું કરીએ છીએ, એ પ્રશ્નો જો આપણે આપણા આત્માને પૂછીએ તો આપણાં સર્વ દુઃખોનો એક સામટો અંત આવી જાય.

પરંતુ એ પ્રશ્નો પૂછે કોણ ? જગત બધું જ્યારે સદીઓ જૂની નિદ્રા ખંખેરીને કર્તવ્યને પથે દોરાર્થ રહ્યું છે, ત્યારે આપણે તો હજી વધુ જાંધવું છે. ક્રાંતિનો નૂતનયુગ સમીપ આવતો દેખાય છે, અને તેનો પ્રવાહ વંશપરંપરાના જંઠાધારીઓના સહેલા હક્કોનો નાશ કરતો સૌ કોઈને જોઈ શકે છે. ત્યારે આપણે તો નિદ્રા સમાધિની સ્થિતિનો અનુભવ લઈ રહ્યા હોઈએ તેમ આંખો મીંચીને, ભાગતા યુગની ગર્ભ રાત્રિનાં પુરાતન સ્વપ્નાં સેવીએ છીએ. આજે દુનિયામાં શું બની રહ્યું છે, આ કર્મભૂમિમાં આપણું સ્થાન કયાં છે; તે જાણવાને, જોવાને, વિચારવાને કે સાંભળવાને પણ આપણને નથી. પડી ત્યાં હક્કરક્ષા કે કર્તવ્યની પ્રેરણા તો સૂઝે જ કયાંથી ?

કેટલા સંખેદાશ્ચર્યની વાત છે કે, જે દેવત્વનો આપણે દાવો કરીએ છીએ, તે અત્યારે કેટલી અધોગતિએ પહોંચ્યું છે; તેનો ખ્યાલ સરખો પણ આજે આપણે કરતા નથી ! ખરે, દેવ હોવાની વાત તો દૂર રહી, પરંતુ મનુષ્યનામને યોગ્ય શ્રેણીની ખીલવણી કરવાને પણ આપણે આજે અશક્ત બન્યા છીએ ! એક વખત માની

લઈએ કે મનુષ્યજીવનથી દેવજીવન જરૂર  
 થેઈ છે, પરંતુ આને આપણે જે પ્રકારનું  
 જીવન જીવી રહ્યા છીએ, તેમાં દેવજીવન  
 કે મનુષ્ય જીવનનો છાંટો સરેજો થે છે ?  
 ‘યતો ઋષ્ટ, તતો ઋષ્ટ’ જેવી નિંદગી  
 પસાર કરવી એ તે કાંઈ જીવનની લેખાં છે !  
 આપણે ચારણ તરીકે રાજ્યોના આશ્રિત-  
 અને વફાદાર હોવામાં ‘ગર્વ લેઈએ છીએ’  
 પરંતુ આપણા બાપદાદાઓ અને ચારણજાત-  
 તિના અનેક નરસત્તાઓ ખરી અણીની વળતે  
 જે રાજ્યોની બોળાધરીઓમાં અને સમર-  
 ભૂમિમાં હરોલે ઊભા રહી ખેતાના લેબ  
 અને ભુખના બળ વડે મુંડકડીમાં પ્રાપ્ત  
 કરેલા ગામ-ગિરાસો, એ રાજ્યોના  
 આજના આપણા શુભેચ્છક ગણાતા  
 મુકુટધારીઓએ-પ્રતાપી ક્ષત્રિયવંશના  
 વારસોએ-આજના મુધરેલા કહેવાતા  
 આપણા બાપુઓએ દમનનીતિ અને  
 કુટિલતા વડે સામગ્રી જપ્ત કરી લીધા  
 છે ! જામનગરના બારાડીના વીરકૃતિના  
 તુંબેલ ચારણોનાં બાર ગામ હાથ ધરીને  
 ભિક્ષાવૃત્તિમાં નહિ, પણ મુંડકડીમાં  
 મેળવેલાં હતા. એ ગિરાસના તેઓ સાચા  
 હક્કદારો હતા. પરંતુ સત્તાના મદમાં  
 અંધ બની-પોતાનું પશુબળ દાખવી  
 જેને આપણે ‘જામનાં ઘર કે રામનાં

ઘર’ કહીએ છીએ, એ પવિત્ર ઘરના  
 મહુમ વિશ્વવિખ્યાત અધિપતિએ ચારણ  
 જાતિના પુરાતન સંબંધને ઠોકરે મારી  
 કંટે કલેજે હોઇયાં કરી લીધાં છે. વધુ  
 હુમ્મીયનો વિષય તો એ છે કે, એ વીર તું-  
 બેલ ચારણોના બલિદાનોના કોઈ ક્ષત્રિય  
 જાયાએ પક્ષ પાળે’ લીધો નથી. અને  
 આપણે ખુદ ચારણો તો એ નૃપવરની  
 રાજનીતિ અને કિકેટકુશળતાનાં આજ  
 સુધી સહસ્ત્રંશુએ વખાણ કરતા આવ્યા  
 છીએ ! ‘જામ-રામ’ ના ઘરવાળાં એ  
 મહુમ નૃપતિએ એ વખાણ એકથી વધુ  
 વખત સાંભળી બારગામ ગળી ગયાના  
 સંતોષના ઓડકાર બાધા હતાં. તુંબેલ  
 ચારણોના ગામ ગિરાસ જાય તેમાં પો-  
 તાને વિશુદ્ધ ચારણ તરીકે માનતા,  
 ‘પરજ’ અને ‘માર’ વંશના સપૂતોને  
 શું ? અને એ નિષેધોમાં હાલમાં ખંસા-  
 જિયાની આસપાસના ચારણોના ગિરાસ-  
 પર એ ઘરના હાલના નૃપતિ તરફથી પણ  
 કાંઈ આદરના ઓળા ઊતરે તો તેમાં  
 નવાઈ જેવું શું ?

આવી તો ઠેર ઠેર હોળી સળગેલી  
 મોજૂદ હોવા છતાં, પણ આજના આપણા  
 આગેવાન ગણાતા પૂજ્ય કવિરાજે સિંહની

પાસે બકરી આંખો મીંચીને બેસી જાય તેમ જ્ઞાન બંધ કરીને જીવંતે મૂવેલા બની શ્વાસ ખેંચી રહ્યા છે ! દેશી રાજ્યોના એવા કલંકિત ઇતિહાસનાં તાજાં ઉદાહરણો મોજૂદ હોવા છતાં પણ ક્ષત્રીવટના સ્થંભ ગણાતા આજના એ રાજવીઓને અમારા કવિરાજે એક શબ્દ પણ શિખા-મણુનો કહેવાની હિંમત દાખવી શકતા નથી. ત્યાં ધરણી કે સત્યાગ્રહની તો વાત શી કરવી !

રાષ્ટ્રેનું ચણતર ચણવામાં જે જાતિએ એક વખત નિઃસ્વાર્થવૃત્તિથી આગેવાની ભર્યો ભાગ લઈ દોઢશૂરાનું બિરુદ પ્રાપ્ત કર્યું, જેના કુળમાં જોધપુર, ખીકા-નેર, લાવનગર જેવાં વિશાળ રાજ્યોના પાયા નાંખનાર કરણીજી, ખોડિયાર આદિ જગદંબાઓના જન્મ થયા, જેણે દેશને અમર કવિઓ, યોદ્ધાઓ, સત્યાગ્રહીઓ અને પ્રભુભક્તો આપ્યા, તે જાતિ આજે તેની કીર્તિનો આશ્રમતો સૂચક જોઈને પણ દિલગીર થતી નથી, બદકે પોતાની પડતી દશાનો તેને ખ્યાલ સરખો ચે

નથી ! જેના નિવાસસ્થાને એક વખત આજ્ઞાદીનો મુલકમશહૂર ધ્વજ ફરકતો હતો, જે અડદામાં પણ ચેતનના મંત્ર કૂંકી ‘વણપદિયો વાતું કરનાર’ હોય તો ચે ‘ચોથો વેદ’ ગણાતો, તે ચારણને આજે જોઈએ છીએ, તો જોવા મળે છે, ગુલામી માનસ અને નિસ્તેજ ચહેરો !

આપણાં આજનાં કર્મોનો આપણે ભલે ઠાંકપિછોડો કરીએ, પરંતુ કુદરત એને શું સાંખી લેશે ? એ તો દોકડા-બદામનો હિસાબ ગણીને તેનો બદલો આપશે; અને તેનો ભોગ આપણે તથા આપણી ભાવિ પ્રજાને પણ થવું પડશે.

આજે આપણું સમાજમાં શું સ્થાન છે, તેનો આપણે કોઈ દિવસ વિચાર સરખો ચે કર્યો છે ? શું આપણે અધઃ પતનને કિનારે પહોંચ્યા નથી ? આપણી સામે આજે કયા કયા મુખ્ય આદરો છે ? આપણા ગુણ-કર્મોનું આપણે કોઈ દિવસ આત્મ-નિરીક્ષણ કર્યું છે ?

બિલકુલ નહિ. આપણે તો તમો-ગુણની ગાઢ નિદ્રામાં આસુરી સ્વપ્નાં

સેવ્યા કર્યા છે. રાજદરબારી વ્યસનોના અક્કરમાં પડતાં 'હોલ્દ દરાજ હોસ્તા દારણ' એ ઉક્તિને કવિ-કલ્પનાની વસ્તુ બનાવી આપણે આપણા આરોગ્યને અને ભાવિ પ્રજાના શરીર-બંધારણને પારાવાર નુકસાન પહોંચાડ્યું છે.

ઉદ્યોગ અને વિદ્યાને અભાવે સંગઠન વિનાના આજના ચારણ અને ભુતકાળના સ્વાર્થત્યાગી-બલિદાનની આહુતિ બળનાર ચારણ વચ્ચે ઉત્તર અને દક્ષિણ ધ્રુવ જેટલું અંતર પડ્યું છે. 'હજારો કંઈ નિરાશામાં આજનો ચારણ એની' અમર આશા, શુભાવી બેઠો છે. એના સમાજ-જીવનનું નાવ આજે અધઃપતનના વમનમાં ડામાડોલ થઈ રહ્યું છે, એની જીવન-નૌકાનો સૂકાંતો આજે ખોવાઈ ગયો છે. એની પાસે આજે નથી પ્રાચીનજીવનકેનથી નવજીવન. લુગડાનો મેલ લુગડાને ખાય એવી અધમ પરિસ્થિતિ આજે તેની સમક્ષ ખંડી થઈ છે. ગમે તેમ કરી પાપી પેટનો ખાડો પૂરવો, પેટપાણુ બનીને પણ જીવન વીતાવવું, એ આજે એનો મુદ્રાવેળ બન્યો છે.

અને આવી જીવનમૃતક સ્થિતિમાં જે આપણે 'મજે ન હોદે સાવવો, મૂઠો તજો મરજે' ની પેઠે આપણી કહેવાતી પ્રાચીન મહત્તાની ખંચાલી હુનિયામાં રાચતું આપણું માનસ જાદલી શકતા નથી, એ શું બોછા હુખનો વિષય છે? આપણે એટલે આભમાંથી પડેલી કોઈ એકલવાયી દેવી વસ્તુ; આપણે એટલે કાયમની ફર્દ કલાસની ટિકિટ. કપાળી લાવેલા માનવત, સુસાદરો; આપણે એટલે સંપૂર્ણતા ને શ્રેષ્ઠતાની પ્રતિમા; આપણે એટલે અનાદિ કાળના દેવોના બાપકર્મો આગસુ હીકરાઓ. તેથી આપણને અને જગતને કરોય સંબંધ નહિ; એમ પણ આપણે કદી લેવાનું નથી. આપણે એટલે ખુશામદિયા, આપણે એટલે હાજ હા, બાપુ કહેનારા કે સીધા ઝેર જેવા પણ નહિ. આપણે એટલે રાષ્ટ્રદ્રોહી-અતિદ્રોહી કે ભિક્ષુકોની હરોલ માં બિલા રહેનારાં સ્વમાનહીણ પેટભરા પણ નહિ. અને જો આમાંનું થોડુંક પણ આસુરી ભાતું, આપણી પ્રાસે હોય તો કુલીન કે દેવપણાનો, ક્ષત્રિયોના ઉપ-દેશકોનો, સમાજના સાચા પ્રચારકોનો, શિષ્ટ સાહિત્યના હિમાયતીપણાનો આપણો દાવો આપણે હિંદીમહાસાગર

માં, ડુબાવી આવવો; તે આપણા તથા આપણી ભાવિ પ્રજા માટે આવકારદાયક લેખાશે. કેમકે પ્રકૃતિદેવીના એક મહા નિયમ છે કે, આગળ વધો કે નાશ પામો.

હુનિયાની બીજી સંગઠિત જાતિઓ સંકલને, દીક્રુ જનાવવાના અને અશુદ્ધને શુદ્ધ બનાવવાના ભગીરથ પ્રયત્નો કરી રહી છે. ત્યારે આપણે દેવદુહ્યવાળા દીલાને સંકુ અને શુદ્ધને અશુદ્ધ બનાવવામાં મજા માણીએ છીએ. યુગ વિરોધી આ ક્રિયાની આપણને જે શિક્ષા થઈ છે, તેનાથી હજુ વધુ કેમ નહિ થાય! આપણી સન્મુખ આપણા એક જાતિજંધુની યોગ્ય પ્રશંસા થતી હોય, અને તેના ઉપકાર તળે આપણે દબાયેલા હોઈએ, તો એ આપણે તે સાંભળતાં જ માંડું ફેરવી લઈ પેલા ચોરના દીકરાની પેઠે કાનમાં આંગળીઓ કે દનાં પેલ ખોસી સાંભળીએ છીએ. અને પૃથ્વમાં પૂછાતા હોઈએ તો એ વાતને મંજામાંથી વાઢવાને કમર કસીએ છીએ. આનું નામ જ તેજો-દ્રેષ. આ ગુણ પણ દેવપણના વારસામાં આપણ-ચારણને ભાગે. વધારે આવેલો જોવામાં આવે છે. અને ત્યાં પૂછી ઉત્તરિની આશા હોય જ શેની!

એક પ્રશ્ન વિચારીએ: શું આપણે ક્ષત્રિયો પર ઉપકાર કરીને અધ:પતનને પાંત્ર થઈ છીએ? ના, તેમ નથી. એ માટે આપણે પોતે જ જવાબદાર છીએ. આપણા અને પશ્ચિમની પ્રજાના માનસનું પૃથકકરણ કરીશું તો સ્પષ્ટ જણાશે કે આપણે આપણા સમાજમાં વિભાગ વધારી સંગઠન શુભાવ્યું. તેમણે સંપ અને એકચ વડે આપણા જેવી ભાષતી પ્રજાઓ પર સ્વામીત્વ સ્થાપ્યું. આપણે હાથ હાથ! કરતા સંસારને વંજગી રહેવા છતાં 'બ્રહ્મ સત્યં જગન્મિયા' એ સૂત્રના રટણમાં માર્યાને ખેટી માની, ત્યારે તેઓ તેને સાચી માની તેના ત્રિશુલ્કાત્મક ગુણદોષને તપાસી વળ્યા. આપણે આત્મા ને ઘટ-ઘટ વ્યાપક બ્રહ્મસ્વરૂપ માનવા છતાં એ શુદ્ધ તત્ત્વના અનેક વિભાગ પાડી તેને ચૂંધી નાંખ્યું, તેમણે અશુદ્ધ માંથી અસાર દૂર કરી હંસવૃત્તિથી સાર અહણ કર્યો. આપણે સંસાર-મંથનમાંથી દ્રેષ લઈ પરાંધીન અને પતીત થયા, તેઓ પ્રેમ કેળવી સંતત્ર બન્યા. કુદરત ગુપ્ત રીતે પણ પક્ષપાત રહિત દરેકને તેના કાર્યનાં ભલો-ખૂરો બદલો આપ્યે જ બલ્ય છે. આપણને પણ આપણી વૃત્તિનો બદલો મળ્યો છે. અને વધુ વળત એ વૃત્તિ આહુ રાખીશું તો વ્યાજ સાથે વધુ મળશે!

## ચારણ એ વખતનો અને આજનો



[ સંવત ૧૬૩૩ ના આસો માસમાં ચારણ હિતવધોક સલાતું તૃતીય અધિવેશન સોરઠમાં વડિયા યુકામે ભરાયેલું; તે પ્રસંગે કાઠી-દ્વત્રિય સમાજના હિતાર્થે પ્રકટ થતા ‘ કાઠી રાજપૂત ’ માસિકના સુચોગ્ય તંત્રી કાઠી રાજપુરોહિત શ્રીયુત લગવાનજીભાઈ સાવરકરે એ પત્રના જન્યુઆરી સુને ૧૬૩૮ ના અંકમાં ‘ શ્રી વડિયામાં ચારણ સંમેલન ’ એ નામથી એક વિસ્તૃત અને મનનીય લેખ લખેલો. તેમાંના નીચેના ભાગ મહત્વનો હોવાથી અત્રે ઊતારીએ છીએ.

તંત્રી: ગુજરાતી વિભાગ ]

“.....ચારણ જાતિ ભારતવર્ષમાં એક દેવપંક્તિની જાતિ ગણાય છે. એક ધંધાદારી માનવ જેમ પોતાનાં બાળકને પોતાનો ધંધો શીખવતો જાય છે, તેમ પૂર્વેના ચારણોએ પોતાના સંતાનોને સત્ય અને સદ્ધર્મના સિદ્ધાંતો શીખવ્યા હતા. કર્નલ જેમ્સ ટોડ અને અલેક્ઝાંડર કિન્લોક ફાર્પિસ મેવાડ અને ગુજરાતના ઇતિહાસ લખતાં હતા, ત્યારે ભારતવર્ષના તેત્રીસ કરોડ માનવોમાંથી કોઈ પણ કોમના વિદ્વાનોની વાણી પર ભરોસો નહિ રાખતાં માત્ર ચારણ કોમના એ વખતના માત્ર દસ બાર કવિઓ પાં ભરોસો રાખી તેમણે મહાન ગ્રંથો આલેખ્યાં હતા. આજે ટોડ રાજસ્થાન અને રાસમાળા એ એ ગ્રંથો ઐતિહાસિક ગ્રંથોમાં અમૂલ્ય ગણાય છે. એ અમૂલ્ય ગ્રંથો ચારણી જીવંતોએ સાચવી રાખેલી બીતાઓના આખાદ નમૂના છે.”

પ્રાચીન જમાનામાં ચારણગ્રંથિત રાજદરબારે પૂજતી અને આજે પણ પૂજાય છે. ચારણ એટલે ખાનદાની અને ઈશ્વરી વાક્યોની ટંકશાળિ: ચારણની એક જ જીભાને ફાંસીના માંચડા પર ચડેલા ખૂનીઓ અને રાજદ્રોહીઓ મુકત થતા: ચારણની એક જ જીભાને અગણિત બાળવિદ્યાળાં ઘરોમાં પાઠશાળાં બંધાતાં: ચારણની એક જ જીભાને જૂનાગઢ જેવાં મહાન રાજતખતો પણ ઊધાવી પડતાં.

જે વખતે ગાયકવાડી પેશ્વેશી ઊઘરાવાંતી ત્યારે દરેક નાંદાર તાલુકદાર-ગિરાસદારના ચારણો હામી થતા. ચારણ જેનો હામી થાય એને સરકાર પણ ન બોલાવે ! આટલો બધો એ જમાનામાં ચારણ કોમ પર વિશ્વાસ હતો. આજનો ચારણ અને એ વખતનો ચારણ જમીન-આસમાન જેટલું અંતર ખતાવી રહ્યો છે.

ચારણોને ઘરે ગામ-ગિરાસ હતાં, અને છે. એ બધા ગિરાસો તેમણે ખતાવેલી ખાનદાનીના નમૂનાઓ છે. એ ગિરાસો ચારણના એકવચનીપંથુની શાખ પૂરે છે: એ ગિરાસો ચારણની શાહુકારીના થાળરૂપ છે. ચારણસંસ્કૃતિનો અગ્નિ ભાણસ બલે આ વાંતને ન માને, પણ ચારણસંતાન એ જૂના જમાનામાં ભારતનું જવાહીર ગણાતો; અને અત્યારે પણ ફેટલાક લાઈઓ ચારણોના ભૂપણરૂપ મોજૂદ છે, એ જાણી અમારું હૃદય ઠરીને હિમ થાય છે.

ચારણ રાજદરગારે અને ચોરે બેસી કાળ્યો લલકારતો તેમ નહિ, પરંતુ રણક્ષેત્રમાં પણ તેની હાજરી રહેતી. લાલા, બરખી અને તલવારોનાં યુદ્ધ વચ્ચે ચારણસંતાન ઊભો રહેતો, અને દરેક ક્ષત્રિયમાં શૂરાતન રેડતો. રણક્ષેત્રમાંથી નાસી જનાર રણયોદ્ધાઓને પોતાની દિવ્યવાણી વડે પાછાં રણક્ષેત્રમાં લાવી શકતો. જેના પક્ષે ચારણ હોય, તેનો વિજય જ થાય. ચારણ જે યુદ્ધમાં ન ગયો હોય તે યુદ્ધમાંથી સેંકડો યોદ્ધાઓ, મુજદદો અને સેનાપતિઓ ચારણની દિવ્યવાણીના અલાવે પરાજયની કાળી ટીલી લઈને પાછા આવતા.

ચારણીકાળ્યો એ ભારતભૂમિની અમૃતધારા છે. ચારણીકાળ્યોએ, અનેક માનવોને મુગ્ધ બતાવ્યા છે. વાર્તાઓ, ગાથાઓ, પવાડાઓ, દોહાઓ, સમસ્યાઓ, ઇતિહાસો, આખ્યાનો, એ બધાં ચારણનાં કોઠાસંતાનો છે. ચારણીકાળ્ય આજ પણ બધાં કાળ્યો કરતાં અવલ ન બેરે પહોંચે છે. ચારણીકાળ્યોના અર્થ જેવાં તેવાં ભાણસોથી યદ્ય શકતા નથી, કારણ કે એ દેવીભાષા દેવીપુત્રોના મુખમાંથી જ નીકળેલી છે. માટે જ એનું એ મહત્ત્વ છે.



આજકાલ ચારણોએ પોતાની સરસ્વતીને અવળે રસ્તે દોરી છે. દુર્વ્યસનો અને કંગાલિયતમાં ડૂબી જઈ પોતાના ચારણધર્મને ખત્તી કરી નાખ્યો છે. અને એના પ્રતાપે ભારતની હીલી-વાડી સમુદાય ચારણકુળ થંરપારકર અને સહરાતા રણ જેવું ભંગાતકળતું બન્યું છે. લાપશ્ચી અને ચોખ્ખાના સ્વાદમાં આજ ચારણીવિદ્યા ગિરવી મૂકાણી છે.

દરેક કોમ પર કુદરતી નિયમે પોતાની બળ માધરી છે, તેમ ચારણ ઉપર પણ કુદરતે પોતાનો ભરતીઓટનો અવગ નિયમ સ્થાપિત કર્યો છે. છતાં જે દેવીપુત્ર તો દેવીપુત્ર જ રહ્યો છે. સ્ત્રીબળતિને દેવીની ઉપમા અપાય છે, છતાં સ્ત્રીથી જન્મેલા બધા દેવીપુત્ર નથી કહેવાતા. એ તો ચારણને જ એ પ્રમાણુપત્ર મળ્યું છે.

ચારણમાં કાવ્યશક્તિનો વારસો એ જ દેવીપુત્રપણનો તાદૃશ પૂરાવો છે. લાંબો અને કરોડો માણસોમાં ચારણસંતાન કહી પણ છાનો ન રહે. ચારણ એની વાચાળશક્તિથી પોતાની ઝોળખાણુ આપે છે. વાચાળશક્તિ એ એને મળેલો વારસાહક્ક છે.

આજનો ચારણ પૂર્વના ચારણોને હિસાબે ઘણો જ લાસ્ટ નંબર ખેંચાવે છે. આજના ચારણોએ પોતાની કેટલીક વિદ્યા નોકરીમાં બેટી છે. કેટલાકે પોતાની સત્ય કહેવાની જૂની પ્રણાલિકાને અસત્યના રૂપમાં ઊઘાડી કરી છે. રામાયણ, મહાભારત અને ભાગવત જેવાં ધાર્મિક અને ઐતિહાસિક પુસ્તકો ચારણોના કોઠામાં રહેતાં, હાલ એમાંનો એક પણ શબ્દ ચારણીશબ્દકોશમાં નથી મળતો. આજ બટકુ રોટલા માટે ચારણોએ લોલિયાને લોન અને વિક્રમની શ્રેણીમાં મૂકી દીધો છે.

આજ તેમણે પરદેશીઓની કલમ નીચે ઇતિહાસોને ફેદ કરાવ્યા છે. મને ખીક લાગે છે કે, સાચા વીરનરોની રહી સહી કીર્તિગાથાઓ પણ પાંચ દિવસ પછી ચારણોના કોઠામાંથી વિદાયગીરી લેશે. આજના કેટલાક પેટમેલા ચારણોએ

કેટલુંક જગતને ચરણે ધરવા જેવું જ્ઞાન પોતાના કોઠામાં સાચવી રાખી લોંબ લીધા જેવું મુડદાલ કરી નાંખ્યું છે. આજનો ચારણ પૂર્વના સત્યવક્તા ચારણોને લોંબા પાડે છે. પૂર્વનો ચારણ મહાન દેવી પત્રકાર હતો. આજનાં પત્રો ને કામ કરી રહ્યાં છે, એ કાર્ય પૂર્વે ચારણોનું હતું. દાનવીરો, નરવીરો, સત્યવીરો અને ધર્મવીરોની કીર્તિ આજણીની જ મારફતે દેશપરદેશ પહોંચી જતી. ચારણ એટલે દાનિયકુળનું ત્રાજવું; સમસ્ત દાનિય વીરોના ગુણ-અવગુણના કાર્યવ્યવહારો ચારણની છાંયે જ તોળાતા. ચારણસંતાન અધર્મીઓને ડારતો. શૂરવીરોને શૌર્ય પાતો અને નંદ જેવા મહાવલંદા લોભીને પણ દાન દેવા પ્રેરતો.

મહાન નેપોલિયન બોનાપાર્ટે કહ્યું છે કે, જે કોઈ પ્રજાના ગૌરવનો નાશ કરવો હોય, તેની બહોજલાલીવાળી વિદ્યા, કળા, હુદ્દાર અને ભવ્ય સંસ્કૃતિને સળગાવી દેવી હોય, તો એના ઇતિહાસનો નાશ કરો. એવી રીતે ભારતીય જનસમાજે જે ચારણો પર વિશ્વાસ રાખી પોતાનો સંસ્કૃતિશાળી ઇતિહાસ, સાચવી રાખ્યાની દ્રેઝરી સમાન ગણ્યા હતા; તે ચારણોએ સાત્ત્વઇતિહાસને ભૂલી જઈ સમસ્ત ભારતની સંસ્કૃતિના વિશ્વસકાર્યમાં સાથ આપ્યો છે. જે મોંઢામાં સરસ્વતીનો વાસ હતો, એ મોંઢામાંથી સરસ્વતીને તમચી મૂરી ઉભર્યોથી પોતાનું મોંઢું ગંધગ્રી મૂક્યું છે.

હાલના ચારણો પોતાના પૂર્વજોને પગલે નહિ ચાલે તો ઇતિહાસના નાશના કારણરૂપ એમને માની હાલનો જનસમાજ અધોગતિ અને પાપમાલીનો બધો પોટલો એમને યિર ઓઢાડી દેશે. જે જુદિએ આખા જગતને છક્ક કરી નાંખ્યું હતું, તેવી જુદિવાળા ઈસ્રદાસ, નરદરદાસ અને પ્રધાનંદ જેવા ચારણ મહાપુરુષોની હિંદુસ્તાનને આજ ઓટ પડી છે.

બાપદાદાના વારસારૂપ કાળ્યો અને વાર્તાઓ પર આજે ચારણોનો દક્ષ રહ્યો નથી. કાપદાએ એને મુન્યસ્ત અપાવ્યું છે, કોર્ટ મુખી દાદ મામત્રામાં એને મારે ખંભાલી લાગી ગયાં છે, આજે એને જટલેશીલ લાગી ગયાં છે.

ખોવાઈ ગયેલી વસ્તુ કોઈને પણ હાથ આવે અને મૂળ માલિકને જાણ થાય તો ઘર ભેગી કરી દીધા પછી પણ માલિકને પોછી સોંપતી પડે છે. ત્યારે ચારણીકાઓ હાલ નધણિયાતી મિલકત સમાં જાની ગયાં છે; અને જેને કાંઈ તે તેને જાપના કરવા લાગ્યા છે.

પુરાણી વાતો સંચિવી રાજવાની વિશ્વાસુ પેઢી સમાન આ ચારણકોહાએ ભારતીય જનસમાજની ચોપણ ઓળવવા માંડી છે; અને થોડા ટાઈમમાં તેના કપાળમાં ‘મારગેજ ઇન પ્લેશન’ નું જોડ લાગી જશે. જે જે વાતો હિંદની મિલકત સમી ચારણીકોહામાં ‘જુલિયન એકસ થેંઈઝ’ ની માફક સલામત હતી, તે હવે પરાયે હાથે વેડકાવા લાગી છે. જે મિલકત ભ્રમસ્ત આર્થત્વને અજવાળતી, કિંમતી જતાવતી, શ્રીમંત ગણાવતી, તે મિલકત પર આજ ચાએ હાથ નાંખવા માંડ્યો છે.

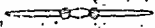
ચારણ એટલે ભારતનો કીર્તિસ્તંભ: ચારણ એટલે આર્યસંસ્કૃતિની લાયબ્રેરી: ચારણ એટલે નિરભિમાની, સત્યવચની અને જેવી તેવી જાણીસંમાં સંતોષ માની જીવંતસર અહેસાન માનનાર દેવી વ્યક્તિ. આજનો ચારણ જે ચારણ જનવા ધારતો હોય તો તેણે તેના પૂર્વજના સદશુદ્ધોત્તું સત્તર આહવાન કરવું ઘટે છે. નહિતર એ કટકા ભૂંડા બોલના અનેપાતિશ્માં અને આજના ચારણમાં જરા યે તકાવત નથી.

આમાં એક ચારણોનો જ ક્યાં દોષ છે ? પુરાણી વાતોને અને ઇતિહાસોને જિજ્ઞાસે રાખનારની ભારતીય જનસમાજે કદર નહિ કરતાં એ નિખાલસ અને પદોપકારી આત્માની હાંસી કરી છે. એને સિદ્ધક માની હર્ષ રોટલાના જટકા માં જ એ જાણું કરતો હોય, એમ સમજી એની ઠેકડી કરી છે. એનો જદલો હવે મળવાની તક આવી પહોંચી છે. હજારો વિદેશીઓ ભારતીય ઇતિહાસને હાંસીરૂપ જનાવવા ખાઈપીને પાછળ પડ્યા છે. ઘણા અટકચાળાઓએ તો ભારતીય ઇતિહાસને ઉઝરડા પણ કરવા માંડ્યા છે. અને એ ગુલાબના છોડને

ઊંચેડી નાંખવા માટે એમણે કુહાડા અને ધારિયાં સજવા મોંડયાં છે. ભારતના એ તેજસ્વી કલેવરને વધારે ડાઘ લગાડવા કોલસા પાડવા શરૂ કર્યા છે. જગતમાં સર્વોપરિ ગણાતી સત્ય ઘટનાથી ભરેલી ગાથાના ગૌરવને સળગાવી દેવા એણે હાથમાં કુંભારણું લીધું છે. કરોડો ક્ષત્રિયોનો જેમાં ભવ્ય ભૂતકાળ ભર્યો છે, અને સમસ્ત ભારતીય જનસમાજની ઉન્નતિનાં જેમાં ખીજ રહેલાં છે, એવા પ્રાતઃસ્મરણીય ઇતિહાસને ગપાટા ગણવા મોંઢાની લગામ છૂટી મૂકી દીધી છે. નહિ ચેતે તો રહ્યું સહ્યું ગૌરવ નાશ પામશે.

કવિસ્વશક્તિ એ તો ચારણોની કોઠાવિધા છે, અને એથી જ દરેક ચારણને કવિનું બિરદ મળ્યું છે. ચારણ કવિઓએ ભારતને ચરણે જેવા કિંમતી અથો ધર્યાં છે, એવા અથો કોઈ પણ કોમે ધર્યાં નથી. નરહર કવિએ રામાયણ લખીને હાથ ધોઈ નાંખ્યા છે. પ્રવીણસાગર અંથ લખવામાં રાજકોટનાં સદગત ઠાકોર શ્રી મહેરામણજીને જસા લાંગાએ જ મુખ્ય મદદ કરી હતી. ઇસરદાસ જેવા અને પ્રદ્યાનંદ જેવા ચારણ કવિસક્તોએ પણ ભારતીય લક્ષ્મણસમાજમાં અનેરી છાપ પાડી છે. આ બધાં ચારણવંશવૃક્ષનાં અમૂલ્ય રત્નો છે."

નિવારણભતિ: તેની પડતીનાં કારણો અને ઉપાયો.



લેખક: શ્રી નારણભાઈ મેકરણભાઈ રોહડિયા, બી. એ. સિંધાવદર.

—૨૨૪૪૬૦૦—

[ ગતાંકથી ચાલુ ]

આપણી પડતીનું બીજું કારણ છે આપણાંમાં ઘર કરી ગયેલી પરદોષ જોવાની અને પારકાં દૂષણો શોધવાની વૃત્તિ. આ વૃત્તિ આપણને બીજાઓના સંદર્શણો જોતાં અને સારા સંદર્શણોનું અનુકરણ કરતાં અટકાવે છે. જગતમાં સ્વાદી રહેલ સમાજ ઉદ્ધાર કે દેશઉદ્ધારનાં બળો આપણને આ દોષવૃત્તિનાં પડંબોથી દેખાતાં નથી. માટે બીજું આપણે એ શીખવાનું છે કે, બીજાઓના દોષો જોવાનું ભૂટી જવું જોઈએ. કોઈપણ વ્યક્તિ પરિપૂર્ણ હોતી નથી. પરિપૂર્ણ તો એક પરબ્રહ્મ પરમાત્મા છે. કારણ કે તે આપણથી અનન્ય અને અગોચર છે. દંશ્યમાન વસ્તુ એટલી બધીયમાં એક નહિ તો બીજો, જમે તંવો નજીવો દોષ પણ જોતંવા જોતીએ તો શોધી શકાય. જ્યાં સુધી માણસ એ માણસ જ રહેશે ત્યાં સુધી તેમાં એક અથવા બીજા પ્રકારની ત્રુટિઓ મળી આવવાની.

જ્યારે માનવી મધિરકોટિએ પહોંચશે, ત્યારે પછી આપણે તેને વિશે કંઈ પણ કહી શકીશું નહિ. બીજું જોવાનું આપણાથી છોડી ન શકાય તે એટલું તો અવશ્ય કરવું કે મોતાના દોષો પહેલાં નિહાળી, પછી બીજાઓનાં દૂષણ જોવાં. આવી તુલના કર્યા પછી દરેકના સમજવામાં આવશે કે આપણાથી દરેક અન્ય વ્યક્તિ સારી હોય છે. દરેક સાતિહિતેથી વ્યક્તિ આટલું કરવાની જરૂર કૃપા કરે.

આપણી “દુર્દશાનું” ત્રીજું કારણ અજ્ઞાનતા છે. આ અજ્ઞાનતાને દરેક ધર્મમાં દુર્ગુણોની જનની ગણવામાં આવેલ છે. આ અજ્ઞાનતાને અંગે આવતા વહેમો, વ્યસનો, પ્રેમાદ અને ઓળસ જેવા બીજા દુર્ગુણોથી આપણે મુક્ત નથી. આપણામાં આ દુર્ગુણો ઘર કરી રહેલ છે. સરસ્વતી

ના ગાળકોનું વિરૂદ્ધ પામેલ-ચારણુજ્ઞાતિ  
ના આપણે પનેતા પુત્રો અત્યારે અલણુ  
અને અજ્ઞાન દશામાં છીએ. દરેક સમજી,  
લણુલ. અને જ્ઞાતિપ્રેમી વ્યક્તિની એકજ  
કરજ છે કે, ચારણુ જ્ઞાતિમાં વિદ્યાપ્રચાર  
માટે પોતાનાથી બનતું અવશ્ય કરવું.

આજની શૈશવીય દશાનું ચોથું  
કારણ છે આપણી માગણુવૃત્તિ, અને  
તંને લીધે આવતી ખુશામતખોરીની  
વૃત્તિ. ખોટી ખુશામત એ માગણુવૃત્તિનું  
મુખ્ય સાધન છે. માગણુ અને  
ખુશામતિયાઓને માનાપમાન જેવું કશું  
હોતું નથી. આપણે કેટલી હદ મુખી  
નીચે ગયા છીએ તે જોવું હોય તો  
રાજ્યોમાં, તાલુકાઓમાં કે જાગીરદારોને  
ત્યાંના વિવાહ પ્રસંગોએ એકઠા થતા  
આપણા ભાઈઓ ને નિહાળવા ટોળાબંધ  
અહીં તહીં ભટકતા. ખાવાપીવાની અને  
ઉતારાપાણીની સગવડ રહિત એ  
ભાઈઓને બીજાઓને ત્યાં આયડતાને  
રોટલા જેવી બાજતમાં બીજાઓની  
ખુશામત કરતા, ત્યારે જોઈએ છીએ  
ત્યારે આપણને શોચ થયા વિના રહેતો  
નથી! લાખો રૂપિયાના અયોચ્ય દાનને  
ઠોકરે મારનાર, એ પૂર્વજોના બાળકોને

અદ્ય રકમ માટે બીજા વ્યવસાયો છોડી  
અપમાન સહન કરતા નિહાળી કયા જ્ઞાતિ-  
પ્રેમીની આંખોમાં આંસુ નહિ આવે? અદે,  
કોળી, વાઘરી જેવી સમાજમાં નીચી  
ગણતરી. કોમોની સ્ત્રીઓને પણ તેમના  
વિવાહ પ્રસંગનાં લગ્નગીતોમાં “ચારે  
ગવડાવો ચારણુ ભાટ રે,” એવું ગાતી  
સાંભળીએ છીએ ત્યારે તો આપણે  
આપણી માગણુવૃત્તિથી કેટલા અધમ  
બની ગયા છીએ તેનું ભાન થતાં હૃદય  
હાય રહેતું નથી! એટલે કે દરેક ચારણુ  
ભાઈએ પોતાના સ્વમાનને લોગે, શિક્ષા-  
વૃત્તિથી મજાતા લાભને જતો કરવો  
જોઈએ. જે માગણુવૃત્તિથી ચારણુએ  
સમાજમાં એક વંશત પ્રાપ્ત કરેલ અપૂર્વ  
સ્થાન શુભાશુ છે તે માગણુ વૃત્તિને  
છોડી દેવી જોઈએ. અને મહેનત-  
મજૂરીથી મેળવેલ ધનથી સંતોષ માનતા  
શીખવું જોઈએ. પોતાને યોગ્ય  
સન્માનથી બોલાવવામાં આવે, દરેક  
પ્રકારનું માન જળવાય તોજ ચારણુએ  
રાજ્યોના વિવાહ, ગાદી કે જન્મ જેવા  
પ્રસંગે જવું.

આપણી હાલની સ્થિતિ ઉપર વિચાર  
કરવા બેઠીએ તો પાતાનાં પાતાં ભરાય  
તેટલું લખી શકાય. આ ટુકડા લેખમાં

મને દેખાયું છે તેટલાં મુખ્ય કારણો  
મેં દર્શાવેલ છે. દરેક ચારણ આ  
સ્થિતિથી અનુભવી નથી. અને દરેક  
ચારણની કર્મ આપણી જ્ઞાતિનો ઉદ્ધાર  
કેમ થાય, આપણે આપણું પૂર્વ સ્થાન  
કેવી રીતે મેળવીએ, તે વિચારવાની  
અને તે પ્રમાણે ચર્ચવાની છે.

આપણી પ્રાચીન અને અર્વાચીન  
સ્થિતિ ઉપર વિચારનાં આપણા હિત  
માટે બૃહદ્ ગુજરાત ખાતે પ્રયાસ કરી  
શ્વેલ શ્રી ચારણ હિત-વર્ધક સલા વિશે  
લખું તો તે અસ્થાને નહિ ગણાય.

હેલ્લાં ચાર વરસથી ચારણોની  
હર્ષિતિ ભેદિતેમાં પ્રવર્તી શ્વેલ આજસ,  
અજ્ઞાનતા, વ્યસનો આદિ હર્ષિણો દર  
કરવા, અને જ્ઞાતિની સામાજિક ઉત્તતિ  
સાધવા માટે, શ્રી ચારણ હિત વર્ધક  
સમાજની સ્થાપના થયેલ છે. ચાર આ  
વર્ષથી આપણે સંમેલનો, ભરીએ છીએ,  
લાપણા કરીએ છીએ, રિપોર્ટો છપાવી  
એ છીએ, અને બીબું જાનિહિતનું  
કાર્ય વિચારીએ છીએ. ઉપર ઉપરથી  
પણ આપણે ભેદિએ તો આપણને લાગ્યો,  
કે દર વરસે આપણી આં હિં અભાના

સહયો વધતા નાથ છે. દર વરસે  
સંમેલનોમાં આગલા સંમેલનો કરતાં  
વધારે માણસો હાજરી આપતા લેવામાં  
આવશે. પરંતુ આપણે આપણી પ્રગતિન  
ચાર વરસના સમય ઇતિહાસને  
વપાસીશું તો, જણાઈ આવશે, કે  
સામાજિક ક્ષેત્રમાં આપણી સંસ્થાએ  
કંઈ કરેલ નથી. ચાર ચાર વરસો થયાં  
હોવા છતાં આપણે આપણી સંસ્થાનો  
પ્રચુર પ્રચાર કરી શક્યા નથી. (આ  
વરસથી આ વિશામાં કંઈક પગલાં  
લેવામાં આવેલ છે. શ્રી આં હિં સલા  
પરકથી એક પ્રચારક લાકીને  
ગીમવામાં આવેલ છે.)

આમ થવાનું કારણ આપણે સમજી  
લેવાની જરૂર છે. મારી દૃષ્ટિએ અને  
સંસ્થા સાથેના મારા શરૂઆતથી આવજ  
સુધીના સંબંધે, અને મુખ્ય કારણ એ  
દેખાયું છે કે આપણી સંસ્થા પાસે  
કાર્યકરોનો અભાવ છે. આપણી પાસે  
કંઈ નહિ જેવું જ છે, એટલે પ્રચારનાં  
સાધનો જેવાં કે સુસાક્ષરી, પત્રિકાઓ  
વગેરે માટે આપણે ખર્ચ કરી શકીએ  
તેમ નથી. બીબું કારણ ઘણું જ હાન-  
પૂર્ણ દેખાયું છે કે, ચારણોના સલા

માટે પ્રયાસ કરતી, આ સંલોને ચારણોનો પૂરેપૂરો સાથ મળતો નથી. ચારણ લાઈઓ પાસેથી જ્યારે જ્યારે કોઈ પણ હકીકત બહુવા માટે પ્રયાસ થયેલ છે ત્યારે ત્યારે દિલગીરી સાથે કહેવું પડે છે કે, કોઈ પણ લાઈએ માગેલી હકીકત મોકલના તસ્દી લીધી નથી ત્રણ ત્રણ સંમેલનોમાં નીમવામાં આવેલ, પ્રાંતિક પ્રતિનિધિઓએ જરાપણ સાતિ-હિતનું કાર્ય કરેલ ન હોવાથી આ વખતના સંમેલનમાં તો પ્રાંતિક કમિટીઓને કાઢી નાખવામાં આવી છે. શ્રી ચારણ હિત વર્ધક સભા અને શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણવિદ્યાલયના ક્ષણ ઉદ્ધરાવનાર કાર્યકરોને અનુલવ થાય છે કે ઘણા ચારણલાઈઓ પોતાની સ્થિતિ સારી હોય અને સમજતા હોવા છતાંય મહામુશીબને ફંડમાં નણવી રકમ આપે છે એટલુંજ નહિ પણ ઘણા ઘણા ખર્ચ લાઈઓ તો, મદદ આપવી એક બાજુ રહી, પરંતુ કાર્યકરો, અને સંસ્થાને, વખોડવામાં પાછું વાળીને જોતા નથી. આના કારણ માટે આપણી સાંતિની ગરીબાઈ અને સરથા તરફથી થવા જોઈતા પ્રચારનો અભાવ પણ સંલવી શકે. પરંતુ ઘણા દાખલાઓમાં મને

એક ત્રીજું જ કારણ દેખાયું છે. તે કારણ તે પૂર્વકથિત આપણામાં રહેલ પરદોષ જોવાની, અને બીજાના ગમે તેવા સારા કાર્યને નિંદવાની વૃત્તિ. ફંડ-ક્ષણો ઉદ્ધરાવનાર લાઈને જોઈએ તેવી ક્ષેત્ર ન મળતી હોય તેનું ચોથું કારણ મને એ લાગે છે કે-કાર્યકરને તો પ્રદેશના કે ગામના સ્થાનિક કાર્યકરના અભાવે ચારણોમાં થોડા સમયમાં છાપાપાડતાં ઘણી જ મુશ્કેલી પડે છે.

આપણી સંસ્થા સામાજિક ક્ષેત્રમાં કામ ન કરી શકતી હોય તેનું અન્ય મુખ્ય કારણ મને એ લાગે છે કે શ્રી ચારણ હિતવર્ધક સભાને આદ્યે શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણવિદ્યાલય આવતું હોવાથી, આંણા અગ્રગણ્ય નેતાઓ તેના ફંડ ક્ષણ વજેરેના કાર્યમાં રોકાઈરહે છે. અને તેથી સામાજિક પ્રવૃત્તિઓ માટે ગહુ જ મુશ્કેલી જણાય છે. શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણવિદ્યાલય પાસે પણ ગહુજ નાનું ફંડ કંઠી શકાય કે જે ફંડના વાર્ષિક વ્યાજમાંથી, માંડ ૧૭ નિવાર્થીઓ વિદ્યાર્થીસ કરી શકે એટલે કે જેને આંણે આપણી પ્રવૃત્તિનું મુખ્ય અંગ માનેલ છે; તે શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણ



વિદ્યાલય પણ મહામુશીબતથી ચાલી નાકે તેમ છે. વિદ્યાલયને કાયમી જીવન આપવા માટે આપણા સુખ્ય નેતાઓ પ્રયાસ કરી રહેલા હોવાથી, જ્ઞાતિહિતની બીજી બાબતો ગોણુંસ્વરૂપ પકડતી નથી છે.

એક બાજુ, આપણામાં ઘર કરી રહેલ દુર્ગુણોને કાઢવાની જરૂર છે, અને બીજી બાજુ આપણી સંસ્થાની ઉપર સુખ્ય સ્થિતિ છે, તો તેમાંથી કેવી રીતે અને કેવો ભાગ કાઢવો તે સમજવું સૌને અંગત્યનું છે.

આરણ્ય જ્ઞાતિનો ઉદ્ધાર ઈચ્છવો અને તે માટે પ્રયાસ કરવો તે દરેક આરણ્યની દરજ્જા છે. આપણામાં રહેલ દુર્વ્યસનો આપણે દૂર કરવાં જોઈએ. દુર્વ્યસનોથી માણસ દુર્ગુણો તરફ સહેલાઈથી ધસી જ નથી, માટે દુર્વ્યસનો તજવાં જોઈએ. વળી આપણી જ્ઞાતિ બહુ જ ગરીબ જ્ઞાતિ છે. તેથી આપણને દુર્વ્યસનોમાં પૈસા જીડાડવા પોતાય તેમ નથી. જે માગણ્યવૃત્તિએ આપણને સમાજમાં હલકા પાડેલ છે, તે માગણ્યવૃત્તિને તો પહેલી તકે છોડી દેવી જોઈએ. પોતાનાં બાળકોને યોગ્ય કેળવણી આપવાની દરેક આરણ્ય માગાપની અનિવાર્ય દરજ્જા છે. કેળવણીથી જ આપણે આપણામાં રહેલ એ દુર્ગુણોને કાઢી શકીશું.

બૃહદ્ - ગુજરાતના આરણ્યોના હિત માટે પ્રયાસ કરતી શ્રી આરણ્ય હિતવર્ધક સભાએ પણ આ દિશામાં પગલાં લેવા માટે ઉપાયો યોજવા જોઈએ. તેના કાર્યકરોએ, બૃહદ્, બૃહદ્, ઠેકાણે વસતા આરણ્યોના સહેવાસમાં આવવું જોઈએ. આ માટે આરણ્યોના વસવાટના પ્રાંતોને વિભાગવાર બહેંચી નાખવા જોઈએ. કાર્યવાહક કમિટીના દરેક સભ્યને એક એક વિભાગમાં પ્રચાર વર્ગેરે કાર્ય કરવાનું સોંપવું જોઈએ. વધુ મહિ તે વરસમાં એક વખત પણ દરેક સભ્યને માટે પોતાને સોંપેલ વિભાગમાં ફરવાનું ફરજિયાત હોવું જોઈએ. તે સભ્ય પોતાના વિભાગમાં આવેલ આરણ્યોના સહવાસમાં આવે. તેમનાં સુખ દુઃખ સમજાવે, અને ગામવાર કે પ્રાંતવાર સેવાભાવી ભાઈઓને તૈયાર કરી તાલીમ આપે. પ્રાંતોમાં આ પ્રમાણે તૈયાર કરેલ ભાઈઓ, જ્ઞાતિહિતને માટે પોતાના પ્રાંતમાં રહેલ ગામડાઓને બહેંચી નાખી અનાર નવાર પોતાને ભાગે આવેલ ગામડાંઓમાં જઈ ત્યાં વસતા આરણ્યોના સતત સહવાસમાં રહ્યા કરે. જોછામાં જોછું વર્ષમાં એક વખત બધા પ્રાંતિક કાર્યકરોનું સંમેલન યોજાવું જોઈએ. જેથી વરસ આગાના અનુભવો

ની આપ લે કરી શકાય, અને મળેલા અનુભવમાંથી લવિધ્યના માર્ગો યોજી શકાય.

મારી અલ્પબુદ્ધિ પ્રમાણે આપણી સંસ્થાના પ્રચારનો અને તે રસ્તે જ્ઞાતિ-બંધુઓની સેવા કરવાનો મને આ ઉપાય દેખાય છે. હું ધારું છું કે જો આ પ્રમાણે પ્રવૃત્તિ કરવામાં આવે, તે થોડા વરસોમાં આપણે બૃહદ્ ગુજરાતના ગામે ગામ આપણી સંસ્થાના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરી શકીએ.

છેવટે મારે એક જ વાત લખવાની રહે છે કે, દરેક ચારણબંધુએ જ્ઞાતિ-હિત માટે પ્રયાસ કરતી શ્રી ચારણ હિત-વર્ધક સભાને અને તેને આશ્રયે ચાલતા શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણવિદ્યાલયને પોતાથી બનતી તન, મન, અને ધનની દરેક પ્રકારની મદદ કરવી જોઈએ. જેટલી આપણે આપણી સંસ્થાઓનો મદદ કરીશું, તે પ્રમાણે તે કાર્ય કરી શકશે, અને તેટલા પ્રમાણમાં આપણી જ્ઞાતિનો ઉદ્ધાર થશે. માટે દરેક જ્ઞાતિપ્રેમી ચારણ શ્રી કે પુરૂષ જ્ઞાતિહિતના આ કાર્યમાં પોતાનો યોગ્ય ફાળો આપે એજ પ્રાર્થના.



મધ્યયુગનો છેલ્લો સંસ્કારમૂર્તિ ચારણ

‘સાસ્ત્ર-મીન્સૂલ’ ગયો!

શ્રી પિંગળશીભાઈની પ્રતિભાને ગુજરાતે સુભાવી છે!

મધ્યયુગી સાહિત્ય-સંસ્કારના, વ્યૂનવટના, ચારણ ગિરદાઈઓના અને ભક્તિરસના છેલ્લા અવશેષ, એકના એક પ્રતિનિધિ કવિરાજ પિંગળશીભાઈ પાંતાભાઈ લાવનગર સુકામે કાગળ શુદ્ધ ખારશની રાત્રિના સાડાબાર બજે પોતાના મકાનમાં દેવ થયા છે.

ભાતું ખાંધીને બેઠેલા

ખાશી વર્ષની એની અવસ્થા હતી. રાગ-દેવોથી મુક્ત દિલાવરી, માનવ-પ્રેમ અને ઈશ્વરભક્તિથી રંગાયેલું એનું જ્ઞાની હૃદય જીવનલીલા સંકેલવા માટે સંપૂર્ણ સુસજ્જ હતું. એક ઉત્તમ જોળિયામાં વસનારા ઉન્નત આત્માનો એ સ્વભાવિક વિકાસ હતો. આંખો સામે પુત્રો-પૌત્રોની લીલો વાડી હતી. વિશુદ્ધ જીવન જીવી ગયાનો સંતોષ હતો. ભાતું ખાંધીને જ બેઠેલા હતા પિંગળશીભાઈ.

પંદર દિવસ પહેલાંની જ વાત

પંદર જ દિવસ પર આ લખનારને એમનો એક કલાકનો સમયગામ સાંપડેલો. મેરૂના શૃંગ સમા બેઠા હતા, એ જ સાવજી સુમા બહેરા-ગોરાનો ઠાક હતો, એ જ પોરસવંતી વાતો કરી, પૂછેલા પ્રશ્નના જવાબમાં ‘લરપૂરે મેઘકંઠે તડાકાળાંધ વાર્તા પ્રસંગો ને કાવ્યો લલકાર્યા’ હતાં. ભાગ્ય જેવા હાસ્યે ભર્યા ને પ્રકુલિત હતા, પુત્રો-પૌત્રો પાસે કાવ્યોના પાઠ કરાવ્યા હતા.

કાગળ શુદ્ધ હતા રોજ તો સુવૈરાજ્યના જન્મ પ્રસંગે નીલમગાગ મહેલમાં જઈ, મહારાજાને કાવ્યો સંભળાવ્યાં ને રુબ લેતી વખતે કહ્યું:

‘હરિ! હરિ!’

“કશું બાકી નથી. તમારી કૃપાથી બધું જ છે.” પછી પોતાના ઈનામી ગામ શેઠાવદર જઈ આબાવાડિયામાં વિદ્યુર્યા ને ઠાકરના પુત્રરીને ગાય દાન દીધી. ને લાવનગરમાં અવસાનની રાત્રિએ સાડા દસ સુધી તો આનંદની વાતો

કરી આરામ લેવા હિંમતલેર દાદર ચડી મેડીએ ગયા. રાત્રે સાડા બારે સહેજ છાતી દુઃખી ને 'હરિ! હરિ!' કરતે કરતે દસઝં મિનિટમાં દેહ છૂટ્યો.

## બળવાની પહેલાં જન્મ

ઇં સં ૧૮૫૬માં ( બળવાની અગાઉ એકઃવર્ષે ! ) વિક્રમ સં ૧૯૧૨ના આસો શુદ્ધિ ૧૧ના દિને પુરાતન ગોહિલ-પાટનગરી પહાડી શિહોરમાં જન્મ : પિતાજી ગોહિલ-કવિ પાતાભાઈ : માતાજી આદ્યજ્ઞા. મોક્ષાળ ગ્રામ શેવાળિયા 'જસુ-વિલાસ' બિરદ-કાવ્યના કર્તા પાતાભાઈનો પુત્ર પિંગળશી કવિતાને તો ગળથુથીમાં જ પીવે, ને માતાનાં ધાવણમાં જ ધાવે એમાં શી નવાઈ!

## પ્રતાપી પિતાનો વારસો

પ્રતાપી તાત નીચે એણે ચારણી, ગુજરાતી, હિંદી અને વ્રજભાષાની કાવ્ય-વાણી સાધી લીધી. અને કાવ્યરચનાનાં અસલી ડિંગળી-મરોડ તેમજ વ્રજભાષાની લાક્ષણિક પ્રવાહિતા તો પિંગળશીભાઈના કંઠમાં આસાનીથી રમવા લાગ્યાં. એ કરતાં ય વધુ ખૂબી તો હતી એની ભજન-વાણીની. રાખ્ઠાડમ્બરી અને ભેશીલી ચારણી કવિતાના ઉપાસકોને અસલી સંતોની સરલ સ્વભાવિક નિરાડમ્બરી લોક-વાણી પર સહેજે હથોટી કે કાવટ નથી મળી જતી. પિંગળશીભાઈ એમાં અપવાદ નીવડ્યા. કારણ તો દેખીતું જ છે. પિંગળશીભાઈ કેવળ રાજકવિ ને રાજબિરદાઈ નહોતા, એ તો પ્રભુભક્ત હતા. મધ્યયુગી સંતોના માર્ગવિહારી હતા. વાણી તો એના આત્મસંસ્કારોને શોધતું આવતું સ્વરૂપ હતું.

## સાચું જળ સીંચાયું

એના સંત-હૃદયને સાચું જળ તો સ્વં મહારાજ તખ્તસિંહજીએ સીંચ્યું. તખ્તસિંહજીનાં સખાવતી કામો સાચી પિંગળશીભાઈ હસ્તકે જ ચાલતાં. ગરીબોને દાણા, વસો ને ઉનાળે કેરીઓ વહેંચતાં, તળાવ તેમજ નદીકાંઠે શિયાળાની કડકડતી ટાઢમાં હુંઠવાતાં પહેલાં કંગાલોને ઓશોકે મહારાજની આજ્ઞાથી અસલી બનાતને એક એક ચક્રમો એજ મૂકી આવે, ને પાંચ પચીસ રૂપિયાની પોટલી પણ મૂકી આવે. યાત્રાઓનાં બેધાં સ્થળોએ પણ મહારાજના એ સંગાથી. એટલે જ એનું હૃદય વધુ ઓદ્ધિ બન્યું ને એમાંથી અસલી સંત-વાણી પ્રગટ થઈ.

## કવિતાની ઉપાસના

સવારના ચાર વાગે જાગના, દાતણપાણી કરી હાથમાં કન્નમ લેતા, ને આત્મસ્ફુરણા લખાવે તેમ લખતા. રાત્રિએ સૂવે ત્યાં સુધીમાં પણ સહેજ વખત મળે કે કવિતાને જ ઉપાસતા. એવા પિંગળશીભાઈનાં પ્રભુવિહારનાં, આત્મઝોધનાં ને રસોદ્રેકનાં પદો આજથી પાંચીસ આલીશ નવે પૂર્વે પણ કાઠિયાવાડને દૂર દૂરને ગામડે ગામડે એકતાશયો પર ગવાતાં ધ્યેયોં આ લેખકે પોતાની દસેક વર્ષની ગયે ધારીગુંદાળી નામના ગામડામાં સાંભળેલું પદ સચોટપણે યાદ છે કે-

“કહે કવિ ‘પિંગળ’

મુરતી મહા મંગલ !

મારા રૂદિયામાં વસો તો

મારે શું છે બીજું કામ ?

ગોકળીયું નાનું ગામડિયું

શા માટે આવો શામ !”

ને ગાનારાઓ તો એમ જ માનતા કે ‘પિંગળ’ નામના કોઈક પુરાતન સંતની આ વાણી છે. હું પોતેય એમ જ સમજતો.

## બહોળો રોટલો

સ્વ૦ પિંગળશીભાઈની વાણીમાં માનવતા પૂરતાર ખીજું તત્ત્વ પણ હતું. એની ટેલી મુલ્કમશહૂર કરનાર બહોળો રોટલો. એ રોટલાએ આ રાજ-આરણ્યના સામાન્ય લોકો સાથેના હાર્દિક સમાગમ સદાય સજીવન રાખ્યો. એમની પહોળી પલાંડીદાર બેઠક દિવસભર અને અરધી રાત બસ ટેલીની ચોપાટમાં જ. એને બેસવાના આસનમાં ને અન્ય આવેતુઓને અપાતા આસનમાં ફરક નહિ. એની પાસે તો ડાયરો અવિરામ ચાલુ : સાધુઓ ને બાવાઓ આવે, લોટની તાંગડી ફેરવતા બ્રાહ્મણો આવીને બેસે, લાન્સરના લશ્કરીઓ ને પોલીસના સિપાહીઓ ત્યાં પહોરો ખાય, કે દેશવિદેશથી, દૂર તેમજ નજીકથી પધારતા મહાન કવિરાએ પણ એના ડાયરામાં શામિલ થાય. સર્વ કોઇને માટે એક જ બેઠક, એક જ હોટો, એક જ આદરબોલ, એક જ પ્રકારનું વર્તન : ન કોઈથી દિલચોરી, કે ન કોઇને વિશિષ્ટ વિદેકની બનાવટ : ન કોઈની આઘાપાછી કે ન

હલકા શબ્દને ત્યાં સ્થાન. બાળક આવીને બોલાવે તો બાળક જેવડા બનીને  
પાનક મથાવે આ રાજકવિ. વિનોદ તો એના સ્વભાવનું સ્વાભાવિક પ્રદેશ હતું.

એ પૌરુષ-રૂપ નહિ વીસરાય

એ ડેલીની ચોપાટમાં બેસતા સ્વ૦ પિંગળશી બાપુના કાયરાનો ચિતાર  
તો મારી નજરમાં આણું ચે આણું અંકિત થઈ ગયો છે. સંસ્કૃતગી  
બાગંતુકોની વચ્ચે એકરંગીલા બનીને બેસતા એ અડીખમ પુરુષનું પૌરુષ-રૂપ  
નહિ વીસરાય. મધ્યયુગના મહાન ખંડિયેરને તળિયે ચગદાઈ ગયેલી સંસ્કૃતિના  
પ્રદેશમાં સહેલા ભર્મ-ઊકેલ માટે સ્વ૦ પિંગળશીભાઈના આ ડેલીએ બેઠેલા  
અસ્થિતવનું દર્શન ભારી સાધન હતું.

“એકરંગીલા”

એને દેખ્યા પછી મેં કદપી જોયા છે-મહારાજ વલ્લેસંગ, આંતાભાઈ,  
અને જાગીદાર ખુમાણ: એમને દીકા પછી મારી. મધ્યયુગમાં લમવા જતી  
કદ્દપનાને વર્તમાનની ભૂલભૂલામણી નહીં નથી. એને દીકા પછી મને જાણ કે  
સામા મળતા ગયા છે પુરાતનતાના ધુમ્મસમય પ્રદેશમાં લમતા ચોદાઓ,  
ચોગીઓ, રાજપૂતાણીઓ ને જોગમયા ચારણ્યો. પિંગળશીભાઈના પરિચય-  
કર્તાઓને માટે ‘જૂનવટ’ અને ‘જૂનવાણી’ એ તિરસ્કારના શબ્દો મથી, ગેરસમજની  
પણ બાળતો નથી.

પિંગળશીભાઈનો અવાજ પણ કોઈ દિવસ જરાય ઊંચો કે નીચો થયો  
મેં જોયો નથી. એને માટે તો એક જ શબ્દ કહું: “એકરંગીલા.”

ડિંગળીના ઊકેલનાર

જર્જરિત જૂના ચોપડાઓમાંથી ડિંગળી ભાષાના બોડિયા અક્ષરો ઊકેલવાની  
એની કાવટ ભારી હતી. ડિંગળી વાણીના ધુરંધર લેખે. એનો જાડીદાર આજે  
જડવો હલકો છે. (રહ્યા છે એ; એવા અવશેષ-દારણુભાઈ.) અને અસહી  
પ્રાસાદિકતા પૂરેપૂરી સાંચવીને નવીન કવિતાના રચનાર પણ એ જ એક અજોડ  
હતા. એમની રચનાના મરોહો અનોખા જ હતા.

એમનો કંઠ એને કહેતા

એ કરતાં પણ વિશેષ ખૂબીદાર તો એમનો કંઠ અને એમની કહેણી હતી. દૂલાભાઈને મેં જ્યારે કહ્યું કે વાર્તા કહેનારાઓ હુપ્ત થયા છે એવા આ જમાનામાં તમે જે જે ભાઈઓ અસલી પાતાળકૂટ કંઠ ધરાવો છો તેઓ તો એ કુળને પાછી ખીલાવો ! ત્યારે દૂલાભાઈએ મને કહ્યું, “વાર્તાકારની શી વાત કહું ! એ તો કહી બાણ્યું માંધના પૂત એક પિંગળશીભાઈએ.” આહે તેવડા નાના અથવા મોટા ડાયરાની સમક્ષ નજરને બસ ધરતી તરફ જ સ્થિર કરી, જોડું કે આગળ પાછળ જોયા વગર, શ્રોતાઓના મોં પર પડતી અસરોની કશી જ મદદ લીધા વગર, પોતે પણ જરીકે લાગણીવશ અથવા વિચલિત થયા વગર એક અવધૂત ની માફક જ્યારે વાગ્યારા વહેતી મૂકતા, સમા સ્વરે કથ્યે જતા, ધોધમાર વર્ણન આલેખતાં ગીતો-કવિતો ટાંકતા જતા, વાર્તામાં રમૂ થતા એકેએક ભાવને ઝંદ, છાપ્પય કે કાબ્યની અખૂઃ ખાશુમાંથી વેરના જતા. ‘ગિરુદ શૂંગાર’ વગેરે કાબ્યોના અત્યેક કથાકાર પિંગળશીભાઈના એ શુજરી ગએલા સમયની, એમની એ પ્રૌઢાવસ્થાની તમને આજે કલ્પના જ નહિ આવે. વાર્તા કહેતા પિંગળશીભાઈ પણ માનવી પિંગળશીભાઈની જ પ્રતિકૃતિ હતા. એ જ સંયમ, એ જ ખામોશ, એ જ અવિચ્છિન્ન જીવનધારા સાહિત્યધારા ણની જતી. ને શ્રોતા-સમૂહ પ્રત્યેક ભાવમાં ઘસડાતો હોય ત્યારે કથાકાર એકલો આત્મસ્થ બેઠો હોય.

આ બધું જાણીએ છીએ ત્યારે આજે સાહિત્યકાર અને સાહિત્યકારના જીવનને લગતી જે એક પક્ષે વાહિયાત વાતો ચાલી રહી છે. તેનાથી ભૂંડું એક સત્ય સ્પષ્ટ થાય છે. પિંગળશીભાઈ સાહિત્યના વિસ્ત્ર તરીકે મોટા, કે જીવન જીવનાર તરીકે મોટા ? એ પ્રશ્ન જ અર્થહીન છે. એનામાં પોતાનું પોતાપણું-નિજત્વ, સ્વત્વ હતું, એટલું જ કહેવું બસ થશે.

કોઈએ સાચો લાભ ન ભઠાવ્યો.

એમની પ્રખર કાવ્ય-શક્તિ, તેમજ એમની સાહિત્ય-ઈતિહાસ વગેરે ની જાંડી સાન : એ બેઉનો સાચો લાભ નથી રાજ્યે લીધો, કે નથી લીધો શુજરાતી પ્રજાએ. રાજ્યની ખરી ખાનદાની કે ત્રણ ત્રણ પેઢીઓએ, તેમજ ચોથી પેઢી એડમિનિસ્ટ્રેશને આ પુરૂષની અજ્ઞાન રખાવટ કરી. ભાવનગરનું એાદણું એાદનારનાં ભાવનગરે સ્વમાન અને શીલ અણિશુદ્ધ સાચવ્યાં. ભાવન-

ગર રાજ્ય પોતાના કવિનો સ્વાધીન સંસ્કારી સંભાળ્યો, ને ઊઝળો કરી દેખાડ્યો. એક પણ અવસરે એની પાસેથી જૂઠી વાંછી નં ઉચ્ચરાવી. કવિના આત્મગૌરવની આવી સાચવણુ તો આજના લોકયુગમાં લોકસંસ્થાઓ ને લોકમાન્ય પુરૂષો પણ નથી કરી જાણતા.

સાહિત્યકારની સ્વતંત્રતાનો સ્ત્રીધી રીતે નહિ તો આડકતરી રીતે તેજેવધ ચાલતો જોવાય છે. એ દષ્ટિએ ભાવનગર રાજ્યને ધન્યવાદ છે.

સર્જનશક્તિનો પૂંજ

પરંતુ ૮૩ વર્ષનું ત્રિશાલ એ કવિજીવન જો વાહ્યમયની દષ્ટિએ કોઈકે હાથમાં લીધું હોત ને, તો એ પુરૂષની સાથે જ સ્મશાને સૂતેલી અઢળક વિદ્વતાને મહાન નવી રચનાઓ નીપજવવા માટે જોતરી શકાઈ હોત.

એવી જોતરનાર શક્તિના વાંકે સ્વં ની કાવ્યપ્રતિભા એની સાચી સમૃદ્ધિ વચ્ચે પણ બેકાર થાની રહી હતી. ગુજરાત જેની પાસેથી હોમર, વાદમીકિ કે તુલસી શૈલીનાં મહાકાવ્યોનું સર્જન થોડાક જ પ્રોત્સાહને કરાવી શક્યું હોત, તેવો એ એક જ પુરૂષ હતો-મહાકવિનો કોઈ જોલવાયેલો જ્વાલામુખી જાણે!

એથી કરીને આજે એમની જે થોડીક રચનાઓ ઉપલબ્ધ છે, તેમાંથી એમની સાચી કાવ્યપ્રતિભાની કણિકાઓ ચમકતી હશે, પણ તેમની ભાવિ કાવ્ય-શકંતતાઓનો ખ્યાલ નહિ આવી શકે, એ ખ્યાલ તો એમનો પરિચય સાધનારાઓ જ પામી શકેલ છે.

એમની કૃતિઓ: ‘ભાવભૂષણ’ નામે જોડિલ કુળની તવારીખનો બિરદાવંચ: “તખ્તપ્રકાશ” પણ એવો જ અંચ: ઇશ્વરદાસજી કૃત “હરિરસ”નું સંપાદન-કાર્ય: દશમસ્કંધ પરથી ઊતારેલ “શ્રી કૃષ્ણ જાગલીલા કાવ્ય,” “ચિત્ત ચેતાવની” નામનો કવિતા-સંગ્રહ: વગેરે.

—શ્રી ઝવેરચંદ મેઘાણી

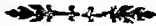
(‘કૃષ્ણજ’ તા. ૧૦-૩-૩૬ના અંકમાંથી ઉદ્ધૃત)





## ચારણ જાતિ-વૃત્તાંત.

એકે નમ્ર નિવેદન



ચારણજાતિ એ હિંદુસ્તાનની આર્ય જાતિઓમાંની એક છે. તેની પ્રાચીનતા શ્રેષ્ઠતા તેમજ તેના અન્ય ગુણોનું વર્ણન હિંદુ ધર્મશાસ્ત્રો- જેવાં કે શ્રી વાલ્મીકિ રામાયણ, શ્રી મહાભારત, શ્રીમદ્ભાગવત, શિવપુરાણ, ગણેશપુરાણ, પદ્મપુરાણ, બ્રહ્મપુરાણ, વગેરે-માંથી જાણી શકાય છે. હિંદુસ્તાનનો મધ્યકાલીન ઇતિહાસ શૃંગલાખદ્ મળતો નથી. છતાં પણ કોઈ કોઈ સાહિત્યકારોનાં પુસ્તકો જેવાકે- શાકુંતલાનાટક, હર્ષચરિત્ર, પ્રસન્નરાધવનાટક તેમજ રાજતરંગિણી વગેરે ઇતિહાસ ગ્રંથો અને જૈનધર્મનાં પુસ્તકોમાં ચારણો વિષે સારા પ્રમાણમાં ઉત્તમ ઉલ્લેખો મળી શકે છે.

સુસલમાનોના આધિપત્ય કાળમાં પણ ચારણો હિંદુ જાતિમાં મહત્વનું સ્થાન લોગવતા હોવાના અનેક ઉદ્દેશો મળેછે. અને અંગ્રેજ ઇતિહાસકારોએ પણ પોતાનાં અનેક પુસ્તકોમાં ચારણજાતિની પ્રસંશા કરી છે.

ક્ષત્રિય જાતિ સાથેના ચારણ જાતિનો સંબંધ અત્યંત નિકટનો અને ઘનિષ્ઠ છે. ચારણોએ ગુરુ, ઉપદેશક, કવિ, સલાહકાર, વિઠ્ઠિકાર અને વિશ્વાસપાત્ર મિત્રો બનીને ક્ષત્રિય જાતિની ઉત્કૃષ્ટ પ્રકારની સેવા કરી છે તથા તેના અર્થે તન, મન, ધન સર્વસ્વ અર્પણ કરેલ છે. ચારણોની આ સેવાનાં જાહેરાતમાં ક્ષત્રિયોએ પણ કૃતજ્ઞભાવથી તેમને પોતાના પૂજ્ય ગણીને ગામ ગરાસ તેમજ માન અકરામતી ભેટ ધરી છે. આ કથનની સાક્ષી સ્વરૂપ અનેક વૃત્તાંત ઇતિહાસોમાં મળી શકે છે.

વર્તમાન કાળના ચારણોનાં રહેણી કરણી, વ્યવસાય અને જીવન તંત્ર દૃષ્ટિ કરીએ તો રહેજળ આપણને જણાશે કે ચારણ જાતિ એ એક શ્રેષ્ઠ જાતિ છે અને તેને મળેલ વારસો ભવ્ય હોયો જોઈએ.

હિંદુઓના સર્વ વર્ણોમાં દેવીપૂજા (દેવીભક્તિ) પ્રચલિત છે. દેવીઓમાં પણ જુદા જુદા નામવાળી અનેક દેવીઓ પૂજાય છે. આ દેવીઓમાંથી મોટા ભાગની દેવીઓએ ચારણજાતિમાંજ જન્મ લીધો છે. તદુપરાંત ચારણ જાતિમાં અનેક મહાન્ ભક્તો, શૂરવીરો, સાહિત્યકારો, કવિઓ, રાજનીતિજ્ઞો, ઉપદેશકો, દેશભક્તો

અને સત્યાગ્રહી વીરોએ જન્મ લઈને ગૌરવમાં વૃદ્ધિ કરી છે.

આ બધું હોવા છતાં પણ ચારણુન્નતિના ભવ્ય ઇતિહાસથી અન્નણુ એવી કેટલીક વ્યક્તિઓ તથા કેટલાક વિદ્વેષીઓ તરફથી ચારણુ ન્નતિ સંબંધી કપોલ-કલ્પિત હકીકતો ફેલાવવામાં આવે છે. એમ માલૂમ પડ્યું છે. સાથે સાથે એ પણ સ્પષ્ટ છે કે, સ્વં પૂજ્ય પુરોહિત શ્રી ગૌરીશંકર ગોવિંદજી એ લખેલ એક નાનકડા પુસ્તક ‘ચારણુધર્મ અને જાગૃતિ’ સિવાય ગુજરાતી ભાષામાં ચારણુન્નતિ વિષે પ્રમાણભૂત હકીકત આપતું એક પણ પુસ્તક લખાયેલું નથી. હિંદી ભાષામાં આ વિષયને લગતાં બે ત્રણ પુસ્તકો લખાયાં છે, તેમાં મુખ્ય ત્રીયે મુજબ છે-૧ ‘ચારણુ કુલ પ્રકાશ’-કર્તા સ્વં કવિરાજ શ્રી કૃષ્ણસિંહજી સોદા (શાહપુરા-મેવાડ), ૨ ‘ચારણોત્પત્તિમીમાંસામાર્ત’-કર્તા સ્વંકવિરાજ શ્રી ભજૂનદાનજી વીઠૂ (બીકાનેર). આ બે પુસ્તકોમાં ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ પહેલું પુસ્તક શ્રેષ્ઠ છે. બીજા પુસ્તકમાં ચારણુ ન્નતિની ઉત્પત્તિની હકીકત વિસ્તારથી ચર્ચવામાં આવેલ છે. ગાંને પુસ્તકો શ્રેષ્ઠ પંક્તિનાં છે. આ સિવાય સ્વંકવિરાજ શ્રી મુરારિદાનજી આસિયા (એધપુર) દ્વૃત ‘ચારણુ ખ્યાતિ’ નામનું એક નાનકડું પુસ્તક પણ પ્રસિદ્ધ થયેલ છે, તેમજ ગુજરાતી અને હિંદી ભાષામાં ચારણુ ન્નતિ સંબંધી ઘણા લેખો લખાયા છે, અને ભાષણો થયાં છે તથા પુસ્તકોમાં પણ ઉદ્ભવેલો થયા છે.

ઉપર દર્શાવેલ નામવાળાં પુસ્તકોમાં ચારણુ ન્નતિની ઉત્પત્તિ તથા ઇતિહાસ સારી રીતે સ્પષ્ટ કરવામાં આવેલું છે. પરંતુ તેની ભાષા હિંદી હોવાથી કચ્છ-કાઠિયાવાડ - ગુજરાતમાં તેનો પ્રચાર બહુ થયો નથી, એટલે ગુજરાતી ભાષા-ભાષી ચારણો તથા જનતાને ચારણુ ન્નતિના ઇતિહાસની માહિતી ન મળી હોય એ સ્વાભાવિક છે. ઉપરાંત ઉપરોક્ત હિંદી પુસ્તકોમાં વિસ્તાર ભયથી તેમજ અન્ય કારણો ને અંગે વર્ગી ધર્મશાસ્ત્રો સિવાય અન્ય પુસ્તકો, લેખો, ભાષણો વગેરેનો તથા ચારણુન્નતિના રીતરિવાજો, સાહિત્ય, જીવન, અન્ય ન્નતિઓ સાથેનો સંબંધ, તેની વિશિષ્ટતાઓ અને અન્ય ઘણી બહુવા યોગ્ય હકીકતોનો સમાવેશ કરવામાં આવ્યો નથી; અને આ બધા ઉપરાંત ઘણા અણુસમજી માણસો તથા વિદ્વેષીઓ ચારણુ ન્નતિ સંબંધી કપોલ-કલ્પિત હકીકતો ફેલાવતા માલૂમ પડ્યા છે; એટલે ગુજરાતી ભાષા-ભાષી જનતાને ચારણુ ન્નતિના ઇતિહાસથી પરિચિત કરવાની તથા જનતા પાસે સત્ય વસ્તુ પહોંચીતે મૂકવાની આ દેશની શ્રી ચારણુહિત-

વર્ધક પ્રભાની ફરજ છે. આ ફરજને અંગે તેની રીત હું ચારણ જ્ઞતિના જૂના-કાળ અને વર્તમાનકાળ વિષે યોગ્ય વસ્તુ પ્રસિદ્ધ કરવા માગું છું.

ચારણ જ્ઞતિ વિષે હું જે કંઈ પણ લખીશ તે બધું કંઈ નવું નથી. એ બધું તો એક યા બીજા સ્વરૂપે ઉપર કથાવિલ નામવાળાં પુસ્તકો તથા લેખો, લાખણો વગેરેમાં ક્યારનું જે કહેવાઈ ગયું છે. ફક્ત એક સંગ્રાહક તરિક્કે એ બધું તેમજ બીજું અન્ય જે કંઈ મળી શકે તે બધાને યોગ્ય રૂપમાં એકત્રવાનું માફક કામ છે. હું કોઈ મોટો વિદ્વાન છું નહિ, જે લખીશ તે બધું ઉપરોક્ત સામગ્રી માંથી જ અને તે પણ ફક્ત શુભસાતીભાષા-લાખી જનતાની જાણ માટે. મારા લખાણમાં કયાંય ભૂલચૂક જણાય તો કૃપાળુ પાઠકગણ મને મારી ભૂલનું જ્ઞાન કરાવે એમ પ્રાર્થના છે.

વિશેષમાં ખાસ વિનંતિ કરવાની કે, જે લાઈઓ પાસે ચારણજ્ઞતિના ઇતિહાસ, ઉત્પત્તિ, કાર્યો, વ્યવસાય, ચારણજ્ઞતિમાં ઉત્પન્ન થયેલ ભકતો, દેવીઓ, શૂરવીરો, કવિઓ, રાજદારીઓ, ઉપદેશકો, અને અન્ય મહાન પુરૂષો, ચારણ-જ્ઞતિના રીતરિવાજ, ભાષા, શ્લોક, પકેરવેશ, ગામગરાસ, સાહિત્ય, અને તેને લગતી અન્ય કંઈ પણ માહિતી જૂની અથવા નવી હોય તે તેમણે વિના વિલંબે મને મોકલવાની કૃપા કરવી. ચારણજ્ઞતિની શાખો, પાઠાઓ, લેદો વગેરે સંબંધી કંઈ પણ પ્રમાણબદ્ધ હકીકત કોઈ લાઈની પાસે હોય તો તે પણ મોકલવાની વિનંતિ કરવામાં આવે છે.

ચારણજ્ઞતિને લગતી માહિતીના બધા પુરાવા, પુસ્તક, લેખ વગેરે યોગ્ય ઉપયોગ થવા પછી મૂળધણીને પાછાં મોકલવામાં આવશે. વિશેષમાં વિનંતિ કરવાની કે ચારણ અથવા ચારણોત્તર-અન્ય કોઈ પણ બંધુ તરફથી ચારણજ્ઞતિના લખવા ધારેલા આ ઇતિહાસ સંબંધી સૂચન-સલાહ મળશે તો મહદ્ ઉપકાર થશે.

ચારણજ્ઞતિના ઇતિહાસની આ હકીકત 'શ્રી અંબાબા ચારણ-સન્મેલન' ના મુખપત્ર 'ચારણ' પત્રમાં (સંપાદકોની અનુસાથી) ક્રમે ક્રમે પ્રગટ કરવાની મારી નક્ક અભિલાષા છે. મારી શક્તિ એટલ છે, અને મને તેનું જ્ઞાન પણ છે, પરંતુ જ્ઞાતિબંધુઓ તેમજ અન્ય કૃપાળુ સન્નજનોનો સહકાર મળશે એવી પૂર્ણ આશાથી આ કાર્ય કરવાને તરફ થયો છું, આ ઐતિહાસિક હકીકત પૂર્ણ રીતે લખાઈ

રહેતાં એક પુસ્તકાકારે પ્રસન્ન કરવાની ઇચ્છા છે. ભગવેતિ જગદંબાની પૂર્ણ કૃપાની આશા સાથે આ કાર્ય હાથમાં લીધું હોઈ એ દયાળુ મા માંસ આ નમ્ર મનોરથને પૂર્ણ કરે, એજ અભ્યર્થના.

ચારણ્યજાતિના લખવા ધારેલા આ ઇતિહાસમાં નીચેની તથા અન્ય જાણતો નો સમાવેશ થવાનો સંભવ છે.

### ભૂતકાળ

૧ ચારણ શબ્દનો અર્થ, ૨ ચારણોની ઉત્પત્તિ, ૩ શાસોમાં ચારણોના ઉદ્ભવો અને તેનાથી નિષ્પન્ન થતું ચારણોનું નિવાસસ્થાન, વ્યવસાય, તે વખતના સમાજમાં સ્થાન વગેરે, ૪ મધ્યકાલીન ઉદ્ભવો, ૫ જૈનધર્મનાં પુસ્તકોમાંના ઉદ્ભવો. ૬ મુસલમાની આધિપત્ય વખતે ચારણોનું સ્થાન, ૭ ચારણો-અર્થેજ ઇતિહાસકારોની દૃષ્ટિએ, ૮ રાજપૂતો સાથેનો ચારણ્યજાતિનો સંબંધ, અને તેને અંગેની અન્ય વિશિષ્ટતાઓ, ૯ ચારણ બંકતો, દેવીઓ, કવિઓ, રાજનીતિજ્ઞો અને, શૂરવીરોની હકીકત, ૧૦ ચારણ્યજાતિ વિષેનાં ઐતિહાસિક વિધાનોનું મનન કરતાં માનવ-ઇતિહાસમાં ચારણ્યજાતિનું સ્થાન, ૧૧ ચારણ્યજાતિનું ક્રમે ક્રમે થયેલું પતન તથા તેનાં કારણો.

### વર્તમાન કાળ

- ૧ વર્તમાનકાલીન લેહો-સ્થાન, ભાષા, રીતરિવાજ, વ્યવસાય, પહેરવેશ વગેરેના.
- ૨ આપણી વર્તમાન દશા-વ્યસનો, અવિદ્યા, કુસંપ, વહેમો, તથા અન્ય દુર્ગુણો તેમજ સદ્ગુણો.
- ૩ અવનત દશામાંથી નીકળવા માટે ઐક્ય, ભગૃતિ, વિદ્યાવ્યાસંગ, ધર્મપાલન વગેરેની જરૂરિયાત.
- ૪ જ્ઞાતિની ઉન્નતિ અર્થે થયેલાં મંથનો, અને તેની હકીકત.
- ૫ હવે શું કરશું ?
- ૬ સાંપ્રત કાળનાં મહાન ચારણોનો પરિચય.

### પાઠા તથા શાખાઓની વિગતનું પરિશિષ્ટ

- ૧ ચારણ્ય જાતિનાં ગોત્ર, શાખો, પાઠાઓ વગેરેની હકીકત
- ઉપર દર્શાવેલ જાણતો તેમજ ચાંણ્ય જ્ઞાતિને લગતી અન્ય હકીકતોનો સમાવેશ લખવા ધારેલા આ પુસ્તકમાં કરવા વિચાર છે. સર્વે બંધુઓ માગેલી સહાય તથા સલાહ-સૂચન આપી ઉપકૃત કરે, એમ ફરીથી પ્રાર્થના કરું છું

સેવક

પિંગલશી-પરજાતજી પાયક

મંત્રી-શ્રી ચારણ્યજિતવર્ધક સલા,

લાવનગર

## તંત્રી-નોંધ

વડોદરા-નરેશનો રાજચાલિયેક—

૨૧૦ શ્રીમંત મહારાજ સર સલાહરાવની પછી તેમના પૌત્ર શ્રીમંત મહારાજ શ્રી પ્રતાપસિંહ ગાયકવાડ ગયા એપ્રિલ માસમાં વડોદરાની ગાદીએ બેસતાં, તેનો અડવાડિયા સુધી પૂર્ણ ઉમંગથી સમારેલ ઊજવયો. સાર્વભૌમ સત્તા સાથે સીધો ત્રંગધ ધરાવતાં દિદનાં ચાર મોટાં રાજ્યો પૈકી વડોદરા એક હોવા ઉપરાંત મહુમ વિશ્વવિખ્યાત મહારાજ સાહેબના યશસ્વી સુદીર્ઘ રાજઅમલને લીધે તેનું સ્થાન દેશી રાજ્યોમાં ધણું આગળ પડે છે. એટલુંજ નહિ પણ મહત્ત પ્રાથમિક શિક્ષણ, પુસ્તકાલય અને આમેદાદાર આદિ બાબતોમાં તેને બ્રિટીશ ભારતથી પણ આગળ ઊભું છે.

નવીન મહારાજને નિખ્યાત શિક્ષકોના હાથ નીચે ખ્યાનગી રીતે અને પ્રગ્નનાં બાળકો સાથે જરોડા કોલેજમાં ઇન્ટર આર્ટ્સ સુધીનું ઉચ્ચ શિક્ષણ લેવા ઉપરાંત તેમના મહુમ પિતામહની સીધી દેખરેખ નીચે વર્ષો સુધી વહીવટદારથી માંડીને નાવબ દોવાન સુધીના જવાબદારી ભરેલા એલફાએ કામ કર્યું છે. ગાદીએ બેસતા પહેલાં મહુમ મહારાજના સમારક રૂપે પોતાની ખ્યાનગી મિલકતમાંથી એક કરોડ રૂપિયા નેટલી બાદશાહી રકમ તેમણે પ્રભાષીય કાર્યો માટે કાઢી છે. અને રાજ્યારોહણની ખુશાલીમાં, ચારેક માસ પૂર્વે મહુમ મહારાજએ પાંચ વર્ષ માટે એકવીસ-બીસ લાખ રૂપિયા નેટલો મહેસૂલી ધટાડો કરેલો તેને કાપખનો નહર કરી, પ્રતને રાજકાર્યમાં સક્રિય લાગ લેની કરવા માટે પ્રાંત પંચાયતો તથા સંવર્ગની સુધરાઈઓને ચૂંટણીને પ્રમુખ આપવા ઉપરાંત ધારાસભા-વિસ્તારની યોજના પંજ સંમતમાં મૂકી છે.

અને આ શુભ પ્રસંગે વડોદરા રાજ્યમાં વસતી ચારણ કામ તરફથી એજો નામ-દારને અભિનંદન અર્પી જણાવવા માંગીએ છીએ કે, સને ૧૯૩૧ની છેલ્લી વરતીગણતરી મુજબ વડોદરા રાજ્યમાં ચારણ જાતિની વસ્તી ૨૬૧૦૦ માણસોની છે. મહુમ મહારાજ સાહેબે જે કેળવણી-પણત કામેને સિદ્ધિત જતાવવા માટે ઉમદા સવસતો આપેલી છે, તેમાં એક વખતની સંસ્કારી-પરંતુ અવારે જરીબી અને અવિદ્યા-અધકારમાં ફેલેલી આ ચારણ કામનો પણ સમાવેશ થતો હોવા છતાં, બીજા કામેને મુકાયલે સંખ્યામાં નાની હોવાથી તેને એ સવસતોનો જહુ એજો લાભ મળ્યો છે.

કાઠિયાવાડના રાજ્ય મહારાજાઓની ઉદાર દેહુગીથી બે એક વર્ષ પૂર્વે બૃહદ્ ગુજરાતની ચારણ જાતિએ લાવનમરમાં એક બોર્ડિંગની સ્થાપના કરી છે, પરંતુ વડોદરા રાજ્ય અને અમદાવાદ, ખેડા આદિ બ્રિટીશ નિહલાઓમાં વસતા ચારણોને એ સ્થળ ખર્ચાળ અને જહુ દૂર પડતું હોવાથી કલેસ જવા મધ્ય રમજે એક બોર્ડિંગ-સ્થાપનો માટે વડોદરા રાજ્યમાં વસતા કેટલાક ચારણો પ્રયાસ કરી રહ્યા છે. તે તે ખાતે શ્રીમંત મહારાજ સાહેબ સંગીન

મદદ આપી વડોદરા રાજ્યમાં વસતી ચારણુ જનિને આભારી બનાવશે, એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

અંતમાં શ્રીમંત મહારાજ સાહેબે તેમના રાજ્યારોહણ-પ્રસંગે ચારણુ જાતિના ખોટી ખુશામદથી પર એવા એક સંસ્કારમૂર્તિ યુવાન શ્રી મેઢલાને માનપૂર્વક નિમંત્રી ને નિવાજેશ કરી છે, તે બદલ સમસ્ત ચારણુ જાતિ એઓ નામદારને ધન્યવાદ અર્પે છે.

### શુજરાતી-વિભાગ અને તેનું તંત્રીપદ—

અં ૭૫૦ ચારણુ-સંમેલનના રાજકોટ મુકામે મળેલા-વિગત અધિવેશનમાં તેના મુખપત્ર 'ચારણુ' ને ત્રૈમાસિક રૂપે પુનર્જીવિત કરવાનો સર્વાનુમતિથી નિર્ણય થતાં ચારણુ જાતિના વસવાટના બે મુખ્ય દેશો— રાજપૂતાના-માલવા-અને શુજરાત-કાઠિયાવાડને એક-ખીજની વધુ નજીક લાવવા માટે તેને હિંદી અને શુજરાતી ભાષામાં કાઢવાનું નક્કી થયું હતું. પરંતુ શુજરાતી-વિભાગની જવાબદારી જાપાડી લેવા માટે તે પ્રસંગે કોઇ તૈયાર ન થવાથી આં હિં ૦ સંભાળના મંત્રીશ્રી અને ખીજ બે ચાર આગવાનોની આજ્ઞાથી અમે તે કામ કરવાનું કબૂલ કરેલું, અને તદનુસાર તેનો ભાર વહન કરતા આજ્ઞા છીએ.

પરંતુ અમારે દુઃખ સાથે જણાવવું પડે છે કે, અમે ને ને ઉચ્ચ કેળવણીપ્રાપ્ત બંધુઓ તરફથી જાતીય પ્રસંગોની વિવિધ દૃષ્ટિબિંદુથી છણાવટ રજૂ કરતી લેખ-સામગ્રી મળવાની આશાએ-અમારી પત્ર ચત્રાવવાની અયોગ્યતાનો અમને પૂરેા ખ્યાલ હોવા છતાં —આ જવાબદારી લીધેલી, તેમના તરફથી મિલકુલ સહાય મળી નથી. એ ખાતે અમે વારંવાર કરેલી પ્રાર્થના નિષ્ફળ ગઈ છે. એટલુંજ નહિ પણ રાજકોટ અધિવેશનમાં અમુક સંખ્યા ગ્રાહકો બનાવી દેવાનું વચન આપનાર બંધુઓમાં, પણ ભાગ્યે જ એક-બે બંધુઓએ એ ખાતે પ્રયાસ કર્યો છે. જાતીય અધિવેશનોમાં તીખાં-તમતમતાં લાખણો કરનાર એક વયોવૃદ્ધ બંધુએ તો અનિયમિત રીતે પત્ર નીકળે તો તેમણે બનાવેલા ગ્રાહકો તેમને હપ્કા આપે, તેથી પોતાનું વચન મોકુફ રાખવાનું જણાવ્યું, ત્યારે ખીજ એક બંધુએ વચન તો આપ્યું હતું, તેમણે કહેલા પચીસે ગ્રાહકોનું લવાજમ તેમના પર વીં ૦ પીં ૦ મોકલી વસૂલ કરવાનું; પરંતુ પ્રયત્નોંક પ્રસિદ્ધ થવાની તેમને ખંજર આપતાં ને તે બંધુઓ પર વીં ૦ પીં ૦ મોકલવાનો આદેશ કર્યો, પછી બંને ને તેઓ પરત વીં ૦ પીં ૦ વાળે. અને થયું પણ તેમજ. એટલે કે કોઇ પણ પત્રને ચિરંજીવી બનાવવા માટે ને બે મુખ્ય બાબતો ગણાય છે, તે લેખ-સામગ્રી અને ગ્રાહક-સંખ્યાના વિષયમાં વર્ષ દરમિયાન નિરાશા જ અનુભવવી પડી છે.

ખીજી જાતિઓને મુકામલે આપણે કેળવણીમાં ઘણા પાછળ હોવા છતાં બે બૃહદ શુજરાતમાં આપણામાં પાંચ-સાત ઐતિહાસિક અને પંદર-વીસ મૈત્રિક થયેલા બંધુઓ છે. પરંતુ તેઓ પૈકી એક-પણ વ્યક્તિનું નામ આજના શુજરાતી-સાહિત્યમાં ગોત્સું જડતું નથી. જાણે કે પ્રાચીન કાળમાં ચારણુ જાતિએ સાહિત્યિક જીવન છંદી ગૂંધું હોવાથી એ કાળની ખિન સાહિત્યિક કોમોની આજની ઉચ્ચ શિક્ષાપ્રાપ્ત વ્યક્તિઓને એ ખાતે માર્ગ કરી

આપવા માટે સાહિત્ય-સેવા કરવામાં પાપ લેખતા હોય! જો કે આ સ્થિતિ એકલા ગુજરાત-કાઠિયાવાડની જ નથી, રાજપૂતાના-આબવાના યુક્તિની પણ એ જ સ્થિતિ છે. પરંતુ જેમને શિક્ષિત બનાવવા માટે જેણે બોડિંગ સ્થાપી છે, અને રથાપે જાય છે; જેમને પદવીપ બનેલા જેમને પોતાને ગૌરવચાળી માને છે;— એ શાંતિમૈયાના આ એક માત્ર યુગ્મપ માટે પણ તેઓ બે રાખે ન લખી મોકલે, એ તો અહુ જ દુઃખદાયક વસ્તુ છે. અને જે સ્થિતિમાં બીજે વર્ષે ગુજરાતી-વિભાગના તંત્રીપદે આહુ રહી વધુ હાંસી ન કરાવવા મા રાજીનામે આપવું અમે હિચિત સમજીએ છીએ. સંમેલનની પ્રતિરૂપધી આ હિં સલા કે ગુજરાત-કાઠિયાવાડ અને કચ્છ ઉપર એક જ સંમેલન ધરાવે છે, તેને ગુજરાતી-વિભાગ અગત્ય જણાતી હોય તો તેણે સંમેલન આપે સમજીતી કરી—પરંતે સર્વાંગ-સુંદર બનાવવા માટે અહો અહ નાણાંની મદદ આપતી કબૂલ કરી—પોતાના તરફથી કાંઈ સેવાભાવી એન્ડ એટ-અધુની તેના તંત્રી તરફ નિમણૂક કરવી લેવી.

## સમાચાર-સંગ્રહ

ભારતના લોકજીવનનાં ચિત્રો જિતારવા માટે ભગભગ બે વર્ષથી દિલ્હીમાં આવેલ દ.ગેરિયન ચિત્રલેખા માતાપુત્રી-મીસીસ સાસ જુનર અને મીસ પ્રસીદામેથ જુનરે, ભારત લોકસંગીત એકઠું કરવા માટે ઓક્સફર્ડ યુનિવર્સિટી તરફથી દિલ્હીમાં આવેલાં હોલોડવાસ બાંકિ દંપતી સાથે, મયા ફેબ્રુઆરી માસમાં કાઠિયાવાડના પ્રવાસે આવતાં, ચારણ કામ-પ્રસિદ્ધ વાર્તાકાર શ્રી મેધાણુંદભાઈ લીલાનું લાડી ચુકામે ચિત્ર દોરી તેમને અમર બનાવ્યાં.

ભાવનગર-સોહિય-સલા તરફથી તા.૧૪-૪-૨૬ના રોજ ભાવનગરના દીવાન સાહેબ શ્રી અનંતરાય પટેલજીનાં પ્રમુખપદે સ્વં કવિરાજ શ્રી પિંગળશીખાઈના અવસાન-નિમિત્તે જાહેર શોકસભા મળી હતી. તેમાં શ્રી કલા ભગન, પ્રોફેસર ડૉ. રમણલાલ પાતિલ, શ્રી નટવરલા સુરની અને શ્રી ગંગાનન બહે પોત્ર વિવેચન સાથે મહુમને અનલિઓ અર્પાં હતી.

વડોદરાના નવીન મહારાજ શ્રી પ્રતાપસિંહ ગાયકવાડના રાજ્યારોહણ-પ્રસંગે શ્રી મેરુ લીલાને આમંત્રણ મળ્યું હતું; અને સારી કદર યથા હતી; કહે છે.

બીજી ફેબ્રુઆરી-પંચાત કામે માટે વડોદરા રાજ્યે બોડિંગ સ્થાપી છે, તેમ વડોદરા રાજ્યમાં વસતી ચારણ કામ માટે કલોલ જેવા મધ્યરથે એક બોડિંગ સ્થાપી આપવા શ્રી મેરુ લીલા તેમની વડોદરા રાજ્ય સાથેની લાગવડ અને વડોદરા-નરેસની મહેરબાની.

મદદ આપી વડોદરા રાજ્યમાં વસતી ચારણ જનિને આભારી બનાવશે, એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

અંતમાં શ્રીમંત મહારાજ સાહેબે તેમના રાજ્યારોહણ-પ્રસંગે ચારણ જાતિના ખોટી ખુશામદથી પર એવા એક સંસ્કારમૂર્તિ સુવાન શ્રી મેડલાને માનપૂર્વક નિમંત્રી જે નિવાજેશ કરી છે, તે બદલ સમસ્ત ચારણ જાતિ એઓ નામદારને ધન્યવાદ અર્પે છે.

**ગુજરાતી-વિભાગ અને તેનું તંત્રીપદ—**

અં લાં ચારણ-સંમેલનના રાજકોટ મુકામે મળેલા-વિગત અધિવેશનમાં તેના મુખપત્ર 'ચારણ' ને ત્રૈમાસિક રૂપે પુનર્જીવિત કરવાનો સર્વાનુમતિથી નિર્ણય થતાં ચારણ જાતિના વસવાટના બે મુખ્ય દેશો— રાજપૂતાના-માલવા અને ગુજરાત-કાઠિયાવાડને એક-ખીજાની વધુ નજીક લાવવા માટે તેને હિંદી અને ગુજરાતી ભાષામાં દાદવાનું નક્કી થયું હતું. પરંતુ ગુજરાતી-વિભાગની જવાબદારી ભાષાડી લેવા માટે તે પ્રસંગે કોઈ તૈયાર ન થવાથી સાં હિં સલાના મંત્રીજી અને ખીજા બે ચાર આગવાનોની આજ્ઞાથી અમે તે કામ કરવાનું કબૂલ કરેલું, અને તદનુસાર તેનો ભાર વહન કરતા આવ્યા છીએ.

પરંતુ અમારે દુઃખ સાથે જણાવવું પડે છે કે, અમે જે જે ઉચ્ચ કેળવણીપ્રાપ્ત બંધુઓ તરફથી જાતીય પ્રશ્નોની વિવિધ દૃષ્ટિબિંદુથી જણાવટ રજૂ કરતી લેખ-સામગ્રી મળવાની આશાએ-અમારી પત્ર ચક્રાવવાની અયોગ્યતાનો અમને પૂરે પ્યાલ હોવા છતાં આ જવાબદારી લીધેલી, તેમના તરફથી મિત્રકુલ સહાય મળી નથી. એ ખાતે અમે વારંવાર કરેલી પ્રાર્થના નિષ્ફળ ગઈ છે. એટલુંજ નહિ પણ રાજકોટ અધિવેશનમાં અમુક સંખ્યા ગ્રાહકો બનાવી દેવાનું વચન આપનાર બંધુઓમાં પણ ભારે જ એક-એ બંધુઓએ એ ખાતે પ્રયાસ કર્યો છે. જાતીય અધિવેશનોમાં જાતીયાં-તમતમતાં લાપણો કરનાર એક વયોવૃદ્ધ બંધુએ તો અનિયમિત રીતે પત્ર જાતીએ તો તેમણે બનાવેલા ગ્રાહકો તેમને હપકો આપે, તેથી પોતાનું વચન મોકેકે રાખવાનું જણાયું, ત્યારે ખીજા એક બંધુએ વચન તો આપ્યું હતું, તેમણે કહેલા પચીસે ગ્રાહકોનું લવાજમ તેમના પર વીં પીં મોકેલી વસૂલ કરવાનું; પરંતુ પ્રથમાંક પ્રસિદ્ધ થવાની તેમને ખંખર આવતાં જે તે બંધુઓ પર વીં પીં મોકેલવાનો આદેશ કર્યો, પછી બંને તે તેઓ પરત વીં પીં વાળે. અને થયું પણ તેમજ. એટલે કે કોઈ પણ પવને ચિરંજીવી બનાવવા માટે જે બે મુખ્ય બાબતો જણાય છે, તે લેખ-સામગ્રી અને ગ્રાહક-સંખ્યાના વિષયમાં વર્ષ દરમિયાન નિરાશા જ અનુભવવી પડી છે.

ખીજા જાતિઓને મુકાબરે આપણે કેળવણીમાં ઘણા પાછળ હોવા છતાં એ બૃહદ ગુજરાતમાં આપણામાં પાંચ-સાત એન્યુએટ અને પંદર-ત્રીસ મેટ્રિક થયેલા બંધુઓ છે. પરંતુ તેઓ પૈકી એક પણ વ્યક્તિનું નામ આજના ગુજરાતી-સાહિત્યમાં જોવા જડતું નથી. જાણે કે પ્રાચીન કાળમાં ચારણ જાતિએ સાહિત્યિક જીવન છતી જાહેર્યું હોવાથી એ કાળની ખિન સાહિત્યિક કામોની આજની ઉચ્ચ શિક્ષાપ્રાપ્ત વ્યક્તિઓને એ ખાતે માર્ગ કરી



## श्रीकिशोर-स्मारक-श्रद्धांजलि-ग्रंथ

अ० भा० चा० सम्मेलन के पंचमाधिवेशन (राजकोट) में सवानुमात से स्वीकृत किए गए प्रस्तावानुसार सम्मेलन पत्र राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी ने निश्चय किया है कि, सम्मिलित रूप से चारण जाति के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० सा० श्री किशोरसिंहजी वाईरूपतय 'पागल' कवि की पुण्य-स्मृति में उनका एक स्मारक-ग्रंथ प्रकाशित किया जावे। उस ग्रंथ में उनके संस्मरण और विविध लेखों तथा कविताओं का संग्रह भी रहे।

इस विषय में उक्त डा० सा० के पुराने-परिचित मित्रों एवं प्रत्यक्ष नहीं परंतु उनके अक्षर-देह से परिचय रखनेवाले साहित्य-प्रेमी महानुभावों से प्रार्थना की जाती है कि, वे उनके संस्मरण एवं उनकी सामाजिक तथा साहित्यिक योग्यता संबंधी आलोचनात्मक लेख-शीघ्र ही निम्नोक्त किसी एक पते पर भेजने की कृपा करें। ता० १-२-३९

भवदीय

शुभकर्ण कविया

मंत्री-अ० भा० चा० सम्मेलन  
रायपुर की हवेली, जोधपुर

रघुनाथप्रसाद सिद्धानिया

मंत्री-राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी  
७३ ए, चाँसाथिया पाडा स्ट्रीट, कलकत्ता

## “चारण” पर लोकमत

अजमेर से प्रकाशित होनेवाला क्षत्रिय जाति का एकमात्र सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्र ‘क्षेत्रधर्म’ अपने दिसंबर १९३८ के अंक में लिखता है—

“चारण-अ० भा० चारण-सम्मेलन का त्रैमासिक मुखपत्र। संपादक-ठाकुर ईश्वरदान आशिया, गुजराती विभाग के संपादक-श्री खेतसिंह नारायणजी मिश्रण। पृष्ठ-संख्या-हिंदी ३४ तथा गुजराती ३०, कुल ६४, कवर रंगीन। वार्षिक मूल्य २)। एक प्रति का मूल्य ॥१)।

चारण जाति सदा से ही क्षत्रियों को अपने उपदेशमय काव्य से ‘क्षेत्रधर्म’ की शिक्षा देती रही है और समय-समय पर कठिन अवसरों पर अपने कर्तव्यों का ज्ञान कराती रही है। उस जाति की ओर से इस प्रकार का पत्र निकलना स्वाभाविक और उसके अनुरूप ही है। आज भी वीरभूमि राजस्थान के अनमोल रत्न देशभक्त ठाकुर केसरीसिंहजी वारहट (कोटा) इस जाति की शोभा बढ़ा रहे हैं। “चारण” पत्र का बंद हो जाना खटक रहा था। अब विजयादशमी के पुण्य अवसर पर इसका पुनर्जन्म होना वास्तव में शुभ लक्षण है। पत्र जाति के अनुरूप ही है। हम इसकी हृदय से उन्नति चाहते हैं और सफलता की शुभ कामना करते हैं कि क्षत्रिय जाति की इस संकटापन्न अवस्था में ‘चारण’ अपनी सेवाओं से समाज की सहायता कर सके।



ॐ

॥ श्री-जगदीश्वरी नमः ॥

# चारणा

अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन

का

त्रैमासिक मुखपत्र

वर्ष १ ]

रत्नाबंधन

[ अंक ४ ]

विक्रम सम्वत् १९९६

सम्पादक :

डाक्टर भिस्वरदान आशिषा

सहायी सम्पादक :

भैरव शुभकण फयिया, M.A., LL.B.,

मुक्तानी मिश्र सम्पादक :

खेतसिंह नारायणजी मिश्रण

प्रकाशक :

शंकरदान जेठीभार देवा, लीबडी

वार्षिक मूल्य (२) ]

[ एक अंक के ॥ ]



## लेख-सूची

सं० विषय

पृष्ठ

चित्र—कविराजा श्री मुरारिदासजी सा० आशिया	...	...	...
१ प्रार्थना (कविता)—कवि श्री अक्षयसिंहजी रत्न	...	...	१
२ विदा—ठाकुर श्री केशरीसिंहजी सा० सौदा (काठा)	...	...	२
३ राजस्थानी कवियों का प्रकृति-प्रेम-भेवर श्री उदयसिंहजी दधियादिना	...	...	४
४ मेयाडी चारण धंधुओं से—एक जातिप्रेमी	...	...	९
५ हा! आइदानजी!! (कविता)—श्री इंदरीदानजी कविषा	...	...	१
६ चारण-वाणी (कविता-संग्रह)—	...	...	१
७ चारण जाति को कद्र पहिले क्यों थी?—ठा० श्री हेतुदानजी उज्ज्वल	...	...	२
८ काव्य-कुंज—	...	...	३
९ चिट्ठी-पत्री—	...	...	३
१० सम्पादकीय विपणियाँ—	...	...	३

चित्र—साध्वी देवी श्री आंगुष्ठाक्ष देवा	...	...	...
१ समय-मोक्ष (कविता) : श्री अभिसिंह अणेव	...	...	१
२ चारण-साहित्यमां हुडानु स्थान : श्री चेतसिंह नारण्य मिश्रण	...	...	२
३ देवाकुण्ड-उज्ज्वल साध्वी देवी श्री आंगुष्ठाक्ष देवा लवन-परिचयः	...	...	१४
श्री पीतांबरदास ठाकुर	...	...	...
४ सेवा अने संस्था : श्री जयमलदास ठाकुर पांचक	...	...	१६
५ चारण ने सत्कार :	...	...	२२
६ तन्त्री-नोध :	...	...	२४
७ समाचार-संग्रह	...	...	२६

## चारण जाति के महान् नररत्न



महामहोपाध्याय कविराजा श्री मुरारिदासजी सा० आशिया, जोधपुर

जन्म

मृत्यु

वि० सं० १८८९ माघ वदि २

वि० सं० १९५० आषाढ, शुदि ५

बेदा

देश निरोगो महधरा, नृप जसवंत उदार ।

सत्तम चारले कुल जनम, भागन लखी मुरार ॥

[ श्री जीवनलाळजी सा० परराई के वंशवृत्त से ]

ॐ

श्री जगदीश्वरी विनयते

# चारण

अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन

का

त्रैमासिक मुखपत्र

सत्य अमय स्वातंत्र्य उपासक, - सिखा मरण-जीवन का मर्म ।

क्षान्धर्म-उद्घोषक 'चारण', - रहा सदा साधक शुग्धर्म ॥

वर्ष १ ]

रक्षाबंधन

[ अङ्क ४ ]

विक्रम संम्वत् १९९६

## करनी-स्तुति

( स्वः कविराजा श्री बाँकीदासजी आश्रिया कृत )

गीत

ऊँडा पाणियां नदियां उत्तरतां; झड़ मंदियां सग-झाटां ।

सगती! कीजै स्थाय सेवगों; बहतां घाटां-साटां ॥ १ ॥

मेघासां मांझल ठग मझियां; नादर आयां नेडां ।

कुसळ आपरां राखी "करनी;" बैठों सापर बेडां ॥ २ ॥

वैरी विषधर सरब निवारै; बळती लाय बुझायै ।

लोबझियाळ तणा भुज लांया; आंच न दासां आवै ॥ ३ ॥

डाकण भूत कुपे पग दगतां; कड़को बीज अकासां ।

करतां याद मेहांसुत "करनी;" देव ! उबेली दासां ॥ ४ ॥

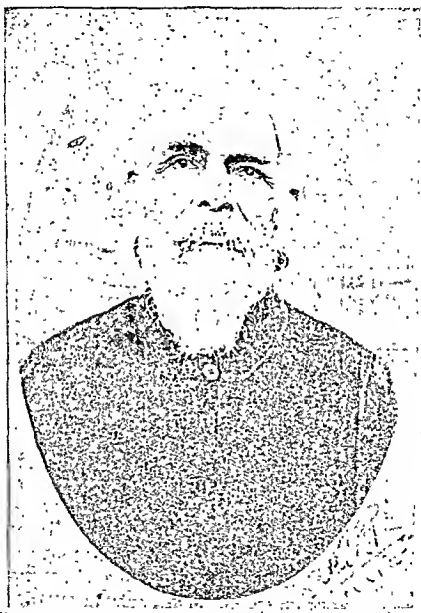
घटांघडी किनियाणी "बांका;" पोप पूजगां पाळै ।

देस-विदेस महीं डाढाळी; राजद्वार रुखाळै ॥ ५ ॥

—राह-सम्पादक

## विदा

मुझे बचपन-  
ही से अपने पूज्य  
पितुःश्री के अति-  
रिक्त, उदयपुर के  
मुप्रसिद्ध प्रातःस्मर-  
णीय स्तनागधन्य  
महामहोपाध्याय  
कविराजा श्री त्याग-  
लदासजी से शिक्षा  
और संस्कार प्राप्त  
करने का सौभाग्य  
...। वे महाबुद्धि  
...। उनके मुखार  
और अमृतद्वय की  
अपनी तीव्र इच्छा  
का अधूरा ही संसार  
में छोड़ गये। उनकी  
उस जातिसेचामादना  
का मैंने अपने ऊपर  
ऋण समझा, और  
मेरा निज का सहज  
कर्मव्य भी वही था;



अतः नम्रसेवक के नाते मैंने अपनी तुच्छ शक्ति  
अनुसार जो कुछ बना, किया: जिसका प्रारंभ आज  
से ४७ वर्ष पूर्व हुआ था। फिर भी कुछ है कि  
मैं अपने संतोष-योग्य परिणाम पर न पहुंच सका।  
कारण? कारणों को कहाँ तक गिनाऊँ! रात्रसेवा,

विशालसेवाक्षेत्र की ओर संलग्नता और आहुति,  
अमानव्य विनाशनीयता, जो समय मिले उसमें  
भी "कुन्हाड़ा भोग्य" और "चा चौकण" अर्थात्  
मेरी शक्ति की अनेक छेय कुसंस्कारों के आचरण  
की मोटी और कठोर सतह आदि आदि।

अब शारीरिक अस्वास्थ्य एवं वृद्धावस्था-जन्य स्वाभाविक विरसुति का संवार और उपराम-भाव मुझे इस जातीय सेवाक्षेत्र से विरति-विश्राम पाने की प्रेरणा दे रहा था और इसके लिये मैं दो तीन वर्षों से सचेत था।

अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन के गत राजकोट-अधिवेशन में मैंने अपने से अधिक साक्षर एवं नवसूतिसम्पन्न, देशकलेषयोगी स्वजातीय नवयुवक स्त्रियों पर स्वातिरोका का भार सौंपकर अपने आप को हलका किया। मेरे न चाहते हुए भी सम्मेलन ने फिर एक वर्ष के लिये मुझे अपने प्रधानाध्यक्ष के पद पर बैठा दिया और मैंने भी उस विशेष आग्रह के सामने सिर झुकाकर, नाममात्र का संबंध स्वीकार किया। वह समय भी समाप्त हो चुका।

अब सम्मेलन का व्यावहारिक भार उपप्रधानाध्यक्ष श्री हेतुदानजी साहब उज्जैन, एम० ए०, एल० एल० बी० (मराठा) के सुयोग्य हाथों में सौंपकर सर्वतोभावे से अपने आपको निरुत्तर

करता हूँ। अब मे जिस किसी को समझ-संबन्धी लिखापढ़ी करना हो वे हेतुदानजी सा० सौमन्त (मराठा) के पते से करें।

मैं इस अंतिम विद्या के साथ ही लक्ष का स्वजातीय सज्जनों एवं संस्कार सा० ईश्वरसिंह जैसे राजपूत महानुभावों का हृदय से आभ्युपगमना हूँ, जिनके उत्साहपूर्ण सहयोग से जातीय अनुपमस्वरूप अ० भा० चारण-सम्मेलन का प्रारंभ जो परिपालन होता रहा। विशेषकर अ० सा० ईश्वरदाजी आशिया (मिवाड़) का आभारी हूँ जिन्होंने सम्मेलन के प्रारंभ से गत वर्ष तक सम्मेलन के प्रधानमंत्री-पद पर अत्यंत और सत्तु-आप्त परिधम करके एवं निजी स्वार्थ-हानि में उद्यत हुए भी मुझे अनुपम सक्रिय सहयोग दिया है और जिनकी जातीय सेवा आदर्शरूप है आब भी "चारण" के सुचारु संप्रदान में प्रयत्न है।

मनुष्य के काम सर्वथा निर्दोष नहीं होते अतः कुछ भी त्रुटियाँ रही हों, उनके लिये नमस्तेज के नाते, क्षमायाचना मेरा स्वाभाविक धर्म है।

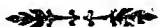
भाषिक-भवन, कोटा  
आगस्ट शुक्र ४ तम १९१६

स्वजाति का विनीत अधिकृत सेवक  
के.सरीसिंह

(पृष्ठ ८ का जोप)

अत्युक्ति न होगी। सेवा समाप्त करने के पहिले हम यह आशा प्रकट करते हैं कि यदि पाठकों का उत्साहपूर्ण सहयोग रहा हो राजस्थान-रिमर्च-सोसायटी-कलकत्ता एवं अखिल भारतवर्षीय चारण-सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन पर डिमंड-ग्रहण की अप्रकाशित पुस्तकों की खोजकर प्रकाशित करने के अर्थ स्थापित क्रमेटी के सदस्यों के परिधम से राजस्थान के चारण एवं चारणेश्वर कवियों के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ, साहित्यप्रेमियों के सम्मुख उपस्थित होकर उन्हें प्रकृति-चित्रण आदि का रसास्वादन करावे और उन प्रकृति-उपासक कवियों के प्रकृति अर्पित मुक्तियुक्त हुए भद्रा के पुष्प भी एक बार फिर से खिल उठें और सारे संसार में अपनी सुगन्ध फैलावे।

## राजस्थानी कवियों का प्रकृति-प्रेम



( ले०-भैवर श्री उदयसिंहजी दधिवाड़िया, एम० ए०, पल्-पल् बी०  
( द्वितीय वर्ष ), हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी )

कवि स्वभाव से ही प्रकृति का उपासक होता है। एक साधारण मनुष्य तो प्रकृति में केवल मूकभावना का आभास मात्र पाता है, परन्तु कवि को प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में सजीवता दृष्टि-गोचर होती है। क्या वृक्ष के नीरव अवयवों में, क्या समुद्र की शांत लहरों में, क्या पर्वतों की मर्मरध्वनि में, क्या मेघों की गंभीर गंजेता में, क्या कुमुद की कौमुदी में और क्या वायु-कम्पित बने। में-सबमें ही कवि सदैव सजीवता की अनुभूति और प्रकृति के गूढ़ रहस्यों की उपलब्धि करता रहता है। पृथ्वी, पहाड़, नदी, पेड़, समुद्र, आकाश, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि सगस्त प्राकृतिक वस्तुओं तक कवि की पहुंच है। उसकी अनुभूति प्रकृति के सब पदार्थों में परिष्कृत रूप में रहती है। उसे लता-पादपों की आन्तरिक वेदना तक का वास्तविक ज्ञान रहता है।

संसार के साहित्यिक इतिहास के पन्ने उलटने से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि प्रत्येक साहित्य में समय-समय पर ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने प्रकृति-चित्रण में अपनी अतुलनीय कुशलता प्रदर्शित की है। उदाहरणार्थ अंगरेजी साहित्य को ही लीजिये-वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शैली आदि प्रकृति-उपासक कवियों का नाम प्रत्येक अंगरेजी-साहित्यप्रेमी जानता है। संस्कृत में भी कालिदास, वाण इत्यादि का नाम किसी भी संस्कृत-ज्ञाता से छिपा नहीं है। हिन्दी के प्राचीन कवियों में जायसी, सूर तुलसी आदि कितने ही कवि हो गये हैं, जिन्होंने प्रकृति-वर्णन में ख्याति प्राप्त की है; और वर्तमान कवियों का तो कहना ही क्या-कविताक्षेत्र में फैर रखते ही उन्हें प्रकृतिदेवी की शरण में जाना ही पड़ता है। उर्दू के शायरों की प्रकृतिविषयक कविता तो हम रतदिन उर्दू भाषा-भाषियों के मुख से सुनते ही रहते हैं—

“इस शान से इठलाते हैं ये जवानाने चमन;

लेती है शवा गोद में तो जाते हैं मचल ॥”

यही हाल राजस्थानी साहित्य का भी है। प्राचीन चारण एवं चारणेश्वर कवियों ने प्रकृति-चित्रणकला में कुछ उद्य नहीं रखा है।

चारण जाति के इतिहास पर दृष्टिपूर्व करने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में चारण लोग सुमेरु, हिन्दुकुश आदि पर्वतों की पर्वतभूमि पर निवास करते थे और आज तक भी प्रकृति-देवी के क्रीडास्थल प्रान्थों में ही निवास करते आये हैं। अतः जो जाति प्रारंभकाल से ही प्रकृतिदेवी की गोदी में पलती आई है। उसके साधारण से साधारण परंपरा में भी प्राकृतिक



वस्तुओं के प्रति अपनी कवित्वशक्ति-द्वारा भ्रष्टों के देवचार फूल अर्पण करने की शक्ति पाय तो कोई आश्चर्य नहीं। फिर ऐसी परिस्थितियों में पले हुए चारण कवियों का तो कहना क्या? यह बात प्रायः देखने में आती है कि जहाँ कवि अपनी अनुभवशक्ति से काम लेता वहाँ कल्पनाशक्ति से कार्य करनेवाले कवि को पीछे ही स्थान मिलता है; चाहे वह अविषयों में पहिले कवि से कितना ही गुस्तर हो। अतः यदि हम यह कहने का साहस करें प्रकृतिदेवी के आश्रित चारण-कवि, हिन्दी तथा अन्य साहित्यों के कवियों की अपेक्षा कुछ अ में प्रकृति-चित्रण करने में अधिक सफल हुए हैं तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

यों तो चारण जाति में छोटे-बड़े अनेक कविरत्न उत्पन्न हुए हैं; जिन्होंने किसी-न-किसी प्रकार से-किसी ने अपने ग्रन्थों के किसी कोने में स्थान देकर और किसी ने चलते ही कोई टुकड़ाकर छोटे-से दोहे या सोंठों के रूप में अपनी भ्रष्टांजनी प्रकृतिदेवी के अर्पण की—जिनका यदि संग्रह किया जाय तो एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो सकता है। किन्तु प्रस्तुत लेख स्थानाभास के कारण पाठकों के परिचय मात्र के लिये चारण एवं चारणतर कवियों प्रकृति-चित्रण के कुछ उदाहरणों को रखना ही पर्याप्त होगा—

सर्व प्रथम प्रकृति-चित्रण में वही कवि सफल समझा जाता है जो अपनी अनुभवशक्ति द्वारा मनुष्य के हृदय में उत्पन्न भावों का प्रकृति में उभय भावों के साथ सामञ्जस्य दिखा दे। इसमें प्रकृति का रसन एवं हास्य मनुष्य-हृदय के रसन और हास्य के साथ दिखाना आता है। यह बात राजस्थानी कवियों की कविता में खूब भरी पड़ी है। ये यह दिखाने में सफल हुए हैं कि किम प्रकार एक ही तरह का प्राकृतिक वस्तु, संयोगिनी को तो आनन्ददायक और विरहिणी को दुःखद प्रतीत होती है।

उदाहरणार्थ—वसन्तऋतु के शीतल-मन्द-मुगन्ध पवन के विषय में एक वियोगिनी और संयोगिनी में परस्पर नाद-विवाद हो रहा है कि—

गुण-गन्ध-प्रदित गिलि गरल उगलित, पञ्चगवाह प उभय पख।

श्रीखंड सल संयोग संयोगिनि, मणि विरहणि भुयंग भख ॥

वियोगिनी तो कह रही है कि “यह पवन सर्प का भक्ष्य है अर्थात् सर्प-द्वारा निगल जाकर उगला हुआ विष है लेकिन संयोगिनी कहती है कि वह चन्दन वृक्षोंवाले पर्वत (मलयचल) के संयोग से उसके गुणों के (शीतलता और गन्ध के) ग्रहण किये हुए हैं।

इसी प्रकार संयोगिनी तीज के त्यौहार पर अपने रसिक प्रेमी से कहती है कि—

भोर शिखर ऊँचा मिळे, नाचे हुआ निहाल।

पिक ठहके शरणा पड़े, हरिमे डूँगर हाल ॥

घनघोरां जोरां घटा, लोरां-वरपत लाव ।  
 बीज न मावे. वादळां, रसिया तीज रमाव ॥  
 इन्द्र धनुस तणिया अजव, चातक धुन मन चाव ।  
 बीज न मावे वादळां, रसिया तीज रमाव ॥

दूसरी ओर वियोगिनी के हृदयोद्गार पर भी दृष्टिपात कीजिये —

बड़कत तड़कत बीजली, धड़कत तड़कत गाज ।  
 कोप करे आवै घटा, आ-कुण ऊपर आज ॥  
 गाज नगारो, स्वमक खग, वरसत बाणें तड़ाक ।  
 घटा नहीं आ काम की, आवै फोज लड़ाक ॥  
 मोर सौर कर कर मसत, तरघर बैठया जाय ।  
 घण घूटै घूटै घटा, मो तन ऊठै हाय ॥  
 तरत भरत सुकत सरत, दादर मरत दुरंत ।  
 प्रीतम घर नहिं पेखतां, चैरण बणी बसंत ॥

हिन्दी के प्राचीन कवियों में जायसी ने अपने प्रसिद्ध प्रवन्धकाव्य “पद्मावत के हृदयोद्गार भी इसी प्रकार से अंकित किये हैं तथा तुलसी ने भी सीता का विरह कुछ अंश में इसी प्रकार का दिखाया है ।

द्वितीय प्रकार का प्रकृति-चित्रण वह है जिसमें प्रकृति आलंकारिक रूप में हमारे सामने आती है । इसमें प्रकृति के प्रति कवि का अनुराग प्रगट हो जाता है । इसके भी अनेकों उदाहरण प्राये जाते हैं—

तरुलता पल्लवित तृणे अंकुरित, नीलाणी नीलम्बर न्याई ।  
 प्रथमी नदि में हार पहरिया, पहिरे दादुर नूपुर पाई ॥

लताएं और वृक्ष अब पल्लवित हो गये हैं, तृणों से अंकुर निकलने लग गये हैं, पृथ्वी, हरी साड़ी पहनी हुई—नायिका की भाँति हरीभरी हो गई है । उसने नदी रूपी हार पहिन लिया है और पैरों में दादुर रूपी नूपुर पहिने हैं ।

हुवइ घटि नदी हेम हेमाले, विमल शृंग लगा बधण ।  
 जीवनागम कट कूस यावै जिम, यावै धूल नितंब थण ॥

नदियां घटने लगीं और हिमालय पर्वत पर बर्फ के गूंग धुने लगे जिस प्रकार कि रंग के आने पर किसी नायिका की कमर पतनी तथा उरोज और निरुंघ स्थूल हो गये हों।

घनवन घरोघर तरचर सरसर, पुरुष नारि नासकपय।

यसंत जनम री देण बधाई, रमे वास चदि पवन रय ॥

घनवन के जन्म होने की बधाई देने के लिये सुगन्ध रूपी बधाईदार पवन के रस पर चढ़ घन-वन में, नगर-नगर में, घर-घर में, तर-तर में, सरोवर-सरोवर में और समस्त नर-नारिये नासिकपथ में विचरण कर रहा है।

जति अम्य मौर तोरण अजु अजुज, कैंली सुमंगल कळस कर।

धन्नरमाळ बंधाणी बल्ली, तरचर पक बिये तर ॥

धनी अस्त्रमंजरी जो मानो तोरण है और जो कल की कलियां हैं वे हों मानो मं कडस है और एक युद्ध से दूसरे युद्ध पर लिपटी हुई लताएं मानो बंदनवार बांधी गई हैं।

आयो इळ यसंत बंधावण आई, पायण-पत्र नळ पण पर।

आणंद बणे काच मे अंगण, मामण मोत्यां चाळ भर ॥

पृथ्वी पर यसंत आया है। नखिलो के पत्र पर जलकण इस प्रकार सुशोभित हो हैं जैसे काच के बने बांगन में आनंदित सुंदरियां मोतियों से थाल भर बधाने आई हों।

सबळ नळ सुभिन्न सुगंध भेट सजि, डिगमिग पांथ वाय क्रोध डर।

हल्यौ मलयाचळ हंत हिमालय, कामदूत हर प्रसन्न कर ॥

जल से भीग होकर सबल हुआ, रुद्र के दर से डगमगाते हुए पैरों बाला, सुगन्ध भेंट सजाकर महादेव को प्रसन्न करने के लिये कामदेव का दूत शीतल-मंद-सुगंध वायु मलया से हिमालय की ओर चला।

तीसरे प्रकार का प्रकृति-वर्णन यह है जहां प्रकृति पार्थक्य रूप में हमारे सामने आती इसमें प्रकृति द्वारा उपदेश देनेवाली वस्तुओं का सद्भाव लिया जाता है। महाकवि नरहरदा बारहठ ने अपने प्रसिद्ध काव्य “अवतार चरित्र” में जहां जहां आश्रमों का वर्णन किया वहां इसी प्रकार का प्रकृति-चित्रण मुख्य है। जैसे—

विविध सिंह मृग, व्याहरत, यसत विचित्र विहंग ।  
 मत्त पुंज गुंजत मधुप, जहँ निशरनि तरंग ॥  
 तरुन प्रफुल्लित फलित तरु, पत्र हरित नित पाइ ।  
 सीतल मंद सुगंध सुख, सेवत वात सुभाइ ॥

अंतिम प्रकार से प्रकृति का चित्रण उस प्रकार से किया जाता है जहाँ प्रकृति चित्रपट के रूप में हमारे सामने रखी जाती है। इसके उदाहरण भी “अवतार-चरित्र” के कृष्णावतार अध्याय में बहुत मिलते हैं। जैसे—

फूले सरनि सरोरुह सोहत, मिलि मधुमत्त मधुप मन मोहत ।  
 अति सुख भास विहंगम अन अन, तांडव मत्त मयूर चित्रतन ।

सू० कविवर फतहकरणजी उज्ज्वल मेवाड़-निवासी रचित “पत्र-प्रगाकर” में कि जिसमें मेवाड़ आदि का वर्णन किया गया है, इसी प्रकार का प्रकृति-वर्णन विशेषतः मिलता है।

फुटकर कविताएँ भी अनेकों ऐसी मिलती हैं जिनमें प्राकृतिक दृश्यों के मनोमुग्धकारी एवं सजीव चित्र बड़ी सुन्दरता से अंकित हैं—जिनमें से एक-एक दोहा प्रत्येक चारण-साहित्य-प्रेमी की जिह्वा पर आज भी विद्यमान है। उदाहरणार्थ—

लूँवां झड़ नदियां लहर, बकपंगत भर बाय ।  
 मोरां सौर ममेलिया, सावण लायो साथ ॥  
 कोयल करै टहकड़ा, पपिया करै पुकार ।  
 घन धुर • अंबर धुँमडियो, धर झर मेहां धार ॥  
 बागां बागां बावदियां, फुलबादां चहूँ फेर ।  
 कोयल करै टहकड़ा, अइ हो धर आमेर ॥  
 काळा बादल बरसिया, मोर हुआ महमंत ।  
 सहरां सहरां संचरी, बादू बाद खिबंत ॥

अंत में हम निःसंकोच कह सकते हैं कि राजस्थानी कवि भी प्रकृति-चित्रणकला में अन्य कवियों से किसी अंश में कम नहीं रहे हैं। हिन्दी के अन्य कवियों ने तो कई स्थानों पर प्रकृति-चित्रण करते समय अनेक भूलें भी की हैं। जैसे, किसी ने कहीं तो केवल वृक्षों के नाम गिना दिये हैं, किसी ने केवल बाघ पक्ष तो ही अपनाया है और जहाँ आंतरिक पक्ष चित्रण करने का अवसर आया भी है वहाँ उसे ठुकरा दिया है। उन्होंने सब प्रकार के प्रकृति-चित्रण की ओर ध्यान दिया है और जैसा अवसर हाथ लगा उसे कभी केरा नहीं जाने दिया। अतः यदि हम राजस्थानी कवियों के ग्रन्थों को प्रकृति-चित्रणकला का अमूल्य भंडार मानें तो केवल

कसी ने क्या कुछ किया है ? क्या फिर एक भी दफा उसी तरह या व्यक्तिगत रूप से जा कर याददिलानी के लिये फिर किसी ने आपका दुखड़ा रोया है ? किन्तु और कोई क्यों रोवे ? जिनके गांव ज्वन हो गये हैं या जिनके गांवों के लिये कारंवाई शुरू है उन लोगों को भी इस तरह कोशिश करने की नहीं सूझती कि जिससे उनका लाभ हो जाय—उन पर होनेवाला जुल्म मिट जाय, तो फिर और किसको श्राप दिया जाय ? क्या लोग आपको डराते हैं कि इस तरह कोशिश करने से राज्य खफा हो जायगा ? प्रथम तो राज्य इस तरह से कभी खफा नहीं हुआ करता क्योंकि वह जानता है कि दुखी-दरि और किसके पास जावे। और कदाचित् स्थल या अहंकारवश राज्य आपकी इस प्रकार की शांत और उचित कार्यवाही से भी नाराज होता है तो ऐसे राज्य से आपको फिर क्या आशा हो सकती है जिसके कारण आप डरें। नाराज होने से जिस भय की आपको आशंका हो सकती है वह तो आपके विर पर छा रहा है।

किन्तु इन्ने गहरे उतरा ही क्यों जाय ? वे सब भय तो तब सोचने की चीं जब मेवाड़ पर कोई निर्दय जुल्मी राजा राज्य करता होता। आपके हमारे सौभाग्य से मेवाड़ के सिंहासन पर जो विराजमान है उनकी सरलहृदयता सर्व-श्रुत है और सुना है उनके पवित्र हृदय में है दया का स्रोत। वे नहीं चाहते कि किसी पर जुल्म हो। ऐसे दयालु मालिक को फाकर भी आप दुख भोगते हो तो इनका श्राप किस को है ? आपकी जीविकायें जावे और आप इतना भी न कर सकें कि सब अपने मालिक की सेवा में

फिर आपके लिये कोई अच्छी उम्मीद नहीं हो सकती।

जमीन के उपयोग और रक्षा के लिये, याद है, स्व० महाश्वि ठाकुर सूर्यमल्लजी मिश्रण क्या कह गये हैं—

घोड़ा घर ढाला पटल,

भाला थंभ बनाय।

जे ठाकर भोगे जमी,

और किसी अपनाय ॥

भाले के खंभों और ढालों की छत से घोड़े पर ही घर बनाकर जो शस्त्रवीर पृथ्वी का उपयोग करते हैं उनसे उनकी जमीन कौन ले सकता है ?

पटल मिट्टे धण वृद्धियों,

किण कीधा किण हत्य।

बीजड़ साहे बोलियों,

इण डाकण भू अत्य ॥

प्रथम मिलन में पत्नी ने अपने हृदयेश से पूछा कि हाथ में ये औटण (खुरदरापन) किस कारण से है ? पति ने तलवार उठाकर कहा कि भूमि के लिये इस डाकिनी ने ये औटण किये हैं।

खासी कुछ री खावणा,

नेपे घर घर नींद।

रसा कँवारी रावता !

चरती को ही बींद ॥

हे कुल्लेपार्जित भूमि के खोनेवाले ! तुम्हारे यहाँ तो आवकल-घर २ आउत्य और प्रमाद ही तरकी पर है। बहादुरो ! यह रसा तो तुम-रिख है जिसके तल्ले गनंकर उपयोग तो

परन्तु बन्धुओं। आपको तो इस समय इस तरह घोटों पर घर करने की भी तो जरूरत नहीं है और न अपना यह तरीका ही है और नहीं है जरूरत अपने परम्परागत शस्त्र "धरणे" के काम में लाने की। आपको तो अभी इतनी-सी जरूरत है कि जैसे सन्तान अपने मातापिता से अपनी इच्छापूर्ति के लिये अड़ जाता है वैसे ही अपने मातापिता-स्वरूप। दयालु स्वामी की सेवा में पहुँचकर अड़ जाओ और तब तक "साड़ा" करते रहो जब तक आपका दुःख दूर न हो। मुझे तो आता है इस तरह आपकी प्रथम प्रार्थना से ही आपकी दयनीय दशा पर आपके महान् स्वामी का हृदय द्रवित हो जायगा और आपका सब संकट दूर हो जायगा। आप लोग किसी के मुलाये में मत आओ और न किसी के डरये डरो। भूपाल-सिंहजी जैसे स्वामी सब समय कहां मिलते हैं? सब मिलकर उनकी शरण में जाओ तो सही, वे आपके अवश्य अभयदान देकर अपने "शरणार्थी साधार" विरुद्ध की रक्षा करेंगे।

इतना तो जाति के छोटे-बड़े सबसे निवेदन। अब दो शब्द उनसे जो मेवाड़ी चारण जाति में संपूत माने जाते हैं और कुछ हैसियतवाले और समझदार समझे जाते हैं। इनमें मुख्यतया कविराजा सा०, चारहजी सा० प्रसूति उदयपुर की हवलियेवाले और इनमें भी दधियादिया बंधुद्वय य० करनीदानजी, खेमराजजी; य० नार्थसिंहजी, महियारिया और बाहिर गाँवों के य० फेसरीसिंहजी चारहठ, सौन्याणा; य० बिदाम-सिंहजी आशिया, मंगटिया; य० चंड़ीदानजी कविया, दाया; य० वंशतावरसिंहजी मधुप, मोमखंड; य० पृथ्वीराजजी आशिया; पर्वत; य०

सुमाणिसिंहजी चारहठ, वरवाड़ा; य० काकूसिंहजी जसकर्णजी माधिया, जैतपुर; य० सिंघायच, मंडा; य० रामलाजजी सौदा, व० और ऐसे ही दूसरे सब सज्जन जो इनकी में आते हों, उनसे निवेदन है कि आप लोगों गारी उत्र अपने घर के लिये परिश्रम करते बिताइं। कभी कुछ जातिहित का कार्य भी होय तो धन्यवाद। परन्तु आप जानते हैं, गहां कहावत है— "जीव जाज्ये पण जीवाइ जाज्ये।" आज जाति की वह "जीवाइ" जीविका जा रही है। आप जैसे सपूतों के हुए उसके लिये कुछ भी उपाय नहीं हो है इसको क्या आपको लज्जा नहीं है? आपको नहीं मादम कि हंगरपुर-बांसवाड़े चारणों पर जब ऐसी ही आपत्ति आई थी स्व० महामहोपाध्याय कविराजा मुरारिदानजी सा० आशिया (जोपुर) आदि ने उनसे हो उतनी मदद की थी और उनके उस उद्योग में यहां से भी फरीब चार सहस्र रुपये उन्हें गये थे। जिनके हृदय में जाति के दुःख दर्द होता है वे इस प्रकार दूसरे राज्य के पास जाकर भी केशिश करते हैं और राज्य के चारणों से बंदा भी लाते हैं। आज न तो वे कविराजा हैं और न साहसी साधी—य० संकरदानजी आद्या व मुरारिदानजी चारहठ। आज काम आपसे है आपको तो उनके समान किसी दूसरे राज्य चारणों के लिये किसी दूसरे राजा से कुछ न कहना है। आपको तो अपने लिये, अपने मालिक से अपनी कष्टकथा निवेदन कर देना है क्या आप लोगों से यह भी नहीं होता? आप लोग भी किसी कल्पना से भयभीत हो हो? आश्चर्य!! या इतने स्वाधीन हो रहे

ह अपने २ घरों का कुछ काम कुछ दिनों या हीनों के लिये बिगड़ने के खयाल से जाति भर की मेवाली महान् क्षति को आप देख ही नहीं सकते? हा दैव !!

महरवानो! जरा सोचो। आप लोगों के मिलकर थोड़ा उद्योग करने से जाति का भल्य [ जाने की संभावना है। अतः कालनिक डर न दूरकर और कुछ समय के लिये गृहकार्य प्र नुकसान बर्दाश्त कर आप सुखियां लोग ही हो मेवाड़-चारण-सभा के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं, आगे धाओ और मिलकर थो मालिकों की सेवा में अपनी दुःखगाथा पहुँचाओ। समय, अवसर निफल जाने पर केवल पथात्ताप ही शेष रह जायगा और आप लोगों के शिर पर जाति के इन संघटकात्त में भी त्वाप या प्रमादवश कुछ भी

उद्योग न करने का, क्षमा करें, अमिट कलंक का टीका लग जायगा। अतः दीर्घसूत्रता में कालक्षेप मत कीजिये और जगदम्बा का नाम लेकर आगे बढ़िये।

अन्त में, मैं, उदयपुर-निवासी सजातीय तीनों मारवाड़ी महासुभाष-उज्ज्वल वन्धुद्वय टा० विजय-कर्णजी, शुभकर्णजी एवं टा० जसकर्णजी रत्नू से सविनय प्रार्थना करता हूँ कि वे भी उनसे हो सके उतना इस कार्य में तन-मन से सहयोग देने की कृपा करें। यह काम किसी एक का नहीं है। जिस किसी को जाति से कुछ भी प्रेम है वह इस सत्कार्य में सहयोग देकर यश एवं पुण्य का भागी हो सकता है। जय जगदम्बा! मेवाड़ेश्वर की जय!

विनीत

आप में से ही एक

## हा! आईदानजी!!

( रचयिता-श्री बदरीदानजी कथिया (वासनी), चकोल, चीफकाट, जोधपुर )  
देहा

हा! अनरय मोटो हुओ, जिको सखो नह जाय।

क्यूँ 'आदल' ने कोसियो, हाय! विधाता हाय!! ॥ १ ॥

कमल-फूल कुमलाय गो, खिलते ही पटली खास।

'आदल' रो मरणो सुणे, हुय गा सरब हतास ॥ २ ॥

जैता री मत जायने, होय रुद्धा हैरान।

क्यूँ ये बदलो काहियो, दिन इण आईदान! ॥ ३ ॥

हुआ कुटुंबी हँ हमें, साराइ मृतक समान।

मरने क्यूँ दीधो महा, दुःख ओ आईदान! ॥ ४ ॥

जातिहितैपी हो जबर, हिमसंवर हुसियार।

ब्रन चारण किम बीसरे, ( येने ) दिन-निस आईदान! ॥ ५ ॥

इसी मौत नह न्ही अठे, इण वरसां में और।

बबराया सुणने घणा, जिण रो न्हे की जोर! ॥ ६ ॥

## चारण-वाणी

( १ ) हरिभक्त ओपाजी आढा के गीत

( गताङ्क से आगे )

९

क्यूं पड़पंच करै नर कूड़ा, बिलकुल दिल में धार विवेक ।  
दाता जो बापी लिख दीनो, आधी लिखणहार नहिं एक ॥ १ ॥  
पर आता तज रे तज प्राणी, परमेस्वर भज रे भरपूर ।  
सुख लिखियौ दुख नाह सांपजे, दुख लिखियौ सुख होसी बूर ॥ २ ॥  
काला जीव लेभ रै कारण, खाली मती जमारौ खोय ।  
करता जे लिखिया कूंकू रा, काजल तणा करै नहँ कोय ॥ ३ ॥  
भज रे तरणतारण मे बिपया ! वृजां री काजी मत देख ।  
फोड़ प्रकार द्यै नहँ किण सू, लिखिया जिके विधाता लेख ॥ ४ ॥

१०

नहचल अत रहण कता ना रे ना, आगम फालनदी आ रे आ ।  
साठ-म दाट कही क सा रे खा, गिर-जल जिम दिहड़ा गा रे गा ॥ १ ॥  
भरै खजाना धरती भेदे, चोर-कन्क लेसी घर छेदे ।  
बांट बांट कहियो इम वेदे, दीह भजाणा ताळी दे दे ॥ २ ॥  
लोभी ! मनख जमारौ लाधौ, बे नजर्यां पाटी किम बाधौ ।  
ऊमर तणो भरोसी आधौ, खोळा री धन खाधौ खाधौ ॥ ३ ॥  
बिसन समर लौ मीठी बाणी, बाघर लौ धन देह चिराणी ।  
“ ओपा ” या ऊमर यूं जाणी, परबत हंत चिट्ठा पाणी ॥ ४ ॥

११

माटो री ठाम जेत तिण मांहे, घण तिय फेर घणै घरे ।  
घुड़लौ किंतीक चार घूमसी, फोड़णहारा लार फेर ॥ १ ॥



गंगरी मले गीत सह गावै, जतन रखावै जुधा जुधा ।  
 केरुं हवै किता घर फिरसी, हेरु लोचपलोच हुवा ॥ २ ॥  
 अल जतने माथे ऊपाड़े, रंभा दोळी थकी रहै ।  
 आस किछुं राखीजै ईं री; वैरी छोरा पास बहै ॥ ३ ॥  
 रतन तणी विध जतन राखतां, खड़ग तणौ घा खमियौ ।  
 पौहर तणी हतो पामणौ, गावतझांइ ज गमियौ ॥ ४ ॥  
 मटियौ तेज जोत मुरझाणी, पड़ियो कुंभ पियारौ ।  
 अध खण मांहै हुचौ अचीतो, अजवाळै अंधियारौ ॥ ५ ॥  
 यो घट धुड़लौ जाण "ओपला !" गोविंद काय न गावै ।  
 खळ जमराण काढियै खांडै, आतुर कीधा आवै ॥ ६ ॥  
 मोटो प्रसण डांग लै मोटी, काळ घणा नर कूटै ।  
 काचो कुंभ मनख री काया, फिरतां इ गिरतां कूटै ॥ ७ ॥

२०/४/२२

(२) महाकवि डा० सूर्यमल्लजी मिश्रण (बूंदी) रचित

वीरसतसई

(अपूर्ण)

(गताङ्क से आगे)

याळ वज्रतां हे सखी, दीठा जैन फुलाय ।

बाजां रै सिर चेतणौ, झूणां कवण सिखाय ॥ ५१ ॥

नवजात शिशु की ओर संकेत करके, माता अपनी सखि से कहती है कि प्रसूतिकाल के समय बजते हुए, याळ के हसने आंखें फाड़, रंकर देखा या । सखि ! बाजा सुनते ही उत्तेजित हो जाना इन बच्चों को गर्भ में ही न जाने कौन सिखा देता है ?

धण आखै जागो धणी, हुंकाळ कळळ हजार ।

विण नूता रा पाहुणा, मिळण खुलावै चार ॥ ५२ ॥

पत्नि कहती है कि पतिदेव ! जागिये । हजारों लोगों का घोर उत्तर हो रहा है और

देख सखी ढोली रमे, फौजां में धव एक।

सागर मंदर सारसी, ढोहै अनङ्ग अनेक ॥ ५३ ॥

सखि ! देख, शत्रुसेना में एकाही मेरे पति कैसी होली खेल रहे हैं। ऐसा मान्यम रहा है, अनेक अन्धों को वे, समुद्र में मंदराचल के समान, बिलेदित कर रहे हैं।

देख सहेली मेा धणी, अजकै बाग उठाय।

मदप्यालां जिम एकली, फौजां पीयत जाय ॥ ५४ ॥

हे सखी ! देख, मेरे उद्धत पति घोड़े की बाग उठाकर अकेले ही शत्रुसेनाओं का ऐजे सापण कर रहे हैं जिसे कोई मदपी मय के प्याले खाली करता जा रहा है।

पग पाछा छाती धड़क, काळी पीळी दीध।

नेण मिचै साम्हों सुणे, कथण हकालै सीध ॥ ५५ ॥

जिस सिंह को सामने मुनने से ही दिन लाल-पीला नज़र आने लगता है, आँखें मिच जाती हैं, छाती धड़कने लगती और पैर पीछे पड़ते हैं, उसे ललकारने का साहस तो भला कौन कर सकता है ?

धुर खती मरियो धपल, सकट हचक्का खायसि।

तिण रौ बालीं बाछडों, तंडै खंध लगाय ॥ ५६ ॥

बलवान् बँल के मर जाने से गाड़ी हचके खा रही है और उसकी धुरी जमीन पर पड़ गई। परन्तु धन्यवाद है प्रभु का कि उस बलवान् का वस्त्र धुरी के फँधा लगाकर खोप करने लग गया है।

तुंडां गज फेटां तुरी, दाढां भड औझाड।

परकण कौले पृथिया, फौजां पायर पाड ॥ ५७ ॥

धुर शूकर ने फौजों में अकेले ही अपनी तुंड से हाथियों के, फेटों से घोड़ों के और दाढ़ों की मार से बहादुरों के बिछौने-से कर दिये और उन्हें रौंद डाला।

यंवी अंदर पाँदियो, काळी दवक काय।

पूंगी ऊपर पाधरौ, आवै भोग उठाय ॥ ५८ ॥

विल के अन्दर सोया हुआ फल साँप पूंगी की आवाज़ सुनकर भी क्या दबका हुआ रहे सकता है ? वह तो फल उठाकर सीधा उस पर आता

अजकौ गहली रौ कळस, बळती रौ नाळेर ।

पकल पृगौ टेकलौ, आस किस्स धय केर ॥ ५९ ॥

वह चपल, वह हठी, वह पगली के कलस, वह सती के नारियल—मेरे पति अकेले ही स्थल में जा पहुँचे हैं; अब उनके जीवन की आशा ही क्या हो सकती है ।

घोड़ां घर भालां पटळ, भालां थंभ चणाय ।

जे ठाकुर भोगै जमी, और किस्सो अपणाय ॥ ६० ॥

जो भूपति बालों की छत और भालों के खंभों से घोड़ों पर ही घर बनाकर पृथ्वी का भोग करते हैं उनसे उसे कोई दूसरा कैसे ले सकता है ?

नायण आज न मांड पग, काल सुणीजै जंग ।

धारां लागीजै धणी, तौ दीजै घण रंग ॥ ६१ ॥

नाइन ! आज तू मेरे पैरों को मूँहरी से बिभ्रित न कर । कल युद्ध सुना जाता है, उस-यदि पतिदेव धारातीर्थ नहावे तब फिर इन्हें तू खूब ही रँगना ।

बाभी देवर, नींदयस, बोलीजै न उताळ ।

चगतां घावां चौकसी, जे सुणसी बंवाळ ॥ ६२ ॥

युद्ध में जखमी हुए पति की शुभ्रपा में लगी हुई वीरपत्नी कहती है कि भावज ! आपके घर थोड़े निद्रावश हुए हैं, शतः जरा घीरे बोलिये । यदि उन्होंने युद्ध का नकार सुन लिया । वे इन बहते हुए घावों में भी चौककर उठ खड़े होंगे ।

देराणी दृग गोध रा, जेठ श्रवण सैजोड़ ।

कोसां चां सुण डोलड़ा, ऊठै नौद बिछोड़ ॥ ६३ ॥

हे देवरानी ! निद्रा की आँखों के समान तुम्हारे जेठ के कान इतने तीक्ष्ण हैं कि कितने कोसों की दूरी के डोल को सुनकर वे निद्रा त्यागकरके उठ खड़े होते हैं ।

कन्त कहन्ता सहगमण, कीधां रहबौ साथ ।

छोडौ अच्छर छेहड़ा, सो घण शलै हाथ ॥ ६४ ॥

हे कन्त ! आप तो कहते थे कि सती होओगी तो अपना साथ बना रहेंगे, और अब हाँ यह क्या दृश्य है ? अप्सरा का पल्लव छोड़िये ताकि आपकी पत्नी आपका पाणि-क्षण करे ।

काली अच्छर छक मकर, सूना धव सपणाय ।

खर किसी परखे सती, मोली सुरग वसाय ॥ ६५ ॥

स्नान में पहुँचने पर सती अपने पति को पहचानकर कहती है कि हे बाँवली गधरा !  
हमरी किसी के पति को सूना समझकर धपका बनाकरके धमँड मत कर ।

गोध कलेजो चील्ह उर, कंकां अंत पिलाय ।

तो भी सो धक कंत री, मूँछां मूँह मिलाय ॥ ६६ ॥

गोध कलेजो, चील्ह हृदय और कंक आँतों को पिलीन कर रहे हैं तो भी, गधरा !  
कंत का यह साहस है कि मूँछों मेंहों में मिठ रही है ।

नोगण पढली स्नाय पळ, करे उतावळ काय ।

भर खप्पर वालही रहिर, देसी कंत धणाय ॥ ६७ ॥

हे योगिनी ! पहिले ही मांस भक्षण करके इतनी जल्दी क्या कर रही है ? जरा ठहर,  
मेरे पति तेरा खप्पर भर २ के तेरे शौक को चीन्हा-सफिर से ही तुझे तृप्त कर दूँगे ।

ऊनी गोख अवेखियो, पेलां री दळ सेर ।

पड़ियो धव सुणियो नही, लीयो धण नाळेर ॥ ६८ ॥

झरोखे में खड़ी हुई पत्नी ने देखा कि शत्रुसेना प्रयत्न है । अतः पति के देहपात का  
संवाद नहीं सुना तो भी पत्नी ने इसे अवश्यम्भावी मानकर 'सती' होने के लिये नारियल  
हाथ में ले लिया ।

मृश अचंभी ते सखी, कंत बखाणू कोस ।

चिण मार्य दळ बाढियो, आंख दिये कै स्तीस ॥ ६९ ॥

हे सखि ! मैं अपने इस आश्रय का क्यों कर वर्णन करूँ ? कंत ने जिना क्षिर ही  
सेना के काट डाली—उनके आँखों हृदय में हैं या क्षिर में भी ?

मतयाळी जावन सदा, लस जमाई माय ।

पड़ियां यण पढली पढ़ै, बूदी धण न सुहाय ॥ ७० ॥

माया ! तुम्हारे जानाता यौवन में सदा रहने मस्त हैं कि उन्हें बूढ़ा पत्नी नहीं सुहाता ।  
शायद इसी श्रिये तो वे प्रयत्न में रहते हैं कि अपनी प्रिया के पयोधर दीर्घ पड़ने से पूर्व  
ही वे रणांगण में गिर पड़ें ।

कंकाणी चंपै चरण, गीधाणी सिर गाह ।

मेा विण सूतो सेज री, रीत न छुडै नाह ॥ ७१ ॥

कंकाणी उनके पैर दबा रही है, गिद्धिनी शिर खुजल रही है—देख तो सही, रणदाय्या र मरे बिना सो रहे हैं तो भी नाथ हमेशा का नियम नहीं छोड़ रहे हैं ।

नीला बलिहारी बई, दण टापां खळ-झुंड ।

पहली पड़ियों दूक बहे, खड़े धणी र रुड ॥ ७२ ॥

हे अश्व ! तुझ पर निछावर हूँ । तू शत्रुसमुदाय को अपनी टापी से हननकर तेरे स्वामी का रुण्ड के खड़े रहते खुद टुकड़े २ होकर पहिले ही गिर पड़ा ।

नीला ! मेा पहली पड़े, कीध उतावळ काय ।

बाल्हा कबलां पाळियों, पड़तौ मूझ पुगाय ॥ ७३ ॥

हे अश्व ! मैंने तुझे बड़े प्रेम के घास लिला २ कर पाला था । मुझे पहुँचाकर तो गेरता । तैने मुझसे पहिले ही काम आकर इतनी जल्दी क्यों को ?

हूँ पाछै आगै हुबे, आणी नाह घरेह ।

जे बाल्हा धण जीवह, आगै मूझ करेह ॥ ७४ ॥

विवाह-समय स्वामी मुझे पीछे रख और स्वयं आगे होकर घर लये थे परन्तु यदि सति-निधन के बाद तक मैं जीवित रही तो उन्हें संती हेने के समय मुझे आगे करना पड़ेगा ।

कंत घरे किम आविया, तेगां री घण घास ।

लहंगे मूझ लुकीजिये, बैरी री न चिंसास ॥ ७५ ॥

वीरांगना कायर पति से कहती है कि पतिदेव ! घर कैसे पधार आये ? क्या तलवारों का बहुत डर लगा ? ठीक है, तो आइये, मेरे लहंगे में छिप जाइये । शत्रु का भला क्या भरोसा ? घर पर भी आ जाय !

—कमला :



( ३ ) मन को उपदेश.

( कर्ता-स्वभक्त-कवियत्री श्री सम्मानवाई कविसा, सं० १८९०-१९४२ वि० )

सवैया

मन ! नीकी सिखावन देत हों मैं, गुनचोर है तू जो गनै न गनै ।  
कन ओस को-सो है भरोसो कहा, तन को या बिलुला तनै न तनै ।  
परदेह के फाज सरै न कहु, जननी नरवेह जनै न वनै ।  
भजु साँस-उसाँस सियावर कौं, फिरि साँस को पेशो बनै न बनै ।

( ४ ) इन्द्र का आह्वान

गीत

( कवि हमीरजी रतन )

घणा घणायो पादळां रूप चौबडी रचायो घटा ।  
छलायो तळायां, नदी दळावी अछेद ॥  
पलायो पर्वत हमै प्रचळा करायो पाणी ।  
महाराजा इन्द्र आयो यस्स्तायो मेह ॥ १ ॥  
विराजै अंबरां गाज सेहरां घळके चीजां ।  
खळके ताल रा सीत पाळरां रा खाळ ॥  
अन्नचरां जळचरां गळचरां थारो आस ।  
सुरापती कीजै धरा, ऊपरें सुगाळ ॥ २ ॥  
पखाळीजै गिरां गात्र हमाळीजै जळांपूर ।  
घाळीजै घखत्त भलो दिखाळीजै धार ॥  
यिमाळीजै नहीं ताल निकाळीजै काळ येगे ।  
सँभाळीजै पृथीनाथ ! पाळीजै संसार ॥ ३ ॥  
संभरमी हुप बात आदमी यरते खुली ।  
कमी रहै नहीं, मिटै हुकम्मी कलेश ॥

क'काणी चंपै चरण, गीघाणी सिर गाह ।

मो बिण खतो सेज री, रीत न छडे नाह ॥ ७१ ॥

क'काणी उनके पैर दया रही है, गिद्धिनी शिर खुजला रही है—देख तो सही, रणशय्या  
मेरे-बिना सो रहे हैं तो भी नाथ हमेशा का नियम नहीं छोड़ रहे हैं ।

नीला बछिहारी थई, हण टापों खल-झुंड ।

पहली पड़ियों टूक व्हे, खड़े धणी रै रुड ॥ ७२ ॥

हे अश्व ! तुझ पर निछावर हूँ । तू शत्रुसमुदाय को अपनी टापों से हननकर तेरे स्वामी  
गण्ड के खड़े रहते खुद टुकड़े २ होकर पहिले ही गिर पड़ा ।

नीला ! मो पहली पड़े, कीध उतावळ काय ।

बालहा कचलां पाळियों, पड़तौ मूझ पुगाय ॥ ७३ ॥

हे अश्व ! मैंने तुझे बड़े प्रेम के आस खिला २ कर पाला था । मुझे पहुँचाकर तो  
मरता । तूने मुझसे पहिले ही काम आकर इतनी जल्दी क्यों की ?

हूँ पाछै आगै हुवे, आणी नाह घरेह ।

जे बालही धण जीवहूँ, आगै मूझ करेह ॥ ७४ ॥

विवाह-समय स्वामी मुझे पीछे रख और, स्वयं आगे होकर घर लाये थे परन्तु यदि  
अति-निधन के बाद तक मैं जीवित रही तो उन्हें संती होने के समय मुझे आगे करना पड़ेगा ।

कंत घरे किम आविया, तेगां री, धण चास ।

लहंगै मूझ लुकीजियै, बैरी रौ न बिस्तास ॥ ७५ ॥

वीरांगना कायर पति से कहती है कि पतिदेव ! घर कैसे पधार आये ? क्या-तलवारों का  
रहुत डर लगा ? ठीक है, तो आइये, मेरे लहंगे में छिप जाइये । शत्रु का भला क्या भरोसा ?  
मेरे पर भी आ जाय !

## ( ५ ) चारणों की प्राचीन दशा का दिग्दर्शन

( रचयिता-स्व-चवितरअनु ( श्री किशोरसिंहजी गा-सीदा चारहट )

पद

भित्ति-प्रवहगद मोजक छन्द

( मात्रा २२; यति १२+६+४ उत्तमाला २२ मात्रा )

नीपण कथि 'पागल' सुरसत्ती सिर नावे ।

गढव्यां री लुपियोडी कीरत-कथं गावै ॥

पूरवला पातां री पांगी रा खसरा ।

रूडा ब्रत भोजक मे' माखू' मधुरस रा ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजे चारणा रे ॥ १ ॥

निपुण ( चारण ) कथि ' पागल ' देवी सरस्वती को नमस्कार करके गढ़पतियों ( चारणों ) की लुप्तप्राय कीर्तिकथा का गान करता है । वह प्राचीन चारणों की तारीफ़ का खसरा गीतें रस वाले सुन्दर मोजक छंद में खींचता है । भारत के हितचिन्तक चारणों की बलिहारी, जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

भारत रा उद्धारण कारण सारण छ ।

हारण मदबहताहा चारण चारण छ ॥

कमव्यां रू सतियां रा ओफळ सम कहता ।

गहली री जेपड़ ज्यूं जीवण निज गहता ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजे चारणा रे ॥ २ ॥

ये भारत के उद्धारकार्यों का करनेवाले थे, ये निजों के चारण, मद बहते हुए हाथियों के समान थे, ये अपने शिरों को शक्तियों के नखियार के समान कहते थे और अपने जीवन के पगली के सिर पर रखे हुए मिट्टी के घड़ों के संगान ममसते थे—उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।



शैशव री छोळां में असमर री चोळां ।

जोवन में घांसाहरवाळी घमचोळां ॥

आंघोळण बाणासां हिषडा उससता ।

रीठां नूँ प्रसणां सिर कसतां रस लसता ॥

बळिहारी भारत-हित-चिंतक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे ॥ ३ ॥

जिनके वचन में युद्ध का ही हँसी-मज़ाक रहा करता था और यौवन में उसी युद्ध ही का खेल था, जिनके हृदय अतिथार-जीर्थ में स्नान करने को फूला करते थे और जो दानुओं पर प्रहार करते हुए आनन्द का अनुभव करते थे—उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

धूँकळ रीं हूँकळ सुण खाया रण खडता ।

खंडां सुं लडता अर मुंडां हडहडता ॥

मँगळ मदमाटां पर बीजड यूँ बहती ।

ज्यूँ मेचक जळहर में चपळा लहलहती ॥

बळिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे ॥ ४ ॥

युद्ध का नाद सुनकर उसमें शामिल होने को जो आतुर रहते थे, जो अपने घड़ों से लड़ते और मुण्डों से युद्ध में अट्टहास किया करते थे, जिनकी तलवार भस्त हाथियों पर चलती हुई ऐसी प्रतीत होती थी जैसे श्याम जलधर में बिजली चमकती हो—उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

जमडाढां हिंदवां रा भरियां उर जडता ।

आर्यां रा राजस हित खदां आहुडता ॥

पीधा अरि-श्रोणित ज्यां पडियाळग पारी ।

वां वेढीगारां पर जाऊ बळिहारी ॥

बळिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे ॥ ५ ॥

जो हिन्दुओं के शत्रुओं की छातियों में कंगरियां प्रविष्ट कर देते थे, आर्यों के राज्य के लिये जो शत्रुओं से भिड़ते रहते और जिनकी तलवारों ने तुम होकर अरि-शोणित का पान किया था—उन महाशूराओं की बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलियाँ ।

ब्रंषाटक राटक सुण अस्तिनाटक रचता ।

माह रणराह जमसाह सा जचता ॥

वीरारस सूरत री सूरत पर चारी ।

सगत्यां रा छूनां पर जाऊं बळिहारी ॥

बळिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै चारणा रे ॥ ६ ॥

रणमेरियों का शब्द सुनकर जो अस्तिनाटक रचा करते थे, जो रण के दैव-पुरुषपुंगव यमराज के साहस-मालूम होते थे—उन मूर्तिमन्त वीररस की सूरतों पर मैं न्यूछावर, उन शक्ति के पुत्रों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणों पर बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलियाँ ।

रजकुळ री मदळां नू धी कर घर राखी ।

लुपियोदा रजबाड़ा राख्या निज साखी ॥

खागां नू खेली रण फागां हद खारी ।

माणव भुरजाळां पर जाऊं बळिहारी ॥

बळिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै चारणा रे ॥ ७ ॥

जिन्होंने राजपूत रमणियों के पुत्रियों के समान अपने घरों में रक्खीं, जिन्होंने जोये हुए राज्यों के अपनी साड़ी मात्र से रक्त लिये, जिन्होंने युद्धभूमि में अति तीव्र तलवारों से फागे खेळीं—उन मुदूढ शूर चारणों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलियाँ ।

छत्रियां नू मांहोमह लखता रण रचता ।

हुकयी वण संधी कज जुहुंघां हित बहता ॥

तिण "दूथी" "हेतव" अर "रैणव" पद धारी ।

अचरी रा केहड़ पर जाऊ बलिहारी ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे ॥ ८ ॥

जब कभी क्षत्रियों को आपस ही में लड़ते देखते तो उनकी संधि के लिये जो बसीठी नकर दोनों का हित-साधन करते और इसी लिये "दूथी," "हेतव" और "रैणव" कहलते हैं—उन अवरी के बंशधरों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणां की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

घाकां मे घाणी ब्रह्माणी विलसंती ।

याखर सा आखर जुत पंती उचरंती ॥

कायर उर बयणां रा कीधा छत कारी ।

बीदग धरियामां पर जाऊ बलिहारी ॥ ९ ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे ॥ १० ॥

अमृतोपम अक्षरों की पंक्तियों का उच्चारण करती हुई घाणी ब्रह्माणी का जिनके मुखों में बेलास होता रहता था, जिन्होंने कायरों के हृदयों में अपने तीव्र वचनों से भयङ्कर घाव कर दिये—उन विदग्ध वीरों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणां की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां ।

प्राणां रे सादस पिण कहता नहँ कूड़ी ।

कविराजा कविता मे रदता सचै रूड़ी ॥

श्री रामध्व जूजसठळ हरियँद मगचारी ।

संतत सचबोलां पर जाऊ बलिहारी ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे ॥ १० ॥

प्राणां की बाजी लगने पर भी जो कभी झूठ नहीं कहते थे, जो कविराज अपने काव्यों में मदा सत्य वर्णन किया करते थे, जो श्री रामचन्द्र, युधिष्ठिर और हरिश्चन्द्र के पदानुवर्ती

थे—उन सतत सत्यवक्ताओं पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिंतक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलियाँ ।

सम्पादक सांप्रत जो निज भूकज सारे ।

बहता छा चारण उण भारग तिण वारे ॥

भारत पर आसत निज सासत सह धारी ।

आर्याव्रत-भगतां पर जाऊ बलिहारी ॥

बलिहारी भारत-हित-चिंतक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै धारणा रे ॥ ११ ॥

वर्तमान समय में जो कार्य पत्र-सम्पादकगण अपनी मातृभूमि के लिये सर्वत्र करते हैं वह वान चारण पूर्वकाल में करते थे, भारतवर्ष पर उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था—उन आर्यावर्त के के भक्तों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्ताक चारणों की बलिहारी जन्मभूमि के भक्तों की बलियाँ ।

वैभय त्रय दीनां चा दाळद चीहंडिया ।

कन हंदि काकणिये मुद भर पग मंडिया ॥

“लख-कोटी वरसण” री पदवी जग पाई ।

अवजाचक अभिधा में ओठम अधिकाई ॥

बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।

जनु-भूमी-भगतां रा लीजै धारणा रे ॥ १२ ॥

अतुलित दान दे कर जिन लोगों ने सैनिकों का दारिद्र्य दूर कर दिया, जिन्होंने महादानी कर्ण के मार्ग पर प्रसन्न हो पैर रखे, जिन्होंने संसार में “लखों-कोटों” देनेवाले (लाखपरीस-श्रीडवरीस) की उपाधि (याचकों से) प्राप्त की, जिन्होंने अयाचकता में बढ़ाई और गौरव माना—उन भारत-हित-चिंतक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलियाँ ।

कुळ चारण कीरत अब कादा मैझ कळगी ।

गीतां में गयती सो रिखी हा खळगी ॥

किरपा कर हसड़ी पिण ओजू किनियाणी ।

“ पागल ” निधि प्रामें जिंम पूर्य पुरखाणी ॥  
 बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे ।  
 जनु-भूमि-भगतां रा लीजै चारणा रे ॥ १३ ॥

अब चारणकुल की कानि कांचट में फैल गई है, उसकी जो सिद्धि गीतों में गाई जाती थी वह आज न मान्य कहा जायं गई, अतः “ पागले कवि ” प्रार्थना करता है, हे किनियाणी—सा करना ! तू फिर वही कुछ कर कि चारणजानि अपने पूर्वपुरुषों की उसी निधि के पुनः प्राप्त कर ले ।

भारत-हित-चिन्तक चारणां का बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलियां ।

[ ऊपर की कविता रचयिता द्वारा प्रकाशित “ पागल-प्रमेद ” पुस्तिका से ली जाकर उसका भावार्थ लिखा गया है ।  
 —सम्पादक ]



### ( ६ ) वेदना

( स्वयंविश्रुत शब्दांशः कृष्णमिहजी सोदा वारहट, शाहपुर )

देहा

घणी चियां रा घर में; रचियाड़ा दिन रात ।  
 राजा मदमाता रहै; प्रजा महा दुख पात ॥  
 कौड़ी नहँ खर्च कद; पहु मेटण पर-पोर ।  
 हाकम राजी करण हित; धन धूपदै सधीर ॥  
 बढे राज ले, भूष घणः पाळण मे न्है पूण ।  
 कोगटपण लीधां फिः गरदभयोली गूण ॥  
 को जाण गुण भी कया; को जाण जेम्-काम ।  
 ओछी संगत ठळडिया; निरगज भूष निकाम ॥  
 ओछी संगत आदरी; ओछा कामां आग ।  
 कधि मृग विह्वान रो; न्दार्ग नष्ट न थाग ॥  
 नाजर तो टाजर नय; रहै हर रजपूत ।  
 रांहीचांगं राज गी; मुधे फिण बिघ सूत ॥

छोटी ऊमर छोकरा; राजां तणी हजूर  
 रहण लगा तो किम रहै; सुकव, सुमद, बुध, सूर ॥  
 विधवां जिम खूणै वसै; राजां री तंज रीत ।  
 जयां रो जस हण जगत में; फैलै किण विध फीत ॥  
 जळ खू हड़क्या जीव जिम; किना तीर खू काक ।  
 राजा यूं दूरता रहै; बुध-कविलोकां वाक ॥

छणय

जेन केन रचि जाळ, धरा उदैकी लेयण धर ।  
 पुनि पुनि फंद पसाय, निलज फांसै नित नित नर ॥  
 बडकां धरम विचार, करे सांसण दत कीधी ।  
 केती जस रै काज, दान कर धरणी दीधी ॥  
 सो, दीन जाण खोसै सरय, आप वणै जग ओगणी ।  
 जम-जाळ बीच जीवण जतन, भायो रौरय भागणी ॥

[ उपर्युक्त पद्य कृषीय पैतृस वष पूर्व लिखी हुई उक्त स्वर्गीय-कविवर की "कृष्णीपदेश" नामक अप्रकाशित पुस्तक से लिये गये हैं ।

## चारण जाति की कद्र पहिले क्यों थी ?

( ले०-ठाकुर श्री हेतुदानजी सा० उज्ज्वल, एम्० ए०, एल्० एल्० ए०, ज्यु० डि० सि०  
 सुपरिन्टेंडेंट, सोजत-मारवाड़; एवं उपाध्यक्ष-अ० भा० चारण-सम्मेलन )

बारहवीं शताब्दी से, जब से कि मुसलमानों रियासतें कायम हो चुकी थीं; किन्तु  
 के पावे हिंदुस्तान पर शुरू हुए और अंगरेजों राजा के बुद्ध के लिये हर समय तैयार  
 राज्य अगली तरह से कायम होने तक एक पड़ता था। इन राजाओं की फौजों में  
 देश में थड़ी अशान्ति रही थी। राजपूताना बाड़े राजपूत ही होते थे, इसलिए हर  
 गुजरात व कच्छियावाड़ में राजपूतों की आवां लड़ाई के लिये हर वक़्त तैयार रहता

था। राजपूतों के बादशाही व बाहर की दूसरी जातियों की फौजों में लड़कियों के अलावा आपस में भी कई झगड़े-फ़िसाद होते रहते थे। राजपूतों के लिये मरना व मारना एक साधारण बात थी। कई राजपूत, नौजवान उम्र में ही लड़ मरते थे। अतः उनके लिये यह कहावत हो गई थी कि—

“मरदां मरणों हक्क है,

भगर-पचीसी मांय।”

धातू मर्दा आदमी के पचीस साल की उम्र भोजवानी में ही लड़ मरना ठीक है।

इस प्रकार लड़ मरनेवाले वीर राजपूतों और तो कोई इच्छा नहीं होती थी, लेकिन तब वे ज़रूर चाहते थे कि जिस वीरता के साथ वे मर भिटे हों, उसकी बात जगत में प्रचलन रह जाये या कम से कम उनके घरवालों व रिश्तेदारों को तो उनके मरने के हालात की पूरी गुंजर मिल जाये। इस काम का बीड़ा चारण जाति में उठ गया था और इस काम को करने किता हद तक कर दिया गया, यह बात इनकाहिरे है।

इस काम को करने के लिये यह भी आवश्यकता थी कि चारण भी लड़ाई के समय लड़ाई के मैदान में राजपूतों के साथ नौजवान हों। नगर इस चान की भी आवश्यकता थी कि वे चारण लड़ाई में मारे न जायें क्योंकि तब तो हाथ गुमाने-माल ही मार दिये जायेंगे जो फल उनके निपुणता हुआ था वह कामकाज रहे। इसलिये राजपूत जाति ने चारणों

को मौजूदा Red cross की तरह मान लिया था। और जिस राजपूत-पाटी की हार होती थी उसके चारणों को, जीतनेवाले राजपूत भी उतने ही सम्मान से रखते थे; क्योंकि वे जानते थे कि अगर चारण को मार दिया तो शत्रुओं के घाव को सराहनेवाला भी कोई बाकी नहीं रहेगा और कभी उनकी हार होने पर उनके चारण भी भी मारे जायेंगे और उनका नाम कायम रखनेवाला कोई भी नहीं रहेगा।

चारणों के इस महद् कार्य के विषय में नीचे लिखा दोहा प्रसिद्ध है—

मातपिता सह बीसरै, धन्धू बीसारेह।  
खुरांपुरां बातड़ी, चारण चीतारेह॥

अब सोचा जा सकता है कि जिस चारण को वीर राजपूत अपना नाम संसार में कायम रखनेवाला मानते थे, वह उनको कितना प्यारा होगा! उसको वे किन्ती इज्जत होंगे!!

जब लड़ाई न भी होती थी तब भी चारणों को राजा लोग व राजपूत सरदार अपने पास ही रखते थे और उनके अपने, पूरवों की वीरता व अच्छे गुणों का हाल सुनते थे।

चारणों ने भी अपने इस काम के लिये ज़रिया कविता का सोचा और उसके लिये माया राधा कर डिंगल को पसंद किया, जो वीररत्न के लिये बहुत उचित है। वीरता का वर्णन कितना अच्छा और प्रभाव के साथ कविता से हो सकता है उतना साधारण तरीके से कहने पर कभी नहीं हो सकता, इसलिये चारणों को

कविता का धंधा भी अखिरियार करना पड़ा। कविता अथवा प्रभावशाली होने के मनोरंजक भी होती थी और जैसे लड़ाई में चारण, कविता से राजपूतों में वीरस भरते थे वैसे मुल्ह के जमाने में कविता से उनका दिल बहलान करते थे।

राजपूतों के लड़कों को घचपन से ही लड़ाई के लिये तैयारी करनी पड़ती थी और घोड़े चढ़ना व दास चलाता रखना पड़ता था; और वे पढ़ना-लिखना नहीं सीख सकते थे इनलिये खुद पढ़ने-लिखने के बजाय चारणों से कविता व कहानियाँ सुन करके शिक्षा (Education) पाते थे। यह शिक्षा (Education) देने का काम बहुत पुराने समय में तो ब्राह्मण लोग किया करते थे मगर ब्राह्मणों के व राजपूतों के खानपान में फर्क होने से यह काम राजपूतों ने चारणों के हाथ में दे दिया था या चारणों ने अपने हाथ में ले लिया, जिनका खानपान-व्यवहार राजपूतों से बिल्कुल एक-सा था।

जब चारणों ने यह धंधा अखिरियार कर लिया तो उनकी जीविका के लिये भी कोई इंतजाम होता जरूरी था, इसलिये राजपूत राजा एवं सरदारों ने चारणों को आजीविका में कई गाँव दिये। राजपूतों की जमीरों तो बदलती रहती भी, आज एक के हैं तो कल दूसरा छीन लेता था या राजा ही बदल देते थे, मगर

चारणों को जो गाँव दिये जाते थे उनमें ये प्रतिज्ञा होती थी कि ये कभी वापिस नहीं लिये जावेंगे।

इन चारणों के गाँवों से राजपूत सरदारों को एक यह भी सुभीता था कि जब वे देखते कि दुश्मन ज्यादा ताकतवर है और उनके हारकर मरने की सम्भावना है तो वे अपनी औरतों व बच्चों के चारणों के घरों में रखकर लड़ाई में चले जाते थे। अगर वे राजपूत लड़ाई में मारे जाते और वापिस न लौटते तो चारण उनके बच्चों का पालन-पोषण करते और लड़ाई के लिये शस्त्रादि बलाना दिखाकर होदियार कर देते थे। जो राजपूतों की गिर्यौ इस तरह चारणों के घरों में रहती थी उनके चारण अपनी मा-बहिन के समान रखते थे। इतिहास में चारण-राजपूतों के सम्बन्ध में एक भी ऐसी मिसाल नहीं है जिसमें किसी चारण ने, इस प्रकार रखी हुई किसी राजपूत स्त्री के साथ मा-बहिन के शिवाय और तरह का चर्ताव किया हो। चारण इस तरह से रखे हुए राजपूतों के बाल-बच्चों को अपनी पवित्र धाती (Sacred trust) समझते थे और जहाँ तक धन पड़ता, उनके पालन-पोषण में कसर नहीं आने देते थे।

जोधपुर राज्य के स्थापित करनेवाले राव जूझजी भी इसी तरह काठाऊ ग्राम के एक चारण के घर में पले थे। जिसकी स्मृति दिलानेवाला यह मारठा बहुत प्रसिद्ध है—

( शेष पृष्ठ ३२ पर )



## काव्य-कुंज



चाह दुवारा चाह !

( कवि श्री शम्भूदानजी सा० आशिंश्र, मँगटिया-मेवाड़ )

देहा

घर ओढण नहँ गूदड़ी, फाकण नहँ फूलाह ।

तो पण प्यालों नहँ तजै, चाह दुवारा चाह ॥

करज फलाळी री कडै, तिण सँ हुवै तवाह ।

चोरी कर दारू चखै, चाह दुवारा चाह ॥

पीतां ही सुख बहै प्रगट, दुखद हिया री दाह ।

स्थान देह चाटै सरब, चाह दुवारा चाह ॥

प्याला दुय पीधां पछै, लाव लाव कह लाह ।

यातां, पी अलबल बकै, चाह दुवारा चाह ॥

घर में तिय सोधै वणो, आया कंत न आह !

पिय मग में पड़िया रहै, चाह दुवारा चाह ॥

सोस्य

हुवै भयन धन-हाण, व्याधी कई लागै बपू ।

अंग नणो आपाण, गटकायां मद रै घटै ॥

छानै ले ले छाक, वप रै क्यूं यांसै पड़्या ।

अब पीणो पराक, त्यागी कावू चित रखै ॥

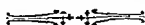
पोशीदा मद प्रीम, पी पी चार पधारवो ।

दुनिया आंसवां देख, पीधाही जाणै परी ॥

जिन्दगानी सँ जाय, आसव यी अधकाळिया ।

मेल्या का इण भाँय, पीणो मद छाडी परी ॥

हालत मद खं होय, देखी या दाखी नुरस ।  
 करौ रीस मत कोय, किणी एक पर नहँ कही ॥



### नौकरी के नुस्खे

( स्तवित-कविवर श्री “ रसिक ” )

मनहर

मान ले सलाह मेरी करनी है नौकरी तो,  
 अफइ तुम्हारी अरे एक और धर दो ।  
 खातिर खुशामद तो आला अदना की करो,  
 रिश्वत खिलाओ खाओ खूब घर भर दो ।  
 हाकिमों में होने की तुम्हारी होय इच्छा गर,  
 आला अप्सरे की यार ! जेय गर्म कर दो ।  
 रहना हो रईस पास “ रसिक ” तुम्हें तो एक,  
 अच्छी सी...लाके भेट उन्हे करे दो ॥ १ ॥

मान ले सलाह मेरी करनी है नौकरी तो,  
 बचाकर वक्त थोड़ा यार सुद-शाम ही ।  
 रोज-रोज जाकर के हाकिमों के पास जरा,  
 झुक-झुक किया करो ज़ोर से सलाम ही ।  
 हाज़िर, हुज़र, बड़ा हुक्म है-पैसे लफ़्ज़,  
 हाथ जोड़ बोला करो पड़े जब काम ही ।  
 बच्चों को खिलाया करो उनकी नज़र आगे-  
 दे दे कर चुटकियां ले ले यापू नाम ही ॥ २ ॥

श्री संपादक महाशय के उपरोक्त आक्षेपों के उत्तर में निवेदन करते हुए 'चा० हि० सभा' के स्थिति-संयोगों को स्पष्ट करना मैं उचित समझता हूँ।

'अ० भा० चा० संमेलन' के चतुर्थ अधिवेशन (जाधपुर) के अवसर पर कच्छ-काठियावाड़ एवं गुजरात के जिन दो-चार प्रतिनिधियों ने सम्मेलन का पंचम अधिवेशन काठियावाड़ या गुजरात में कराने का आमंत्रण दिया था, उनमें मैं भी एक था। परंतु उस समय प्राइवेट बातचीत में मैंने श्री संपादक महाशय से कि जो उस समय संमेलन के प्रधानमंत्री थे एवं संमेलन के अन्य एक-दो कार्यकर्ताओं से, निवेदन किया था कि, यह पंचम अधिवेशन 'चा० हि० सभा' के चतुर्थ अधिवेशन के साथ-साथ ही होगा। और यही कारण है कि 'चा० हि० सभा' के तृतीय अधिवेशन के प्रसंग पर उसी बातचीत के अनुसार हम लोगों ने सभा के आगामी चतुर्थ अधिवेशन के साथ ही संमेलन का पंचम अधिवेशन राजकोट में कराने का निर्दिष्ट किया था।

संपादक महाशय ने देखा ही होगा कि, इन दोनों संस्थाओं के अधिवेशनों का समय-विभाग अलग-अलग रहता गया था और तदनुसार दोनों का कार्य अलग-अलग एवं एक-दूसरे के पराना हो आ गया था। भूली दगा में 'चा० हि० सभा' के कार्यकर्ताओं द्वारा सम्मेलन-कार्य को गौण रूप प्रदान होना कहना

कहाँ तक उचित है? फिर भी मैं 'चा० हि० सभा' की ओर से शपथपूर्वक स्पष्ट करता हूँ कि सभा के कार्यकर्ताओं के दिल में सम्मेलन-कार्य को गौण रूप बनाने की वृत्ति का ही जन्म नहीं हुआ था। यहाँ तक कि 'चा० हि० सभा' के अधिवेशन-कार्य के लिये जितना समय निर्दिष्ट किया गया था, उससे कहीं अधिक समय की आवश्यकता प्रतीत होते हुए भी सभा के कार्यकर्ताओं ने कड़े अत्यावश्यक प्रश्नों के निर्णय के स्वर्गित रखकर सम्मेलन के अधिवेशन को समय-मर्यादा का पालन किया था और जैसे भी हो सम्मेलन-कार्य को अधिक महत्त्व देने का प्रयत्न किया था।

संपादक महाशय का 'चा० हि० सभा' के कार्यकर्ताओं पर दूसरा आक्षेप यह है कि, उन्होंने सम्मेलन के कार्यालय-स्वर्च, प्रचार-कार्य, सुसज्ज एवं रिपोर्ट छपाने के लिये पन्ना-ग्रह की अपील न करने दी। मैं इसके उत्तर में यह निवेदन करना चाहता हूँ कि, हम स्वर्च के लिये जाधपुर-अधिवेशन में अपने-अपने हिस्से का चंदा नियमित देते रहने का वादा करने पर भी मिया मारवाड़ के सम्मेलन से संबंधित मेवाड़, डंडाड, बीकानेर, अजमेर आदि प्रांतों ने हम विषय में कुछ भी सहायता नहीं दी है, हम हानन में सम्मेलन के राजकोट-अधिवेशन में उपस्थित प्रतिनिधियों से कि जिनमें अधिकांश गुजरात-काठियावाड़ एवं कच्छ के थे और जो सम्मेलन के कार्य-प्रदेश से प्रायः अनभिज्ञ थे;

संमेलन के उपरोक्त कार्यों के लिये चर्चे की अपील करना कदां तक ठीक था, इसका संमेलन के प्राधिकारियों को विचार करना चाहिये।

संमेलन के कार्यकर्तागण चंद बुद्धिमान और शिक्षित हैं, परंतु सेवाभाव की दृष्टि से मेरी समझ में उनमें स्वार्थत्याग की भावना विलम्बित कम है। संभव है, इसमें मेरी नालमशी या निष्ठादोष-दृष्टि ही कारणभूत हो। फिर भी यह बात तो सच है कि, बिना अपना मूल निष्ठा पराई वेदना का अनुभव नहीं होता अर्थात् निजी स्वार्थत्याग किये बिना कोई सेवाकार्य सफल होना कठिन है, क्योंकि सेवायज्ञ में स्वार्थत्याग ही उसकी वेदिका-स्वरूप है।

उदाहरण-स्वरूप संमेलन के पंचमाधिवेशन की विषय-निर्वाचिनी समिति में दस प्रश्न की चर्चा के समय मैंने अपना दृष्टिबिंदु स्पष्ट करते हुए कार्यकर्ताओं को अपनी-अपनी जेब से कम से कम दस-दस रुपये निकालकर आदर्शरूप बनने के लिये प्रार्थना की थी। हालांकि चतुर्थ अधिवेशन से पंचम अधिवेशन तक मैं भी संमेलन का एक कार्यकर्ता चुना गया था, इस लिये अन्य सहकारी कार्यकर्ताओं के साथ यथा-शक्ति आर्थिक गहनता देना मेरा कर्तव्य था और इसके लिये मैं तैयार भी था, परंतु राजस्थानी कार्यकर्ताओं ने मेरे सूचन पर कोई ध्यान नहीं दिया। यदि उन्होंने मेरी प्रार्थना का स्वीकार किया, होता तो उपस्थित प्रतिनिधियों ने बिना अपील किए अकेले संमेलन के कार्यकर्ता

में ही कम से कम १२५) रुपये उठा सके पक्कर हो जाते और मुझे विश्वास है, इतना देखा-देखी काठियावाड़-गुजरात के भी अन्य संमेलन-मेंमां मजबूत चंद में यथाशक्ति कुछ अवसर लिखवाने।

इसके साथ मैं यह भी स्पष्ट करना चाहता हूँ कि, 'चा० हि० सभा' के कार्यकर्ताओं : संमेलन के कार्यकर्ताओं का धन के लिये अपील करने का मनाही नहीं की थी। हाँ यह निवेदन अवश्य किया था कि इधर के प्रतिनिधियों से 'चा० हि० सभा' के सदस्य-प्रीति के साथ-साथ श्री 'कृष्णदामार-चारण-विद्यालय' के स्थायी फंड के लिये भी अपील की जानेवाली है, इस हालत में संमेलन के लिये अपील करने से अधिक सहायता मिलना कठिन है, परंतु अपील करना ही चाहें तो अवश्य करें संभव है, इस निवेदन की बात संपादक महोदय के भी स्मरण-पट में हो।

शायद रहीं संमेलन के सुखान्न की बात इसके पुनर्जीवन का प्रस्ताव तो जाधपुरीय अधिवेशन से स्वीकृत हो चुका था और इसके द्वार भिक व्यव के लिये कुछ चंदों भी किया गया था। जहाँ तक मुझे स्मरण है, इस चंद के रकम ८०) रुपये के करीब हुई थी। हालांकि विद्यमान श्री. किशोरसिंहजी के प्रेरण से सुसंपन्न हुए न हो सका, परंतु दस रकम से वह प्रसिद्ध तो अवश्य किया जा सकता था। इतना ही तो हुए भी जब विषय-निर्वाचिनी समिति में सुसंपन्न

चंदे का प्रदन रखला गया तो संपादक महा-  
प ने जिन लोगों पर प्रांतीयता के भाव का  
रोपण कर सम्मेलन के हानि पहुँचाने का आरोप  
लगा है, उन्हीं में के एक श्री शंकरदानजी देया  
जीवड़ी ने मुखवत्र धारु करने की जिम्मेवरी  
पने ऊपर ले, उसके लिये प्रतिवर्ष १००)  
रुपये तक हानि सहन करते रहने का वादा किया था  
और उसका वे इस समय बराबर धारण कर  
रहे हैं।

संपादक महाशय लिखते हैं कि, "सम्मेलन  
के लिये एकत्रित लोगों से.....उन्हीं लोगों के  
आग्रह पर हजारों रुपये प्रांतीय कार्य के लिये  
कट्टे कर लिये जायें।" मैं उनके इस कथन से गर्वित  
नहमत हूँ कि, वे लोग सम्मेलन का नाम सुनकर  
भाये थे, परंतु साथ-साथ यह भी स्पष्ट करना चाहता  
हूँ कि, वे सब 'चा० हि० सभा' के अधिवेशन  
में साथ देने एवं 'श्री कृष्णकुमार-चारण-विद्यालय'  
के स्थायी फंड में कुछ सहायता देने को भी  
आये थे।

'इन एकत्रित लोगों में से केवल एक महाशय  
श्री कालिदासजी जीजीमई कोट (वीरवरका  
काठियावाड़) ने ही १,००१) रुपये 'श्री कृष्ण-  
कुमार-चारण-विद्यालय' को और द्वितीय उदार  
महानुभाव श्री जीवणलालजी बरसड़ा (भादरवा  
गुजरात) ने १००) रुपये 'श्री उमेद  
चारण-छात्रालय' (जोधपुर) को सहायता-स्वरूप  
प्रदान किये थे। हाँ, अन्य गंधुओं से भी 'श्री

कृष्णकुमार-चारण-विद्यालय' को कुछ न कुछ  
आर्थिक सहायता अवश्य मिली थी, परंतु हजारों  
की तादाद में जैसा कि संपादक महाशय लिखते  
हैं, सिवा उपरोक्त एक महाशय के अन्य किसी से  
नहीं मिली। 'चा० हि० सभा' के लिये प्रायः  
सभी व्यक्तियों से जो रुपये लिये गये  
थे, वे तो उनकी सदस्य-फ़ीस के थे और  
वह मालुमा लिये जाते हैं। परंतु इस सदस्य-  
फ़ीस का आंकड़ा भी कोई वर्ष हजार रुपये तक  
तो नहीं पहुँचा।

अब रहा 'चा० हि० सभा' का 'अ० भा०  
चा० सम्मेलन' से संबंधित रहने-न रहने का  
प्रश्न। इस प्रश्न को मुलजाने के लिये दोनों  
संस्थाओं के उद्भव, नियम, कार्यपद्धति, इतिहास  
आदि-दोनों संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं को-समझना  
चाहिये।

'अ० भा० चा० सम्मेलन' का जन्म चारण  
जाति की सर्वांगीण उन्नति के लिये हुआ था।  
उसके अवाधित रूप से तीन अधिवेशन भी हुए।  
जिनमें अच्छे-अच्छे प्रस्ताव पास हुए और कुछ  
सक्रिय कार्य भी हुआ। परंतु यह सब हुआ  
राजस्थानी गंधुओं के प्रयत्न से और कार्यक्षेत्र  
भी राजस्थान तक ही सीमित रहने से उसके  
नियमादि बनाये गये राजस्थानी चारण-समाज की  
परिस्थिति के अनुकूल। गुजरात-काठियावाड़ के  
तो बहुत ही कम व्यक्ति सम्मेलन के इन अधि-  
वेशनों में उपस्थित हो सके थे। और सिवा

इसके इधर के प्रदेशों में उसका कोई प्रचार-कार्य नहीं हुआ। काठियावाड़-गुजरात एवं राजस्थान के बीच भाषा, रीति-रस्म आदि का बड़ा अंतर है। सम्मेलन की मर्यादित शक्ति उसको मिटाने में सफल न हुई। संभव है, इसी कारण से सम्मेलन का इधर किसी प्रकार का संबंध स्थापित नहीं हुआ, और उसका संदेश भी शुद्ध रूप में यहाँ तक पहुँचा नहीं। इस हालत में प्रचार-कार्य तो दूर की बात है। इसके पीछे तो-तृतीय अधिवेशन के परचाल-सम्मेलन ही मृतप्राय हो गया।

इसी बीच भगवती जगदंबा की कृपादृष्टि एवं श्री शंकरदानजी देवा (खैरपुरी) और श्री रामदासजी शर्मा (बायड़ी) के प्रयत्न से गुजरात-काठियावाड़ एवं कच्छ के चारण-बालकों के लिये एक छात्रालय की स्थापना करने एवं जाति में सामयिक सुधार करने के लिये 'चा० हि० सभा' का जन्म हुआ। भक्त कवि श्री दूधभाई काग ने उसकी जिम्मेवारी का भार अपने कंधे ऊपर ले लिया। इन तीनों महाउभाव के सतत् प्रयत्न एवं अन्य सज्जनों की हार्दिक सहायता से छात्रालय एवं इस सभा की स्थापना होकर इधर की चारण जाति में कुछ जागृति आई। संक्षेप में इस तरह 'चा० हि० सभा' का जन्म, नियम-कार्यादि का आयोजन और जातीय संगठन बिल्कुल स्वतंत्र ढंग से हुआ और आज तक गतिमान है।

जोधपुर में सम्मेलन का चतुर्थ अधिवेशन करवाकर मारवाड़ी बंधुओं ने राजपूताने में सम्मेलन की ज्योति को पुनः प्रकटित की। परंतु कच्छ-काठियावाड़ एवं गुजरात के अधिकांश जातिप्रेमी व्यक्ति राजकोट-अधिवेशन तक उसके उद्देश, नियम एवं कार्यादि से अपरिचित थे।

ठीक इसी समय 'चा० हि० सभा' ने सम्मेलन को राजकोट में आमंत्रित किया। इस अधिवेशन के अन्तर पर राजस्थानी बंधुओं ने बिना इधर की परिस्थिति का सर्वमाही दृष्टि से कुछ विरोध अभ्यास किये इस हटाप्रह को सामने रखता कि, इसी अधिवेशन से 'चा० हि० सभा' को सम्मेलन की मानदण्ड प्रांतीय सभा बनाई जाय, परंतु इधर के चारण नेताओं के लिये यह प्रश्न बिल्कुल नया था। आज दिन तक 'चा० हि० सभा' प्रधानतः शिक्षा-प्रचार का ही कार्य कर रही है। इस दशा में सम्मेलन से संबंधित होने से सम्मेलन की नियमावली के अनुसार उसको अन्य सामाजिक कार्यों के साथ सम्मेलन का योग्य आर्थिक भार भी उठाना पड़ता। यही कारण है कि जो लोग सम्मेलन के उद्देश, नियम, कार्य-प्रदेश आदि से बिल्कुल अतृप्त थे, उनमें अपनी बात स्वीकृत करा देने का सम्मेलन के कार्यकर्त्ताओं का आग्रह भरी समझ में उचित नहीं था।

ऊपर स्पष्ट कर ही दिया गया है कि, 'चा० हि० सभा' अभी तक प्रायः शिक्षा-प्रचार का कार्य कर रही है। सामाजिक कार्यों के

लिये उसने जो कुछ प्रयत्न किया वह प्रायः निष्फल गया। यही कारण है कि दोनों संस्थाओं के कार्य-प्रदेश में अंतर होने से 'चा०हि० सभा' के कर्गधारों ने उसको संमेलन की मातहत प्रांतीय सभा स्वीकृत कर आर्थिक एवं अन्य जिम्मेदारियों को उठाने में उसको असमर्थ पाया और उत्तर में वैसा निवेदित किया। इसमें 'चा०हि० सभा' ने एकत्र किये हुए पैसों की बात ही न भी, क्योंकि, यह पैसे तो पहले से 'कृष्णकुमार चा० विद्यालय' की संपत्ति बन गये थे।

उपर्युक्त परिस्थिति होते हुए भी राजस्थानी बंधुओं के आग्रह को मानकर संमेलन से संबंध जोड़ने के लिये इधर के अप्रगण्य व्यक्तियों ने 'बृहत् गुजरात-चारण-सभा' स्थापित की। परंतु जहाँ संमेलन का वर्षों से प्रचार एवं उसके कर्गधारों का निवास है, उस राजपूताने की ही प्रांतीय सभायें गिवा भारवाट प्रांतीय चारण-सभा के प्रायः निष्क्रिय रही है, वहाँ इस नवजात सभा से ठोस कार्य-शक्ति की आशा तो नहीं रखी जा सकती, परंतु फिर भी मैं विधास दिलाता हूँ कि, यह सभा अपने कर्तव्य का आनंद पालन करेगी।

मुझे डर है इस निवेदन से कोई यह मान लें कि मैं संमेलन का विरोधी हूँ। परंतु वास्तव में मैं भी तो उसका एक नम्र मित्र हूँ

और उसके प्रधान उद्देश-आंतरप्रांतीय जातीय संगठन के महत्त्व को पहिचान सकता हूँ। परंतु यह सब स्पष्टीकरण तो इसी लिये किया गया कि, संपादक महोदय के जो-जो विधान मुझे चर्चास्पद मालूम हुए, उनका निरसन कर 'चा० हि० सभा' के कर्गधारों का संमेलन के विषय में जो दृष्टिबिंदु प्रारंभ से आज तक है, स्पष्ट करना उसके मंत्री के नाते मेरा धर्म है।

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि, संपादक महोदय चारण जाति के एक रत्न हैं। अतः मैं यह मानने को तो हर्गिज तैयार नहीं कि, उन सदस्य बड़े आदमी ने उपर्युक्त आक्षेपार्ह विचार जानबूझकर प्रकट किये हैं। वास्तव में 'चा०हि० सभा' की आंतरिक परिस्थिति से अनभिज्ञ होने के कारण ही उन्होंने ऐसे विचार प्रकट किये हैं, उनमें कुछ ऐसा आ गया जिसका मुझे यह उत्तर देना पड़ा है।

इस निवेदन से, संपादक महोदय या अन्य किसी बंधु का दिल दुखाने का मेरा बिल्कुल आशय नहीं। बल्कि मैं विधास दिलाता हूँ कि चाहे कहीं विचार-भेद हो, परंतु संमेलन को हानि पहुँचाने के कारणभूत तो 'चा०हि० सभा' कभी न होगी। संपादक महोदय मेरे शुभजन हैं, मैं उनका सेवक हूँ और सदैव रहूँगा।

पिंगलमी परच्यतजी पायक,

मंत्री-चारण-हितचक्र भायनबहा

[ अनन्य जाति-सेवक बन्धुवर श्री पिंगलखी भाई पायक भी०ए०, एड्-एड्०वी०-भंत्री, श्री चारण-हितवर्द्धक सभा ने "चारण" के प्रथम अंक में प्रदर्शित सम्मेलन के राजकोट-अधिवेशन-संबंधी कुछ सम्पादकीय विचारों के लिये जो उपरोक्त भाव प्रकट किये हैं उनसे ज्ञात होता है कि उक्त सम्पादकीय विचारों से पायकजी एवं उनसे सहमत उधर के सम्मानित सज्जनों के हृदय-को कुछ ठेस पहुँची है और इसी लिये उन्हें यह स्पष्टीकरण अशरारतः प्रकाशित करवाने का आग्रह करना पड़ा। उनके इस आग्रह का मान देकर अन्य आवश्यक लेखादि रोक हम इसे स्थान दे रहे हैं।

श्री पायकजी के लेख का ब्यापारवार उत्तर देने के लिये न तो स्थान है और न आवश्यकता है। इस स्पष्टीकरण के अनुसार ही बलुस्थिति

रही हो और हो एवं सम्मेलन के प्रति श्री पायकजी के समान ही उनके अन्य सहयोगियों की भी धृष्टपूर्ण सक्रिय सद्व्यवस्था हो और कोई कारण नहीं है कि श्री पायकजी सदस्य निर्मल-हृदय मज्जन के शब्दों पर विश्वास न किया जाय, तो और अभीष्ट भी क्या था और है ?

हमें खेद है कि, अपने विचारों के कारण बंधुवर पायकजी को दुःख हुआ और इतने लंबे स्पष्टीकरण की आवश्यकता अनुभव हुई। आशा है, श्री पायकजी और उनसे सहमत सज्जन यह जानकर हमें क्षमा करेंगे कि प्रदर्शित विचार न केवल एक सम्पादक ही के थे प्रयुक्त और भी कई प्रतिनिधि बन्धुओं के थे और उन्हें प्रकाशित करने में किसी प्रकार का मलिन हेतु नहीं था।

—सम्पादक।

## सम्पादकीय टिप्पणियां

### प्रताप-जयन्ती

कुछ वर्षों से देश के अनेक भागों में हिन्दू-सर्व महाशय श्री प्रताप की पुण्य जयन्ती उनके शुभ जन्मदिन ज्येष्ठ शुक्ल ३ के उत्साहपूर्वक मनाई जाती है। इस वर्ष भी यह पवित्र उत्सव विभिन्न स्थानों पर समारोह के साथ मनाया गया था। परंतु खेद के साथ कहना पड़ता है कि

मेवाड़ और खास कर उदयपुर में यह उत्सव जिस शान के साथ मनाया जाना चाहिये उस शान के साथ नहीं मनाया जाता। हमारे स्वागत से इसका मुख्य कारण उत्सव के राजकीय सहयोग का न मिलना ही है।

इन्दौर की स्वनामधन्या महारानी श्री अहि-ल्लावाई की जयन्ती के अवसर पर कुछ वर्ष पूर्व हम इन्दौर में थे। उस समारोह के



और राव साहिबने कौनसा काम हाथ में लिया है वह उन्हीं के इन शब्दों से पाठकों को ज्ञात होगा—मेरे सामने अब केवल एक ही उद्देश्य है और वह है क्षत्रिय जाति का संगठन और उसमें शिक्षाप्रचार। अगर मैं इसमें सफल न होऊंगा तो भारत में रहना ही छोड़ दूंगा।

जगदम्बा राव साहिब के सदुद्देश्य में उन्हें सफल मनोरथ करे।

### मेवाड़ के चारणग्राम

‘गतांश में, मेवाड़ के चारणग्रामों के संबंध में मेवाड़-चारण-सभा की ओर से जो आवेदन-पत्र मुसाहिब आला सा०—राज्य मेवाड़ की सेवा में पेश किया गया वह प्रकाशित हुआ है। सुना है इस आवेदनपत्र को प्राप्तकर मुसाहिब आला सा० ने श्रीमान् मेदपाटेधर की सेवा में यथोचित निवेदन किया और श्रीमान् मेदपाटेधर ने उक्त आवेदनपत्र में प्रकट किये अनुसार हेनेवाली अनुचित कार्यवाहियों पर अनभिमुख प्रकट करके आवेदनपत्र में की गई प्रार्थनानुसार कुछ मन्त्री कर देने का उदारतापूर्ण आदेश प्रदान किया। फलतः देवेन्दु कमिश्नर पं० कमलकरजी साहिब ने इस संबंध में उनसे तलब की गई सम्मति उपाधिकारियों के पास भेज दी है जिस पर विचार हो रहा है।

यदि उन्निर्धारित संवाद सत्य हो और मेवाड़ी पंथुओं पर हेनेवाले अन्याय का अन्त हो जाय तो उनके लिये निम्न मेवाड़ की चारणजाति ही

नहीं अखिल भारतीय चारणजाति श्रीमन्मेदपाटेधर की चिर कृतज्ञ होगी। श्रीमन्मेदपाटेधर के परमोदार महान् व्यक्तित्व से हमें आशा रखना चाहिये कि वे अपने वीरवदान्य पूर्वजों की मर्यादा का पालन करके चारणों के जो गांव सँकड़ों वर्षों से उनके अधिकार में हैं उन्हें केवल सनद न होने के बहाने से वापस लेने की निषेधाज्ञा शीघ्र प्रचारित कर यश एवं पुण्य के भागी बनेंगे।

### श्री करनी-मन्दिर-पुष्कर, मथुरा

पाठक शायद जानते होंगे कि गजस्थानांतर्गत पुष्कर क्षेत्र में और संयुक्त प्रान्तान्तर्गत मथुरा पुरी में चारण जाति की ओर से बनाये हुए श्री जगदीश्वरी करनीजी के प्राचीन मन्दिर हैं जिन की देखभाल एवं माताजी की पूजा तीर्थों में रहनेवाले चारण जाति के तीर्थगुह ब्राह्मणों के सिपुर्द है। ये मन्दिर बहुत प्राचीन होने से जीर्णोद्धार अवस्था को प्राप्त हो गये थे।

मथुरा के करनी-मन्दिर ( विधाम घाट ) का तो एक हिस्सा गिर ही गया था या गिरनेवाले था, इसलिये सम्मेलन के जोधपुर-अधिवेशन के समय तीर्थगुह लालजी ने मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिये सम्मेलन से प्रार्थना की। उस पर विचार करके तीर्थगुह को इस संबंध में चर्चा करने के लिये सम्मेलन की ओर से एक प्रमाणपत्र एवं रसीदयुक्त दी गई और यदि की रकम २०००० मुण्डरिदानजी कपिया, जयपुर के पास जमा करने की हिसाब की गई। प्रयत्नता की बात है कि

पर्याप्त चंदा इकट्ठा होकर ठा० सा० मुरारिदानजी की देखभाल में इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हो गया है। इसके लिये ठा० सा० मुरारिदानजी, तीर्थगुरु एवं वे सब सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने चंदा देकर इस सत्कार्य को सम्पन्न कराया।

मथुरा के इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हो जाने से सुना है, उसके तीर्थगुरु पर के समान काम में ला रहे हैं और उसी में रहना शुरू करके अपने घर मकान को किराये पर दे देना चाहते हैं। यदि यह सत्य हो तो तीर्थगुरुजी का यह व्यवहार बेजा है। आशा है, वे ऐसा न करेंगे और मन्दिर की मर्यादा का स्याकत बनी रखेंगे और इस संबंध में उन्हें कुछ अधिक कहने सुनने का मौका न आने देंगे।

पुष्कर के करनी-मन्दिर के जीर्णोद्धार का विचार तभी से शुरू हुआ जब सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन पुष्कर में हुआ था। परन्तु जोधपुर

सम्मेलन तक इस संबंध में कुछ न हो सका। जोधपुर-सम्मेलन में फिर यह तै किया गया कि श्रीमान बीकानेर-नरेश से इसके लिये प्रार्थना की जाय। तदनुसार सम्मेलन के अध्यक्ष-महोदय ठा० सा० केसरीसिंहजी ने बीकानेर-नरेश के कोठा पधारने पर इस संबंध में शेरबहादुर अर्ज की। अध्यक्ष महोदय से आवश्यक द्रव्यार्पण के बाद प्रसन्नता पूर्वक प्रार्थना स्वीकृत करके श्रीमानों ने इस कार्य को सम्मेलन के अध्यक्ष महोदय के विचार-सहयोग से करने की आज्ञा आर्मी मिनिस्टर जनरल श्री हरिसिंहजी सा० सत्तासर, को उसी समय दे दी। उन्होंने आज्ञानुसार इस कार्य को घड़ी तत्परता से किया और अभी गत ज्येष्ठ मास में ठा० सा० केसरीसिंहजी को कोठा तार द्वारा सूचना दी कि मैं पुष्कर अमुक तिथि को पहुँच रहा हूँ, आप भी आ जायें तो देख लें कि अब क्या काम बाकी है। अतः अध्यक्ष महोदय ने पुष्कर पहुँच कर देखा कि मन्दिर का काम प्रायः सम्पूर्ण है।

\* यह बात बिलकुल ठीक है। विगत वर्ष जन्माष्टमी पर कोल (उत्तर गुजरात) के सम्भ्रांत चारण सुबक थी केदारभाई बाटी मथुरा गए थे तब करनी-मन्दिर के दर्शनार्थ जाने पर उन्होंने वहाँ ठहरने का इच्छा प्रकट की तो चौधेजी ने इन्कार कर दिया। ठीक इसी समय वे अधिक पैसे देनेवाले चारणेश्वर व्यक्तियों को मन्दिर में ठहरा रहे थे। यह देखकर केदारभाई ने राजकोट-अधिवेशन पर उक्त मन्दिर के जीर्णोद्धार के चर्चे में अपनी ओर से दो रुपये दिए गए थे इसकी याद दिलाकर उनके इस अनुचित व्यवहार के विषय में डाँट बताई तब उन्हें ठहरने दिया और यह बात किसी सम्भ्रांत चारण व्यक्ति के सम्मुख न करने की चौधेजी ने प्रार्थना की। सम्मेलन के पदाधिकारियों का चाहिए कि आइं दे वे भावुकता के जोम में ऐसे किन्हीं सुदूरस्थ जातीय स्थानों की मरम्मत के लिये उनके भोलेपान ठेकेदारों को चंदा उगाहने की आज्ञा खूब सोच-विचार के पश्चात् प्रदान करें, अन्यथा उनकी प्रतिष्ठा को घच्चा लगेगा।

—सम्पादक, गुजराती विभाग

प्रायः इसलिये कि मंदिर का जीर्णोद्धार तो पूरा हो गया और साथ ही अहाने का कोट व उस में यात्रियों के ठहरने के लिये सुविधाजनक पांच कमरे भी बन गये हैं। परन्तु स्नान के घाट व भोजनशाला का मकान नहीं बना। इनके लिये श्रीमान् बीकानेर-नरेश्वर से प्रार्थना की गई है। आशा है कि यह शेष कार्य भी उनकी उदारता से शीघ्र सम्पन्न हो जायगा। जगद्वा अपने इन अनन्य भक्त नरेश्वर का चिरायु करे।

**श्री भूपाल-चारण-छात्रालय, उदयपुर**  
द्वितीयांक में इस छात्रालय संबंधी जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसमें, छात्रालय में मीटिंग होकर कई प्रस्ताव पास होने का उल्लेख है। उन सभी प्रस्तावों का अमल में लाना जातिहित की दृष्टि से परमावश्यक है। परन्तु मौजूदा हालत में यह बात केवल मैकेटरी सा० की इच्छा पर निर्भर है। उक्त प्रस्तावों में एक प्रस्ताव छात्रों की संख्यावृद्धि के लिये छात्रालय की भोजन-पूजा में दो रुपये माहवार की कमी करने का था। इसके लिये अस्से से मैकेटरी सा० को कहा जाता रहा। परन्तु उनके ध्यान में यह बात नहीं आती थी। अब सौभाग्य से उन्होंने इस प्रस्ताव का तो अमल शुरू कर दिया है जिससे छात्रालय खुलते ही इस वर्ष मेवाड़ छात्रों की संख्या करीब तिगुनी हो गई है। मैकेटरी सा० का धन्यवाद।

दूसरी प्रश्न यदि मैकेटरी सा० बहुमत के द्वारा निर्णीत निर्देशों के अनुसार छात्रालय का

सब कार्य होने दें और मेवाड़-चारण-सभा को नियमानुसार संगठित होने दें तो उनका तो कुछ भी अहित नहीं है और जाति का हित स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे। क्या वे ऐसा करेंगे? सुना था, उक्त मीटिंग के प्रस्तावानुसार छात्रालय का अब तक का विवरण एवं हिसाब छपवाने के लिये मैकेटरी सा० तय्यार करवा रहे हैं। अच्छा हो यह खबर सच निकले।

### “चारण” का सम्पादन

इस अंक से ‘चारण’ का प्रथम वर्ष समाप्त होता है। इस वर्ष में ‘चारण’-समय पर नहीं प्रकाशित हो सका इसके लिये प्रकाशक को तो दुःख होगा ही हमें भी हार्दिक दुःख है। प्रथमांक में एवं बाद में भी जो २ छुट्टियाँ सम्पादन-संबंधी रही हुई पाठकों को ज्ञात हों उनके लिये हम सविनय क्षमा चाहते हैं।

प्रथम वर्ष के इन चार अंकों के हिन्दी विभाग का जैसा भी कुछ हो सका सम्पादन कर अब यह कार्य किसी सुयोग्य-उत्साही विद्वान् के हाथों में दिये जाने के अमिप्राय से एवं अपनी परिस्थिति के कारण इस कार्य का त्यागपत्र सम्मेलन के अध्यक्ष महोदय की सेवा में हमने भेज दिया था और इसकी सूचना प्रधानमंत्रीजी को भी दे दी थी; परंतु उन्होंने इस्तीफा मंजूर नहीं किया और गुजरगती-प्रक्रियावादी एवं राज-स्थानी स्नेही-गज्जनों ने आप्रह्न किया कि अभी हम इस काम को न छोड़ें। अब तक हम उन मित्रों के कृपापूर्ण आप्रह्न को स्वीकार करने में

अपनी असमर्थता प्रकट करते रहे हैं, किन्तु सम्मेलन-पदाधिकारी लिखते हैं कि पत्र बंद हो जायगा अतएव हमको अपनी अमुषिधा एवं अयोग्यता की ओर दुर्लक्ष्य कर कुछ काल तक सम्पादन-कार्य करते रहने की आज्ञा मानने को विवश होना पड़ रहा है। इस परिस्थिति में आप्रहर्कता महानुभावों से यदि हम यह आशा करें कि जो राजन इस कार्य में तन-मन से सहायता दे सकें वे लेखादि सामग्री शुद्ध सुंदर रूप में लिखकर समय पर भेजते रहें और जो धन से सहायता दे सकें वे पत्र को गंभीर सुंदर बनाकर समय पर निकालने की व्यवस्था के लिये धन से सहायता करें, तो कदाचित् अनुचित न होगा। जो लोग इस कार्य के महत्त्व को जानते हैं, इस प्रकार सहायता देने को तय्यार न हों तो पत्र जैसा चाहिये वैसा और समय पर नहीं निकल सकेगा और इसका ठोप आयेगा इस सम्पादकों के धिर पर। अतः सब सुयोग्य जाति-हितैषियों से तादर सविनय प्रार्थना है कि जिससे जैसी धन पड़े पत्र के लिये सहायता दें। इस प्रसंग पर हम यह भी सूचित कर देना उचित समझते हैं कि आगामी वर्ष से पत्र के नियमित एवं शुद्ध-सुंदर रूप में निकलते रहने का प्रयत्न से प्रबंध कर लिया है। अतः यदि इस समय हैं उतने भी ग्राहक बने रहें तो आशा है आगामी वर्ष से पत्र के अनियमित प्रकाशन की शिक्रयत न रहेगी और उसका सम्पादन भी सुचारु रूप से होगा।

इस प्रसंग पर हम अपने सुयोग्य एवं विद्वान् सहाकारी श्री सैतसिंहजी सा० मिश्रण और श्री शुभकर्णजी सा० कविश्या एम०ए०, एल्-एल्०पी० को हार्दिक धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझते हैं। श्री सैतसिंहजी के तो हम अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने गुजरगती-विभाग का इस प्रकार सुन्दर सम्पादन करने के साथ २ हमारे काम में भी प्रेमपूर्वक बहुत परिश्रम उठाया।

### मारवाड़ राजकार्य में चारणों का प्रतिनिधित्व

जमाने की रफ्तार को देखकर हमारे मरेशंगण भी प्रजा को राजकार्य में हिस्सा देने के लिये योजनायें बना रहे हैं। कई राज्यों में मलाहकार नभयों कायम हो चुकी हैं जिनमें प्रजा-प्रतिनिधियों को राजकाज में सीमित सलाहें देने का अधिकार दिया गया है।

जोधपुर के सैन्डल एड्वाइजरी बोर्ड (केन्द्रीय सलाहकार सभा) में चारण माफीदारों के प्रतिनिधि की हैसियत से श्री० शुक्रदेवजी किनिया, बी०ए०, एल्-एल्०पी० को डिये जॉन की खबर गतांक में प्रकाशित हो चुकी है। नीचे हम उन सज्जनों के नाम देते हैं जिनको भी सरकार ने परगना-सलाहकार सभाओं में चारण माफीदारों के प्रतिनिधि की हैसियत से चुना है—

प्रतिनिधि	परगना
श्रीमान ठाडूर साहिब देवीसिंहजी	नागौर
भारद्वज, मुंदियाड	

श्री० लक्ष्मीदानजी सा० बारहठ, जोधपुर

मोरटहूका

श्री० बदरीदानजी सा० कविया, जंतरण

वासणी

श्री० शंकरदानजी सा० बेगमा, सीवाना

सरवडी

उपरोक्त प्रतिनिधियों के चुनाव के लिये हम  
ने जोधपुर सरकार को धन्यवाद देते हैं और  
आशा करते हैं कि दोष परगनों में भी इसी

प्रकार चारण-प्रतिनिधि लेने की कृपा की जायगी।

प्रतिनिधि महाशयों को उनकी नियुक्ति पर  
हम बधाई देते हुए आशा करते हैं कि वे राजा  
और प्रजा के हित को, जो हमारे विचार से  
अभिन्न है, ध्यान में रखते हुए इस प्रकार से  
कार्य करेंगे कि वे लोककल्याण-सम्पादन में अधिक  
से अधिक महात्मक हो सकें।

—सह० सम्पादक

### बधाई

बड़े ही हर्ष का विषय है कि अब राजस्थान में भी चारण छात्र उच्च शिक्षा की ओर  
बढ़ रहे हैं। इस वर्ष एम०ए० कक्षा से एन्ट्रेंस कक्षा तक जो चारण छात्र उत्तीर्ण हुए हैं  
उनके नाम नीचे प्रकाशित किये जाते हैं। इन छात्रों को उनकी सफलता पर हम हार्दिक  
बधाई देते हैं।

#### छात्र-नाम

#### कक्षा

(१) श्री सत्यदेवजी आह्ला, पांजरेटिया (मारवाड़)

एम०ए०

बी०ए०, एल्-एल्-बी०,

( इतिहास )

( कर्मी-हिन्दू-विश्वविद्यालय )

(२) श्री० रामरदानजी बारहठ,

बी०ए०

छाटा उदयपुर ( किशनगढ़ )

( महाराजा कॉलेज, जयपुर )

(३) श्री० भक्तिदानजी सदिवा, एकलपट्ट ( सीतामढ़ )

बी०ए०

( मिथिवन कॉलेज, दन्डीर )

(४) श्री० उदयगिहजी दधिकदिया,

एल्-एल्-बी०

वासणी ( मारवाड़ )

( प्रथम वर्ष )

( कर्मी-हिन्दू-विश्वविद्यालय )

(५) श्री० मोहनसिंहजी चारहट, आंगदोल (मारवाड़) ( जसवन्त कॉलेज, जोधपुर )	एफ० ए०	२
(६) श्री० कैलाशदानजी उज्ज्वल, ऊज्जला ( मारवाड़ ) ( जसवन्त कॉलेज, जोधपुर )	एफ० एस० सी०	२
(७) श्री० शुभकरजी आडा, पांचेटिया ( मारवाड़ ) ( जसवन्त कॉलेज, जोधपुर )	एफ० ए०	३
(८) श्री फतहसिंहजी कविया, वासणी ( मारवाड़ ) ( हर्षट कॉलेज, कोटा )	एफ० ए०	—
(९) श्री० बी० सी० चारण	एफ० ए०	२
(१०) श्री जैराजसिंहजी सांद, मिरगेसर ( मारवाड़ ) ( महाराणा कॉलेज, उदयपुर )	एन्ट्रेस	३
(११) श्री० के० सी० देया, एंग्लो वैदिक हाइस्कूल, जोधनेर ( जयपुर )	एन्ट्रेस	३
(१२) श्री० आर० डी० चारण, एंग्लो वैदिक हाइस्कूल, जोधनेर ( जयपुर )	"	३
(१३) श्री पाबूदानजी, एंग्लो वैदिक हाइस्कूल, जोधनेर ( जयपुर )	"	३
(१४) श्री० चण्डीदानजी दधिवाड़िया, वासणी ( मारवाड़ ) ( दरबार हाइस्कूल, जोधपुर )	"	३
(१५) श्री० रामसिंहजी ( दरबार हाइस्कूल, जोधपुर )	"	३
(१६) श्री० पृथ्वीसिंहजी,	"	३
(१७) श्री० एल० डी० चारण, ( शाहूल हाइस्कूल, बीकानेर,	"	३
(१८) श्री० बी० डी० चारण, ( मोहना मन्चन्द हाइस्कूल, बीकानेर )	"	३
(१९) श्री० दुर्गेशसिंहजी भादा, लमगाड़िया ( अजमेर ) ( गवर्मेण्ट हाइस्कूल, अजमेर )	"	३

उपरोक्त नामावलि में जोबनेर-हाइस्कूल से उत्तीर्ण छात्र, स्व० दीनवीर स० बालाबहाजी पांडावत ( हणूतिया-जयपुर ) की चारण छात्रों की विधार्थ- इस स्कूल को दी हुई दस हजार रुपयों की निधि के आगारी होगे ।

एन्ट्रेंस से नीचे की कक्षाओं में विविध विद्यालयों से उत्तीर्ण अनेकों चारण छात्रों में श्री भूपाल-चारण-छात्रालय, उदयपुर के विद्यार्थी श्री भवानीसिंहजी टापरिया भी बम्बई के पात्र हैं जो अपनी क्लास के मेवाड़ भर के सब छात्रों में सर्व प्रथम उत्तीर्ण हुए हैं ।

—सह० सम्पादक

\* इस वर्ष इतनी अधिक संख्या में हमारे राजस्थानी छात्र बंधु उच्च शिक्षा का विविध कक्षाओं में उत्तीर्ण हुए हैं, यह देखकर हम परंप्रांतीय चारणों का हृदय भी मारे हर्ष के फूल नहीं मृमाता । परंतु उपर्युक्त नामावलि में जिन बंधुओं ने अपने-अपने नाम के पीछे अपना-अपना गोत्र-अन्ध न लिखकर 'चारण' शब्द का व्यवहार किया है, उनका ध्यान हम इस ओर आकृष्ट करना चाहते हैं कि 'चारण' शब्द हमारा जातिबोधक है, परंतु अपने नाम के साथ उसका व्यवहार करना अपनी संस्कृति से अनभिज्ञता प्रकट करना बल्कि इससे आगे बढ़कर दुःखपूर्वक कहना होगा कि अपनी अफल का दिवाला फूँकना है । हमारी जाति का बोधक मानवाचक शब्द राजस्थान में 'चारहठ' एवं गुजरात-काठियावाड़ में 'गडवी' है, अतः जिनको अपने नाम के साथ अपना गोत्र लिखना पसंद न हो वे देशानुसूल 'चारहठ' या 'गडवी' शब्द का व्यवहार कर सकते हैं, परंतु 'चारण' शब्द लिखकर तो वे अपने-आपको तिरस्कृत करते हैं । अधिक दुःख तो इस बात का है कि, ये छात्र-बंधु ही नहीं, छात्रधर्म, छात्रियमित्र आदि पत्र-पत्रिकाओं में लेख-कविता लिखनेवाले हमारे कतिपय प्रतिष्ठित सजातीय बंधु भी अपने गोत्र या गारी जाति के मानवाचक 'चारहठ' शब्द से दूकलाकर अपने नाम के पीछे 'चारण' शब्द का दुष्कृत्य लगाते हैं और इस तरह राजपूतों को उनकी संस्कृति का बोध कराने हुए अपनी संस्कृति के बारे में अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हैं ! आशा है, हमारे उपर्युक्त पदे-लिखे बंधु इस दिपिंगी का ध्यानपूर्वक पढ़कर आइये वही भूल न होने देंगे ।

—सम्पादक, गुजराती विभाग

# દેથાકુળ-ઉજાળક



સાહેબી દેવી શ્રી આંબુભાઈ દેથા, મીઠી (થરપારકર)

શ્રી નીખરાજી દેથા (ગદા) ના ગણકૃત્યથી ]





( ‘ રાજવી ભગ્યાછે ભાણુ, શૈક્ષિતને આંગણે. ’ એ રાગ )

ચારણો ચતુર મુજાન, જાયા જગદંબના;

પડી હાકલ ને થળે સાવરાન, જાયા જગદંબના. ૨૬

હાકલ પડી છે માતા ભારતીના ભાવિની;

મરદાઈથી આવળે મૈદાન, જાયા જગદંબના.

કજિયા-કંકાસને જડમાંથી કાઢળે;

ઐક્ય સાધી ખતો બળવાન, જાયા જગદંબના.

ત્યાગ-ભાગને તમે આપશે તિલાંજલી;

( તો ) વધશે વડીલોથી માન, જાયા જગદંબના.

વખત વિચારીને વ્યસનોને ત્યાગશે;

( તો ) ખતશે પ્રજા બળવાન, જાયા જગદંબના.

પાપી પ્રથા તથા પ્રેત-ભોજનની;

દેળે વિદ્યાલયમાં દાન, જાયા જગદંબના.

ખિરેદ તમારું જે બંધુઓ વિચારશે;

( તો ) સ્વર્ણકૂલે થશે સન્માન, જાયા જગદંબના.

લોહીનાં આંસુ બાળવિધવાનાં લૂંછીને;

સુખનાં શોધળે સ્થાન, જાયા જગદંબના.

આવડ, ખોડલ, આધ નાગલ, વરવડી;

દેશે અભાય વરદાન, જાયા જગદંબના.

અભેસિહ રામભાઈ ખળેલ, કોંદ



કવિતા પ્રચલિત દેશભાષાઓમાં કરવા માંડી.\* કેમકે દેશના જે જુલાગમાં રાજકીય હલચલ મચી રહી હતી, ત્યાં જ આ બંને કામોનો વસવાટ હતો, અને એ જુલાગમાં જ હમલમ જે સમયે ઉપર્યુક્ત અપભ્રંશ કે પશ્ચિમી બોલીમાંથી ઉત્પન્ન થઈને મગજ, ડિંગળ (રાજસ્થાની) અને જૂની મુજરાતીનું સાહિત્ય પાતાનો શૈલવકાળ બનીત કરી રહ્યું હતું. દેશની સ્થિતિ પ્રમાણે એ ભાષાઓના સાહિત્યનો વિકાસ થયો. બીજા હલચલના એ સુમમાં સંસ્કૃતભાષાઓની રચનાઓ સંભવિત હતી.

\* પ્રચલિત લોકભાષામાં રચાયેલી ચારણોની કવિતાઓ અધિક મુખોધ અને હૃદયગ્રાહી હોવાથી સંસ્કૃત ભાષાના સાહિત્ય કવિઓનો રાજ્યરખામાં ઓછો આદર થવા લાગ્યો, તેથી તેઓ ચારણોની નિંદા કરવા લાગ્યા હતા. હરિ નામક એક કવિએ 'સુખાપિત-તારણ' નામક મુલાપિત શ્લોકોનો સંગ્રહ (પિટર્મન, ખીને રિપોર્ટ, પૃષ્ઠ ૫૭-૬૪) કરેલો છે, તેમાં મુરારિ કવિના નામથી એક શ્લોક છે:

૧૨. ચર્ચાચારણના કિતિ રમણ !

૧૩. પરાં પ્રાપ્ય સમોદલીલ !

મા કીર્તે સૌવિદલ્લાનવ

મર્મય ધ્રુવપ્રેતવાણીવિલસાન.

ગીત રજાત ન નામ્ના-કિમપિ

રુપવેરય યાવતપ્રસાદી-

શાલીનીકેરેવ-વાત્રી. ધવ્રલયતિ

યદોમુદ્રયા-રામમદ ૫.

સાહિત્યની સર્વતોમુખી ઉત્તરિતિ એ અંશાંતિના કાળમાં થઈ શકે તેમ નહોતી. અને એ વાંતથી પણ સૌ કોઈ વાકેફ છે કે, જે સમયે કોઈ દેશ લગભગમાં ગ્રસ્ત હોય છે, તે વખતે સુદનો જ જ્વનિ પ્રધાનરૂપે સંભળાય છે. એ કાળમાં વીરોદ્ધવાસિની કવિતાઓની મૂલ્ય દેશભરમાં કાને પોંડે છે. એ સમયે અન્ય પ્રકારની જે કાંઈ રચનાઓ થાય છે, તે સુરક્ષિત ન રહેવાને લીધે જલદી નષ્ટપ્રાય બની જાય છે. દેશની રક્ષાનો અને સુદ કરવાનો ભાર રાજપૂત ભતિ પર હતો, એટલે તેની સાથીદાર ચારણ ભતિના કવિઓએ ઉપર કહેવામાં આવ્યું છે, તેમ, તેમને પ્રોત્સાહન આપવા માટે બહુધા વીરરસની કવિતા એ વખતે લખી હતી. અને તે માટે તેમણે માંખમાં નાનો, પરંતુ સામાને તત્કાળ યાદ રહી જાય, અને જેના

કે, હે મહીપાદ ! ચારણોની અર્ચાઓથી ઘણો આનંદ મેળવીને (સંસ્કૃત) કવિઓનો અનાદર ન કરો. કેમકે તેઓ જ કીર્તિરૂપી નાચિકાના રક્ષક અને રાગઓ સાથે તેનો મેળાપ કરાવનાર છે. જુઓ, રામચંદ્રનું એક પદ્ય 'ગીત' અથવા 'ખ્યાત' નથી. પરંતુ વાલ્મીકિની કૃપાથી જ રામચંદ્ર પોતાના ચશની ધાપદારા પૃથ્વીને અલંકૃત કરી રહ્યા છે. અર્થાત્ ચારણોનાં (દેશભાષાનાં) 'ગીત' અને 'ખ્યાત' અસ્થાપી છે, અને સંસ્કૃત ભાષાના કવિઓનો સંસ્કૃત-વાણીવિલાસ અંમર રહે છે.

મુરારિ કવિ પ્રસિદ્ધ 'અનર્થરુપવ' નાટકનો કર્તા છે. એનું ઉપનામ 'બાલ વાલ્મીકિ' એના પિતાનું નામ 'ધર્મામાન' બદ્ધ અને માતાનું નામ તત્તમતી હતું. એનો સમય

આશય: કોઈ રાજ ચારણોની લોકભાષાની કવિતાઓથી પ્રસન્ન થઈને સંસ્કૃત કવિઓનો

અગ્રતિમ શબ્દનાદને લીધે તેમાં સમયેલા ઉપદેશની ધણી કાળ સુધી અસર રહે, તેવા 'દુહા' જાંદને પસંદ કર્યો હતો. કેમકે કોઈ પણ ભાષાનું શ્રુતિનિષ્ઠ સાહિત્ય જ્યારે સિધ્ધિબદ્ધ બની જોડારચનાનું તરત મારણ કરે છે, ત્યારે તેમાં સર્વપ્રથમ નાનાં નાનાં વૃત્તો કે જોડો લખાય છે. એ રીતે વૈદિક યાગ પછીની સંસ્કૃત ભાષામાં પહેલવહેલો અનુષ્ટુપ્ સદૃશ નાનો શ્લોક વાલ્મીકિએ લખ્યો, અને એ શ્લોક સંસ્કૃત ભાષામાં રાત્ર, પ્રેમ, વહેવાર સમજ આદિ પ્રત્યેક મનુષ્યના હૃદયને સ્પર્શે એવા ભાવોનાં દુયકા ગીતોનો જન્મ થયો. પ્રાકૃત ભાષામાં આવી જાંદની ગાથાએ તથા દુહાએ અને અપભ્રંશમાં એકલા દુહાએ એ સ્થાન લીધું. દુહો એટલે અપભ્રંશ, વ્રજ, ડિંગણ (રાગરચાની) અને જૂની શુજરાતી ભાષાનો જાડતો કાવ્ય-મય લૈકાદ્રશ્ય. દુહાનો પ્રભાવ દારકાંધી મજબૂમ પર્વત જ નહિ. પરંતુ કેક જંગાળા સુધી હતો. ૨૫૦ મહામહોપાખ્યાય હરપ્રસાદ શાસ્ત્રીના 'વૈદ્યાન કો દેહ' માં જંગાળીની જાડવાળા અપભ્રંશ દુહા મળી આવે છે. અને તેમના કહેવા મુજબ કેક નવમી, દશમી સદી અને તેથી થી જૂના કાળના એ જોડો છે.

'દુહા' નું નામ કોઈ સંસ્કૃત ભાષાના અભિમાનીએ 'દોષક' બનાવ્યું છે, પરંતુ તેમાં શાબ્દિક અમાનતાં સિવાય બીજી કંઈ સાર જણાતો નથી. સંસ્કૃતમાં 'દોષક' નામનો એક જુદો જ જન્મ છે. 'દુહા' પદની નિરૂપિત 'જે' સંખ્યા પરથી થાય છે. જેમ ચોપાદ અને છપ્પય (પદપદી) ની 'ચાર' અને 'જ' સંખ્યા છે, તેમ દો-પદ-દો-પદ-યા દો-જાયા. મેરુતુમાચાર્યાના 'પ્રવચનચિંતામણિ' ગ્રંથમાં એક સ્થળે પ્રાકૃતનો 'દોષક' પણ આપ્યો છે, પરંતુ તે દુહા જાંદમાં જ છે :

પહિલી તાલ ન મનુહરદ,

ગોરી મુદ્દ કમલસ્ત ।

અદિદિ પુનિ ઉજગરે,

પહિપગલી ચંદસ્ત ॥

દુહાનો પ્રાચીન પ્રયોગ હરિભદ્રચરિત્રે અને ધન્યાલોકના રચયિતા આનંદવર્દને કરે છે. હરિભદ્રચરિત્રો સમય વિં સં ૧૫૭૭-૮૨૬ સુધીનો અને આનંદવર્દનનો સમય વિં સં ૮૧૧-૮૩૬ સુધીનો ગણાય છે. વિં સં ૯૯૦ માં દેવસેન નામક એક જૈન ગ્રંથ અર્થ ગયા. તેમણે 'ઘાવકાચાર' નામક એ ગ્રંથ દુહાઓમાં બનાવ્યો હતો. તેની ભાષા અપભ્રંશની મર્યાદા બહારની અને ક્યાંક ક્યાંક પાછળથી કાવ્યભાષા તરીકે પ્રચલિત પશ્ચિમી બોલી સાથે બિલકુલ મળતી આવે છે. એક દુહો હિહારણ તરીકે લખ્યો :

જો જિણ-સાતણ માવિયડ

સો મદ કહિયડ રાદ ।

જો પાલે સડ માડ કરિ

સો તોરિ પાવડ પાઠ ॥

ઉપર કહેવામાં આવ્યું છે તેમ દશ ગ્રંથ પછીના ચારણ કવિઓએ સંસ્કૃત ભાષાને સર્વાંશ અચ્છિત લોકભાષાઓમાં કાલજવા માંડ્યો. એ કાવ્યોની ભાષા સાધારણ રીતે કેવી હશે, તેનું આ દોહાની ભાષા ઉપર અનુમાન કરી શકાય છે.

વિં સં ૧૦૩૬ માં મુગરાજ સોલંકી (વિં સં ૧૦૧૭-૧૦૫૨) ને હાથે કાટની લગણમાં - વીરગતિ પામનાર કુટુમ્બનો રાજ લાખો કુલાણી તેની અદિના દાનશીલતા અને કાવ્યપ્રેમને માટે ચાર

સહિત્યમાં ખૂબ પ્રસિદ્ધ છે. ચારણ કવિઓએ  
એલા એના પવાડા, ગીત, હંદ અને દુહા  
પ્રસિદ્ધ છે, પરંતુ તે કંઈપણ જોતરી આવ-  
તથી તેમનું અત્યારે ડિંગળ-સ્વરૂપ આવું થયું  
કે:

ગણા પુત્ર સમુદ્ર કા, ફૂલ ઘરે અવતાર ।

તરવૌ મોતી ચુગે, લાણા રે દરવાર ॥

× × ×

લ્લાળી હીરે જડી, ચુરત પચૌળી ।

લ્લમ્મ હંદા પાતશા, લાલો ફૂલૌળી ॥

ચારણો પાસે પાદપૂર્તિઓ કરાવનાર અને  
તેમનાં હૃદયોમાંથી રચાયેલ કાવ્યોના રસ  
કુટનાર એ લાખો ફૂલાણી સ્વયં એક ઉત્તમ  
કવિ હતા. મૂળરાજ સાથેની લડાઈમાં કંચ-  
કાદના કિલ્લામાં ઘેરાઈ જતાં તેણે માનવ-  
હવનના વિવિધ લાવો વ્યક્ત કરતા અનેક  
અમોલ દુહા કેલા હતા. જૈનાચાર્ય મેરુતુંએ  
સંવત ૧૩૬૧માં રચેલ 'પ્રવચ્ન-ચિંતામણિ'  
નામક સુપ્રસિદ્ધ ગ્રંથમાં લાખાએ તે વખતે  
કહેલ એક દુહો આવી લાંબામાં મળી આવે  
છે:

જન્યા તાવિઠ જહિં ન કિંઠ,

લક્ષ્મણ મળઈ નિપટ ।

ગણિયા લક્ષ્મણ દીહણ,

કે રહક અહવા જટ ॥

( કુશળ લાખો કહે છે કે, હિંદવ પામતા  
રાત્રુને જો તપાંચ્યો ( દંખાંચ્યો ) નહિ તો  
(આપણે) ગણ્યાગાંધ્યા દિવસો (જીવિત રહેવા  
માટે) મળે છે. કાં તો દશ અંચવા આક. )

લાખાના એ દુહાઓને આજે-કે-આજે અને  
કોઈવાવાડમાં ચારણોને મોટે આવા સ્વરૂપે  
સાંભળીએ છીએ:

પ્રથમ કચ્છી ભોપાની જાંટવાળા એ દુહા  
લખ્યો:

જટે નમી વડછાંચ, અટે ખોડી ખંસ થિયાં;  
લંબી કર કરે પાંચ, અટે ચૂડાવારિયું.

× × ×  
એક દિથે, દુહા લિયે, (આંઉ) ફેકરા ડિ' કહાં;  
અહલા ! એા ડિ' દે, લાખો બારક થિયાં.

દ્વે સોરડી અને ડિંગળ ભાપાની રાજ-  
જાંટવાળા એ દુહા લખ્યો:

લાખો કે' યુ' બારિયો, લીસી છીપરિયાં;  
હાથ હિલોળે પગ ઘસે, ગહુકે ગારલિયાં.

× × ×  
જેડા સખ સરાણિયાં, એડા નંહિ રાણા;  
એક તાણે બીજું માકવે, એડા લાગી નેણાં.

લાખા ફૂલાણી અને મૂળરાજ સોલંકીની  
એ લડાઈમાં લાખાના ભાણેજ અને મૂળરાજના  
ઓરમાન ભાઈ રાખાયશે ભાણેજ અને ભાઈનો  
અપ્રતિમ ધર્મ બળતી મરતી વખતે પેણું  
પોતાના મામાની આંખોને સંભળાથી બચાવવા  
માટે કટાર કાઢવા કમર પરે હાથ નાંખ્યો,  
પરંતુ કટારને બદલે આંતરડાનો લોચો-હાથમાં  
આપ્યો; તે લઈ સમળી ઉપર ફેંક્યો. સમળી  
લક્ષ્ય મળતાં જોડી ગઈ; અને મામાની આંખો  
બચી ગઈ એ પ્રસંગને અમર કરતો તે કાળના  
કોઈ ચારણ કવિએ કહેલો એક દુહો અત્યારે  
આવા સ્વરૂપે સાંભળવામાં આવે છે:

કરે ગો કાઠારી, કરે ગો કાંચોળાં લણી;  
પગકોઈ ના વણસી, રણ લડતે રાખાશની.

ચોટી સદીમાં રચાયેલ 'પ્રવચ્ન-  
ચિંતામણિ' ગ્રંથમાંથી ઉદાહરણ રૂપે આપેલ

(હે આણુંદ ! ઝિખ (ફળ) જેવા અધર  
ઉપર દાંતે કરેલો થા કેવો શોભે છે ? જાણે છે,  
પિયુએ નિરૂપમ રસ પીને ખાડીના ( રસ )  
ઉપર ( ખીજે કોઈ પી ન ત્ય તોટલા માટે )  
મિહાર મારી છે ! )

એ વ્યાકરણમાં ઉદાહરણ રૂપે ચારણ  
વેઓના જ અધિકતર દુહાઓ લેવામાં આવ્યા  
ઉદાહરણ તરીકે:

एदति घोड़ा एह थल,

एदति निसिआ खग ।

एतु मुणीसिम जाणिबद,

जो न विवालय वग ॥

( આ ઘોડા તે જ છે, રથજ પણ તે જ  
કે, અને મ્યાનમાંથી કાઢેલી આ નિસ્તિશ  
અથાત શત્રુઓનું રક્તપાન કરનાર તત્ત્વવાદો  
પણ તે જ છે. એવા આ યુદ્ધક્ષેત્રમાં જેમણે  
પોતાના ઘોડાઓની વાધ ખેંચીને તેમને ( શત્રુ  
પર હુમલો કરવા માટે ) તેજ કર્યા નહિ; તેમને  
પહેલાંથી જ મૃતપુત્ર્ય સમજવા લેઈએ )

આ દુહાને મળતો ભાવ ચારણોને મોટો  
મોલાતા નીચેના એક દુહામાં પણ લેવામાં  
આવે છે:

मल्ल घोड़ा वज्रचक्रा, दुल्ल जांधो दुधियार;  
जो घोरांभां जीकेयो, मन्त्रो दुकड़ी आर.

। कु कंतहो वे दोगड़ा.

हल्ल म जंतहो आनु ।

रेनहो हउं पर उज्जरिअ,

जुज्जान्तओ करवाउ ॥

( હે સખી ! મારા પતિમાં જે દોષ છે.

( સખી તેને તેમ કહેતાં રોકે છે કે, એવું )  
વ્યા ( આજ ) જોશીશ ( અંખ ) નહિ.  
( તે જે દોષ ક્યા ? એ સ્ત્રી જવાબ આપે છે : )  
તેના દેતાં દેતાં ( દાન દેતાં ) દેતા હું બચી  
( ઊગરી ); અને યુદ્ધમાં લડાઈ લડતાં લડતાં  
( ઝૂઝતાં ) કેવળ તલવાર જાયવા પામી છે ! )

એ વ્યાકરણમાં ઉદાહરણ તરીકે લીધેલ  
ચારણ કવિઓના કેટલાક દુહાઓ તો આજે  
પણ ચારણોને મોટો તેના વિદ્યુત રૂપે સાંભળીએ  
છીએ. ઉદાહરણ તરીકે:

भल्ला हुआ लु मारिआ,

बहिणि महारा कंतुं ।

लज्जेअन्तु वयसिअहु,

जइ मग्गा घर एंनु ॥

( હે ખહેન ! મારા પતિ યુદ્ધમાં કામ  
આવ્યો, તેને હું લહું થયું સમજું છું. કેમકે  
ને તે રણાંગણમાંથી ભાગીને ઘેર પાછો  
આવતો તો ( તારા જેવી ) સખીઓ મને ( તે  
ખદલ ) મહેણું મારીને લલિત કરત. )

આ દુહો આજે આવા રૂપે સાંભળવામાં  
આવે છે:

ભાગે તું મંત કંથડા ! તું ભાગે મું ખોડ;  
સરખાં-સરખી સાહેલિયું, તાળી દે મુખ મોડ.

वायसु उज्जवन्तिआ

। पिउ दिट्टउ सहसत्ति ।

अद्धा बलया सहिहि गय,

अद्धा-पुट्ट तटत्ति ॥

( એક વિયોગિની સ્ત્રી કાગડાને ઊડાડવા  
લાગી કે, મારો પિયુ આવતો હોય તો ઉડી

જાના જૈન વિદ્વાનોના પ્રયત્નોમાં ઉપર પ્રમાણે  
જો કેટલાં ઉલ્લેખ મળે છે, પરંતુ જૈન  
વેદનામાં થયેલા કાળ સુધી દેશની પ્રચલિત  
ભાષાથી જૂની ભાષા લખવાનો દિવાળ રહ્યો છે,  
તેથી તેમણે જૈની ભાષામાં એ દુહા સંગૃહીત કરેલ  
છે, તેવી ભાષામાં જ એ દુહા ચારણ કવિઓએ  
લખ્યા હશે, કે કેમ તેનો સંદેહ રહે છે. પરંતુ તે  
સિવાય બીજો આધાર ન હોવાથી આપણે એ  
ઉલ્લેખો પર સતોપ માનવો પડે છે. જો કે એ  
દુહાઓનાં પંદરમી સદી પછીનાં રૂપાંતરો તો વિપુલ  
સંખ્યામાં પ્રાપ્ત થાય છે, અને તેનાં થોડાંક  
ઉદાહરણ ઉપર આપવામાં પણ આવ્યાં છે.

હેમચંદ્રાચાર્યે તેમના પ્રાકૃત ચારણમાં  
ઉદાહરણ તરીકે ચારણ કવિઓના જે દુહા  
આપ્યા છે, તે બધા તેમના સમકાલીન કવિ-  
ઓના નથી. કેમકે એ ઉદરણ માત્ર છે. અને  
ઉદરણ બહુધા પોતાનાથી પ્રાચીન લેખકો કે  
કવિઓની કૃતિઓમાંથી લેવામાં આવે છે.  
હેમચંદ્રાચાર્યનાં વ્યાકરણનો સમય બારમી સદી  
છે. ત્યાર પછી પણ 'ચારણો રો પીઠર' નામથી  
પ્રસિદ્ધ કાઠિયાવાડ દેશમાં તો ચારણોનો વસ-  
વાટ ચાલુ રહ્યો. પરંતુ બારમી સદી પછી  
ચારણ જાતિનો અધિકાર-શુદ્ધિમાન વર્ગ  
પોતાની આરાધ્યા દેવી આવડ માતાના દર્શન  
માટે કાઠિયાવાડ અને રાજપૂતાનાના બીજા  
ભાગોમાંથી નીકળી જમ્મુજમ્મર રાજ્યમાં આવેલ  
પોતાના આદિસ્થાન તેમજ પર્વતનાં  
માર્ગે પશ્ચિમ રાજપૂતાનામાં વસવા લાગ્યાં. એટલે

ત્યાં વસેલા ચારણ કવિઓ ત્યાંની જૂની  
રાજરથાની ભાષામાં કવિતા કરવા લાગ્યા.

એ વખતથી ચારણ કવિઓની કાવ્ય-  
ભાષાના દેશ-બેદને લીધે એ વિભાગ પડ્યા:  
રાજપૂતાના, માળવા અને સિંધની પૂર્વ સરહદ  
પર વસનાર ચારણ કવિઓની ભાષા જૂની  
રાજરથાની કે ડિંગળને નામે, અને ગુજરાત  
કાઠિયાવાડના ચારણ કવિઓની કાવ્યભાષા  
સોરઠી કે ચારણ ભાષાને નામે ઓળખાવા  
લાગી. જો કે એ બંને ભાષાઓની પ્રકૃતિ  
એક જ છે, પરંતુ ડિંગળ ભાષા પર હિંદી  
ભાષાની અને સોરઠી-ચારણ ભાષા પર  
ગુજરાતી ભાષાની ખૂબ અસર છે, છતાં બંને  
ભાષાની કવિતાઓ એક જ પ્રકારનાં જૂનો કે  
જો 'ગીત' ને નામે ઓળખાય છે, તેમાં લંબાય  
છે.

સોળમી સદી સુધીમાં તો એ બંને  
પ્રકારની ચારણોની કાવ્યભાષા પૂર્ણ ઉન્નત  
અવસ્થાએ પહોંચી; અને તેમાં તેનાં બોલેર  
પ્રકારનાં 'ગીતો' ના પિંગળના તથા  
રાજ-સંગ્રહનો વિવિધ પ્રયોગ લખાયા. એ વખતે  
દુદાનું સ્વરૂપ વંજીસગાઇ, ઝડઝમક અને  
અન્ય અલંકારોથી સુશોભિત બની પૂર્ણતાએ  
પહોંચ્યું. અને તેમાંથી નૈસર્ગિક ઉર્મિમયતા  
ઓછી થઇ, નાદ-વલય વધ્યો.

સોળમી સદી પછીથી રાજપૂતાનામાં વસતી  
તમામ ચારણ જાતિ સરકાર-બેદે 'માર'  
નામે ઓળખાવા લાગી. અને રાજપૂત જાતિને

મુખ-દુઃખમાં અપૂર્વ સદાય આપવાને લીધે તથા કાવ્ય-શક્તિને બળે એ તમામ ગાદ ચારણો સારી સારી જગીરો ધરાવતા થયા. જગીરોના મદમાતા એ ચારણોએ કવિતા, પુદ્ધ અને રાજકાર્યમાં સલાહ આપવા સિવાય બીજા ધધાને નિર્લાજલિ આપી. તેમની રચનાઓમાં પણ દુહાનું સ્થાન તો મોખરે રહ્યું. છતાં કવિતાના સામ્રાજ્ય અબ્યાસે અથવા વધુ આરાધને તેમણે 'ગીતો' અને અન્ય છદો ઉપર વધુ હાથ અજમાવ્યો, અને એ ગીતોના તથા છદોના રણકારે તેમને દુહાનો નાદ કંઈક ઓછો કરી નાંખ્યો. પરંતુ કાઠિયાવાડમાં અને તેમાંય સોરઠ વિભાગમાં વસનાર 'સોરઠિયા' અને 'પરજિયા' નામથી સરેકાર અને દેશ-ભેદે આજખાતા ચારણોએ કવિતા દ્વારા માન અને જગીરો મેળવવાને બદલે પોતાના પરાપૂર્વના પશુ-પાત્રનના ધધાને વધુ મંદસ્ત આપ્યું. અને તેને ચાણુ રાખ્યો. એટલે તેમનામાં પરાપૂર્વના દુહા-પ્રેમ અખંડ ચાણુ રહ્યો. કારણ કે, ચારણજાતિ નૈસર્ગિક કવિત્રી હોવાથી ગમે તે ધધો કરવા છતાં અને વિદ્યાબ્યાસ સિવાય પણ તેની કાવ્ય-શક્તિ નષ્ટ થઈ નથી. કવિતા તો એના લોહીમાં મળી ગયેલી છે. અને તેથી જ 'કાઈ પણ ચારણ વણ પડિયો વાનું કવે' છે.

ચારણ જાતિને ધધરે કાવ્ય-શક્તિની સાથે મીઠા કંઈની પણ બક્ષીસ આપેલી છે.

સોરઠ દેશની સ્ત્રીઓના કંઈની પ્રશંસા તે પાણિનિ જેવા હુરંધર વિદ્વાને પણ પોતાના વ્યાકરણમાં કરી છે. એ દેશમાં સુરમ કંઠવાળા ચારણોનો વસવાટઃ પછી પૂછવું ન ચું ? મેઘપુગાચાર્યે પણ દુહા-વિદ્યાની સ્પર્ધ કરતા ચારણોને સોરઠના જ ગણાવ્યા છે, એટલે હંમચંદ્રાચાર્યના વખતથી જ એ દેશના ચારણો દુહાની રચના તથા બોલવા માટે પ્રસિદ્ધ છે. અને ત્યાર પછી પણ ઉપર જણાવ્યું તેમ એમણે એ કળા સમ્રાટી રાખી છે. ચારણોના એક મુખેથી બીજે મુખે અને બીજેથી ત્રીજે એમ દાનરો મુખે શીર્ષકથાઓ, પ્રેમકથાઓ, નીતિ-વાર્તાઓ અને રાજકેદરના દુહાઓ રમતા ગયા. જેમ જેમ તેમની જીભની સરાણે એ દુહા ચડતા ગયા, તેમ તેમ કંઈક વૃત્તિને આવશ્યક તેનો નાદ-પૈલવ વધતો ગયો. એટલે કે, તેને મીઠી દલકથી બોલવા-ગાવાની અનુપમ કળા એ માલધારી ચારણોને સાધ્ય થઈ. અને તેથી જ દુહામાં પણ "સોરઠ રોં દુહો લાલો" એ કહેવત પ્રચલિત બનેવા પામી.

કાવ્યસાસ્ત્રના ગ્રાતા ચારણ કવિઓ જેવું ઔરવલર્થું સ્થાન શિષ્ટસમાજમાં બોગવતા આપ્યા છે. તેવું સ્થાન આ માલધારી ચારણો, તેમના સંગી-સાથી કાઠી, આયર, રબારી, ભરવાડ અને મેરવગેરે માલધારી સામાન્ય લોક-સમાજમાં બોગવતા આપ્યા છે. અને પોતાની કંઈક વાણીનું

(અનુસંધાન પૃષ્ઠ ૧૪ ઉપર)

# દેથાકુળ-ઉબળક સાધ્વી દેવી શ્રી આંબુબાઈનો જીવન-પરિચય

ચારણ જાતિમાં સમય સમય પર દેવી વિભૂતિસંપન્ન અનેક મહાશક્તિઓએ જન્મ લઇને તેને ગૌરવાન્વિત કરી છે. હિંદુસમાજની અન્ય જાતિઓને મુકાબલે ચારણ જાતિનો હિંસા-સમાજ બહુ તેજસ્વી લેખાયો છે. અને તેથી જ ચારણો દેવાપુત્ર કે દેવીના બાળપ્રા

( પૃષ્ઠ ૧૩૮નું અનુસંધાન )

મેમને રસારવાદન કરાવી એ લોકોને પણ તેમણે હા કંઈક રાખી બોલવાનો નાદ લગાવો છે. જતાં મીઠી હલકથી કુહો બોલવો અને ગાવો એ તો ચારણના આપનો છે. એ વાતની ટાંછથી તો કહી શકાયે નહિ. કુહાને શું શૌર્યકથા કે શું પ્રેમકથા, શું નીતિ-ઉપદેશ કે શું ઉદ્બોધન રૂપે જનતાનો પ્રિય છંદ બનાવવાનું માન ચારણોને છે. અને રહેશે. \*

ગણાય છે. આજે પણ મારવાડમાં ખુડદ ગ્રામ-નિવાસી દેવી શ્રી ઇંદિરાબાઈ રત્ન તેમની દેવી શક્તિ માટે સર્વત્ર પ્રસિદ્ધ છે. અત્રે ચરપારકર જેવા શુષ્ક પ્રદેશમાં લક્ષ્મીની વેલિ સજીવન ગ્રામગાર એવાં જ એક વિભૂતિસંપન્ન સાધ્વી ચારણ બાઈનો દ્વંદ્વ જીવન-પરિચય. આપવા પ્રયત્ન કર્યો છે.

અહીં આંબુબાઈનાં પ્રથમ દર્શન મને ૩૨વર્ષ પૂર્વે તેમના ધર્મશુદ્ધ ૨૫૦ લક્ષ્મીના શ્રી મધારામજીની-મંડળીમાં થયેલાં; અને ત્યાર બાદ મને ૧૯૦૧ની સાલથી મારી નોકરી ઉક્ત લક્ષ્મીના દીપલા ગામે, અને પછી મીઠી ગામે—ત્યાં ગાઈનો નિવાસ છે; ત્યાં ચલાયી જાહેન સાથે પરિચય વધતો ગયો.



ધન્ય મારા પ્રભુને ! ક્યાં મારા જન્મ પાંચ-ચરદામાં ને બહેનનો ગદગ ( યગ ) માં ! કયો દેશ, કંઈ જાતિ અને કયા જન્મના સરકાર ! મને લખનાં આનંદ થાય છે, જાણે અમે સર્માં લાઇ-બહેન ન મળ્યાં હોઇએ ? મેણે જાણે કેટલાય જન્મોના વિપ્રદા પડેલા ગહન સંબંધો તે આ રીતે પાછા બેઠાગેલા અનુભવાય છે. વાહ પ્રભુ ! તમારી, ગહન ગતિ છે.

બહેન સ્વભાવે માયાળુ હોવા ઉપરાંત પરાંપકારવૃત્તિ, પોતાની જાનમાં અને અન્ય જાતમાં બિલકુલ બેદરબાંધ ન રાખતાં આત્મચત્ત સર્વ મૂલેષુ-સર્વપ્રાણીઓને પોતાની પેઠે જોવાં, સર્વમૂલ હિતેલા-સૌનું હિત ચાહવું ઇત્યાદિ સદગુણસંપન્ન છે.

પ્રાકૃત્યનમાં ઉદ્ભવિત ગુણોના આદર્શરૂપ આ બહેન ચરપારકર પ્રદેશમાં પાનાનાં ભમ-મય શુદ્ધભક્તિનો પ્રભાવ પડીત લોક-કલ્યાણુની અદ્વૈતુકી પ્રવૃત્તિ મેંડી ન્હાં છે તેમના ભક્તિમય જીવનની ઉપરબા દેશવાનો સુઅવસર મારા હાથને પ્રાપ્ત થતાં સનેગ અનુભવું છું.

જરવાદના આ જમાનામાં સાધુ-સતો અને સન્નારીઓનાં જીવનગતિઓના અભ્યાસની ખાસ અગત્ય છે. કેમકે તે વડે નિરસ્વાર્થતા, કેદારતા, નિષ્પ્રયત્નતા આદિ, સદગુણો જે તેમના જીવનમાં આતપ્રેત

થયેલા હોય છે, તેનું અનુકરણ કરવાંમ આપણને મદદ મળે છે. માટે તેવાં જીવન ચરિત્રો જેમ વધુ આલેખાય અને તેનો વધુ અભ્યાસ થાય તો સંસારી જીવોને લાભપ્રદ અને ઉપરોગી નીવડે એ નિર્વિવાદ છે.

બહેન આંજુબાઈનો જન્મ વિ. સં. ૧૯૪૨ના ચૈત્ર વદિ ૧૦ ને દિને થળપ્રદેશ અંતર્ગત ગદગગામમાં, પિતા મૂળચંદ્ર ૨૩૬૫૬ન દેથા અને માતા ત્રીજાંબાઈની કૃષેથી થયો છે. એમનાં માતૃથી હજુ હયાંત છે. બહેનના એકમાત્ર ભાઈ નામે ખીંખરાજ સે ગદગાની રૂક્ષમાં હેડમાસ્તર છે. ભાઈને ત્રણ પુત્રો-નામે ત્રિલોક, રણમલ અને ભમરદાન છે. બહેનનું સાસરું અને હાઈમાં નિવાસીમાં છે. તેમનું લગ્ન સં. ૧૯૫૧ના વૈશાખ સુદિ ૩ ના દિને થયેલું, પરંતુ ૧૯૫૨ પછી તથા જ વર્ષ સં. ૧૯૫૪ તથા સુદિ ૧ ને દિને તેમને વૈધવ્ય પ્રાપ્ત થયું. એ રીતે ૧૩ વર્ષની વયમાં જ બહેનનો સંસાર-અવલો સમાપ્ત થઈ ગયો. એમ માતો કે બહેનને માં સંસારનું મુખ નિર્મોણ જ નહોતું. પૂર્વનાર તત્ત્વજ્ઞાનગ્રાધને લીધે જ જન્મનો પ્રસંગ દનોઃ અને પાછળથી સંસારની એ મોહજાળ જરવાથી તેમને ભક્તિમય જીવન પ્રાપ્ત થયું. બહેનના પતિ ભાનોજી દવારકોજી મુખ્ય ગોળા આરુણ હતા. તેમના અવસાનના બહેનનાં સાસરામાં વહ સાસુ, એક દિવર જેનેજી અને નજીદ જાનુબાઈ તથા નણંદને

નિયમ છે. નિરંતર ભજનમાં મગ્ન રહે છે. તે જ્ઞાન મેળવીને બીજા બ્રાહ્મણને જ્ઞાન ભવવાની સગવડ કરતાં રહ્યાં છે. નાનાં પરમાત્માનાં કામો પણ કરે છે. તેમના ઉત્તમ ચારિત્ર્ય પર લોકોનો વિશ્વાસ બેસી ગયો છે; જેને બિધિ આવાં સારો વહીવટ તેઓ ચલાવે છે. તેમનામાં કાર્યદક્ષતા, તીવ્રશુદ્ધિ અને આત્મભજન સાથે વ્યવહારકુશળતા હોવાથી તેમનો સમાજમમાં માનનારાંઓને પણ તેઓ મણાં સદાપણત હઈ પડે છે. તેમનામાં વિશિષ્ટ શુભ શ્રી છે કે, તેઓ સાદા નિર્લોબી ને નિરુપદી છે. ગૃહસ્થાશ્રમમાં હતાં તે જ કપડાંમાં હાથ રહે છે; પરંતુ અંતઃકરણ ભક્તિથી રંગાયેલું છે. કોઈ પણ શુભ વિચાર મનમાં ઊઠે તો તે પૂરો કરવામાં મનતાં કશી દીલ કરતાં નથી. નિરંતર પુરુષાર્થ-પરાયણ રહે છે. લોકો તેમને પૂજ્યભાવથી માને છે. પ્રચુરમરણ સિવાય અન્ય પ્રવૃત્તિ તેમને ગમતી જ નથી. તેઓ શુરસેવા-પૂજામાં અડગ શ્રદ્ધાળુ છે. શુરનો પ્રદાપ માની તેમની જ્ય બોલાવે છે. “મહાન પુરુષની દ્વાયી કે પ્રભુનો કૃપાકટાક્ષથી મનુષ્યને દુઃખની પાછળ ભક્તિરૂપી મુખ પ્રાપ્ત થાય છે. દુઃખ એ સુખની કંસોટી છે.” તેનો આભેદ્ધ આ દાખલો છે. બહેનના સરશુદ્ધ (ધર્મપિતા) ભક્તરાજ મધારામજી ભગવાનના અનન્ય ભક્ત હતા. આ દેશમાં ડુંકાની ચોટે તેમની માન્યતા છે. સમજો ગૃહસ્થાશ્રમમાં જ રહીને પોતાની અનન્ય

ભક્તિ વડે ભગવાનનો સાંક્ષાત્કાર કર્યો હતો. તેમના સ્વરૂપમાં પ્રભુએ આવીને તેમનું ઋણ ચૂકવી આપ્યું હતું અને અનેક પરચા પૂર્વા હતા. પૂર્વના પુણ્ય સંબંધે આવા સાચા સમર્થ સરશુદ્ધ તેમને ઘેર બેઠાંજ મળ્યા હતા. શ્રી મધારામજીનું શરીર સં. ૧૯૬૮ ની સાલમાં પચ્ચત્વને પામ્યું. તે દેહાણે દીપકામાં દહેરી કરાવી ને તેમના તથા બહેનના ભાવિકજનો દરસાલે ત્યાં મેળો ભરી ઉત્તમ મનાવે છે. મીડીમાં બહેનની જગ્યામાં તેમનો ફોટો સ્થાપિત કરીને તે જગ્યા ઉપર ‘ભક્ત મધારામની કુટિયા’ એવું નામ રખાયું છે. ત્યાં ભક્તરાજની આજ્ઞા-પ્રમાણે બહેનના આધિપત્ય તળે અહર્નિશ ભજનવાણી, કથાકીર્તન અને જ્ઞાનચર્ચા થાય છે. એ ભક્તરાજ મધારામજીનું જીવનચરિત્ર તેમની ભજનમાળા નામક પુસ્તકમાં છપાયેલું છે. બહેન પોતે ઘણું ભણેલાં નથી, પરંતુ ઘેર બેઠાં અભ્યાસ કરી; ગીતાજીની ભાષાટીકા, હિંદી ભાષામાં શ્રીમદ્ ભાગવત; અને તુલસીકૃત રામાયણ ટીકા સહિત વગેરે સરળ ધર્મશ્રેણી કથા કરી શકે છે.

દૂકમાં તેઓ સૌનાં શુભેચ્છક હોઈ, સર્વ સાધારણ પ્રત્યે આત્મભાવજન્ય નિર્મળ પ્રેમ રાખી, અતિથિ સત્કાર અને ગૌ-સંતની સેવામાં તત્પર રહે છે. અને પશુપક્ષીનું દાણા-ચાંચથી પોષણ કરવામાં આનંદ માને છે. તેમનું જીવન સર્વદા આદર્શમય છે.

બહેનનો ધર્મભાઈ

પીતાંબરદાસ અવનંદનજી વારડ

નિવૃત્ત મામતદાર, બિટીરા-ગવર્નમેન્ટ, મીડી ( ઘરપારકર )



## સેવા અને સંસ્થા



લેખક: શ્રી જયમહાદેવજી શિવદાનજી પાયક, લોદ્રાણી ( વાગડ-૨૨૭ )

મહાત્મા ભર્તૃહરિએ કહે છે:— સેવાર્પણ:  
પરમ ગૃહતો યોગીનામવ્યગમ્યમ્ । અર્થાત્  
સેવાનો ધર્મ એટલો ગહન છે કે યોગીઓ  
પણ તેને પૂરેપૂરો જાણી શકતા નથી.

સંસારનાં મુખેને માનવકલ્યાણ દ્વારા  
આત્મકલ્યાણ સાધવા માટે તૃણવત્  
ગણી છોડી દેનાર યોગીઓ પણ સેવા-  
ધર્મને સંપૂર્ણ સમજી શકતા નથી; તે  
આપણા જેવા દુન્યવી લોકોની તો વાત જ  
શી કરવી? છતાં આપણા જીવનઅવસરો-  
માંથી સમય મેળવી જનસમાજનું, દરિદ્ર-  
નારાયણનું કલ્યાણ થોડે ધણે અંશે પણ  
આપણે ને કરી શકીએ તો જ માનવજીવનની  
સાર્થકતા. આપણો મનુષ્ય તરીકેનો અવતાર  
ફક્ત આપણી સુખ-સગવડો માટે નથી. આપણું  
શાસ્ત્રોએ ત્યાગને મોટા ગણેલ છે. આપણે જે  
દેશમાં જન્મ્યા, જે સ્થાનમાં કે કુટુંબમાં આપણો  
જન્મ થયો, તે દેશ, સ્થાન, કુટુંબ બધે દરેક  
માનવી પ્રત્યે આપણી અમુક પ્રકારની-કરજ  
છે. સમાજરચનાની આજ ગણ યાત્રી છે.  
મહાત્મા તુલસીદાસે “ જીવ જીવ કે આસરે  
જીવ કરત હૈ રાજ ” કહ્યું છે, તે પણ આજ જ  
અર્થમાં.

મનુષ્યોને કુદરતમાંથી પણ સેવામાર્ગ  
સૂચન મળી રહે છે. એક કવિએ કહેલ છે કે:  
સરવર, તરવર, સંતજન,  
ચોથા ખરસે મેલ;

પરમ્પરથ કે કારણ,

ચારોં ધરિયો દેહ.

આપણું શાસ્ત્રો આવી નિઃસ્વા-  
સેવાઓના દાખલાઓથી ભર્યાં પૃથ્વી ઉ-  
પાતાના ગણિદાનથી જમતું કલ્યાણ ધ-  
હોય તો બલિદાન આપતાં માણસો અટકે  
નથી. મહાત્મા દધીચિની કથા બધા જાણુ-  
હશે. તે જ સાચી સેવા છે. જે સેવામાં જ  
સરખી પણ સ્વાર્થની ગંધ હોય તે સાચ  
સેવા કહી શકાય નહિ. આત્મભોગ. આપ  
સિવાય કોઈ પણ સેવા કરી શકાતી નથી  
એક કવિએ કહેલ છે કે:—

આત્મભોગ આપ્યા વિના,

કદી ન સુધરે કામ;

સથગે અગે દિવાસળી,

પ્રગટે દીપકે ધામ.

આજની આપણી સમાજરચનાના પાયામાં  
અનેક પીર પુરોનાં જીવન હોમાઈ ગયાં હશે  
કેઈ રાષ્ટ્ર સ્વતંત્ર થાય તેટલા માં

અનેક આશાભર્યા યુવાનોએ બલિદાન આપેલાં હોય છે. હિંદુસ્થાન સ્વતંત્ર થાય એટલી જ ભાવનાથી માખાપ, સી.પુત્ર, નાનાં ભાઈ-બહેનો, મિત્રો, મુખ્ય-સગવડો છોડી ફક્ત અમારો દેશ સ્વતંત્ર થાય, અમારા ભાઈઓને, અમારી બહેનોને પૂરતી રોટી મળે તે માટે આંદામાનના જીવતા નરક સમાન કારાગૃહોમાં જીવન પર્યંત સહતા, ફાંસીને માંચડે ચડી જતા યુવાનોનો સાચો અત્મત્યાગ છે. તે જ સાચી સેવા છે.

સેવાપંથના એ દીક્ષાધારીને પોતાનું કે પારકું હોતું નથી. તેને મન તો “ સખી ભૂમિ ગોપાલ કી, સખ ઈશ્વર કે બાલ ” એ ભાવના હોય છે. તેને માફ, સોરડિયા, પરજિયાઓના બેદોમાં અટવાવાનું હોતું નથી. અમુક કુળ જોયું કે અમુક કુળ નીચું, તે તરફ તેનું લક્ષ્ય પણ ન હોતું બોધ્યું; “ ચારણ એક ધારણ.” કારણ કે:

“ ઇશ્વરે નરો ઉપાવિયો,

કૃષ્ણ ચોરાડો કીધ;

બ્રહ્મા ચુવો નિપાવિયો,

શાખાં તીનું સિદ્ધ.

સમસ્ત ચારણ જાતિના હિતમાં જ પોતાનું હિત સમજનાર, તે હિત સાધવા માટે નિઃસ્વાર્થભાવે સેવા કરનાર જ સાચો સેવક છે. તેની સેવાનો તેને બદલો ભણે ન મળે, તેની સેવા ફળદાતા કદાચ ન પણ થાય, યરતું

તેને મન તો ગીતામાં ભગવાન શ્રીકૃષ્ણે કહેલ કર્મણ્યેવાધિકારંતે. મા ફલેષુ કદાચન-ફળા કર્મ-કાર્ય કરવાનો જ પોતાનો અધિકાર છે; ફલદાતા ઈશ્વર છે એ વિચાર. આ પ્રમાણે “ હું ” ને બૂલી સેવા કરનારા કેટલા ચારણો છે? આજે કહેવાય છે કે અમુક અમુક ભાઈઓને ચારણોની સેવાની કોળની લાગી છે. તે લગની સાચી છે? સાચી લગની કેવી હોય તે બાબતમાં એક દુહો છે કે:

લગની લગની સખ કહે,

લગની કહાવે સોય;

‘ નારાયન ’ જેહિ લગનિ મં,

તનમન ડારે ખોય.

આ પ્રમાણે આપણામાં છુપાઈ રહેલા અહંને આપણે ત્યાગી શકીએ, ચારણોના ઉત્કર્ષના પ્રશ્નોમાં અને ઉપાયોમાં તન્મય થઈ શકીએ, ત્યારે સાચી સેવા કરી કહી શકાય.

કેટલાક ચારણભાઈઓને ફક્ત ઉધરાવતાં કે જાતિસેવાનાં ખીખાં કાર્યો કરવામાં પોતાની જાત હલકી થઈ જતી હોય તેમ લાગે છે. સેવામાર્ગને ગમે તેવું હલકું કાર્ય કરતાં સરમ ન આવવી બોધ્યું, અલગ્યત તે આપણી નીતિ કે ચારિત્ર્યને બાધક ન હોતું બોધ્યું. કલકતા-કોંગ્રેસમાં મહાત્મા ગાંધીજીએ પાંચખાનાં સાફ કરવાનું, અને એકવાડો સાફ કરવાનું કાર્ય ક્યું હતું. આથી મહાત્માજી હલકા બની ગયા નથી. આજે સમસ્ત વિશ્વમાં તેમનાં પ્રત્યે માનની લાગણીથી બોવાય છે.

આપણા હિંદુઓના ઈશ્વર મનાતા ભગવાન શ્રી કૃષ્ણે પણ મહારાજા યુધિષ્ઠરના રાજસભ્ય થતા પ્રસંગે એકવાડનાં પત્રાળાં એકઠાં કરી ઉકેરડે નાંખવાનું કાર્ય માથે લીધું હતું.

સેવાનું કાર્ય શીખવા માટે પરદેશ જવાનું નથી, તેના માટે કોઈ શાળા કે કોલેજ નથી. આપણે માંજુસ છીએ તેથી બીજાં આપણાં માંજુ બહેનો પ્રત્યે આપણી ફરજ છે. એ ભાવની ભગ્યુતિ થવી અને તે ફરજ ભગવવા પ્રયત્ન કરવો તે જ સેવાનું શિક્ષણ છે.

આપણે આધુનિક સમાજ કેવો બની ગયેલ છે, તેનો આપણે વિચાર કરવો જોઈએ. સેવા માટે આ ક્ષેત્ર નાનું નથી. આપણા બીજા બંધુઓના કુઃખમાં ભાગ લઈ, તેઓનાં કુઃખ-દર્દી મટાડવા આપણાથી બનતું બધું કરવું જોઈએ. સેવા કરવાથી બીજાઓ સાથે આપણું પણ હિત સંધાય છે. કેમકે:

• સેવા કીધે સાંપડે,

પરમ પ્રાપ્તિ પાસે;

સેવા કરીએ સ્પર્ધા,

દાની થઈને (જેમલ) વાસ.

ઘણી વખત એવું બને છે કે, સેવા કરવા ઈચ્છતાં સેવાયત્રમાં પોતાનો સ્વર્ગ રજો આપવો : ભગ્યુ ધમારત ચણવાનો આપણને સુઅચાર્ય પારતા ભાગ કે બહેનને યોગ્ય ક્ષેત્ર મળી સાંપડે. હવે આ ગરીબ સેવકની અરજ છે કે:

૫૬

રાગ કલાશરિ

(શીમેંતો વખત વિચારો એ રાગ)

આરણ્ય-હિત-સંભાને સારો રે, સેવાનો આપણે ફાળો. રે તન-મન-ધનને વચન થકી, નેત્ર-અમીએ ન્યાળો;

જાગરવાનો એ જ છે આરો, આરણ્ય-હિત-સંભાને સારો.

શકતું નથી. પરંતુ હવે આપણે તેમ કહી શકીએ તેમ નથી. છેલ્લાં ચાર પાંચ વર્ષથી આપણી શ્રી આરણ્ય-હિત-વર્ધક સંભાની અને તેનાં ફળ-સ્વરૂપ શ્રી કૃષ્ણકુમાર-આરણ્ય-વિદ્યાલયની સ્થાપના થયેલ છે. દરેક સુત્ર. આરણ્ય ભાઈ-બહેનની ફરજ છે કે 'ફૂલ નહિ તો ફૂલની પાંખડી' આપણી આ મંરથા પ્રત્યે, બૃહદ્ યુગરાતની આપણી આ યતી સંસ્થાને પગભર ફરવા અને કાયમ ફરવા માટે તો યથાશક્તિ મદદ કરે. જે ભાઈઓ બીજી સેવા ન કરી શકે તો પોતાથી બની શકે તેટલી આર્થિક મદદ કરે અને બીજાંએને મદદ કરતાં કરે તો તે પણ સાચી સેવા ગણાશે. બૃહદ્ યુગરાતમાં આપણાં પાંચ હજાર ઘર છે. ઘર દીડાંને વાર્ષિક એક એક રૂપિયો મળે, તો પણ વાર્ષિક પાંચ હજાર રૂપિયા સંસ્થાને મળે. આ પ્રમાણે થાય તો આપણી આ જે સંસ્થાને અત્યારે જે આર્થિક મુશ્કેલીઓનો સામનો કરવો પડે છે, તેનો થોડો ધણે અંશે ઉકેલ થાય, અને તેટલી રાહત અને સમય મળતાં આપણા

સમાજજીવનમાં પોલા સડાઓ દૂર કરી લાગ્યુ ધમારત ચણવાનો આપણને સુઅચાર્ય

પ્રેતભોજનને પોસ્ત પરવાના કામથી પરવારો;

ભૂંડપનો ફેંકી દો ભારો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૨

કન્યાવિક્રયનો ત્યાગ કરીને, સધવા સુધારો;

વિધવાનાં દુઃખ વિચારો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૩

ઝારિંગ ખુલી લણાયો બાળક, નીચતા નિવારો;

પોતાની મંહત્તા પાળો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૪

શંકર, જશકર્ણ, રામદાન શોભે, કારણ દિલકારો;

ફલો જ્ઞાતિ-દુઃખ દમનારો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૫

છવણ, નારણ, ખેતસિંહણ, મેડ માયાળો;

પાયકણને મંથ છે ખ્યારો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૬

સાહ્ય કરો ને કાર્ય સુધારો, 'જેમલ' ના ચારો;

આબ્યો હવે નજીકમાં આરો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૭

## ‘ચારણ’ નો સત્કાર

ચારણ-સાહિત્યના મર્મજ્ઞ શ્રી ઝવેરચંદ મેઘાણીના તત્ત્વીપદે પ્રગટ થતું પ્રસિદ્ધ રાજસ્થાની પત્ર ‘ફૂલછાણ’ તેના તા. ૨૬-૬-૩૯ના અંકમાં લખે છે કે—

### ચારણ કોમ વારસાને હાથ ધરે છે

‘ચારણ’ ત્રૈમાસિકનો મોડો મોડો પણ કોમ-સાહિત્ય પર શ્રવેલી, આગળ વધેલી ત્રીજો અંક હાથમાં આવે છે, અનિયમિતતા અને એને ભૂલી જતાં પાછી પડેલી એ મોટે દુઃખ થાય છે; પણ પાનાં ફેરે છે ચારણ કોમનું આ ત્રૈમાસિક અત્યારના અને દુઃખ ભુલાવે છે. સાહિત્ય જગતમાં પોતાનો એકડો નોંધાવવા ચારણ તો આજના વ્યવસ્થિત-લેખન આવેછે. એનો વર્તમાન ઇતિહાસ ઓછો છે; સંપ્રદાયની-સાહિત્યોપજ્ઞી જનતાની આદિ સાંતિને અત્યારના સાહિત્યિક જગતમાં આજળ

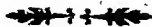
પડતું સ્થાન આપે તેવો નથી. પણ જૂતકાલીન વારસો તો ગર્વ લેવા જેવો છે. જેની અત્યારના સાહિત્ય અને જીવન પર આછી ઘેરી છાપ પડી છે.

એ વિશિષ્ટ વારસાને આ ત્રૈમાસિક ઉમેશતું આવે છે, એના પર ચડી ગયેલી ધુનને ઝંઝટું એનું શુદ્ધિકરણ કરી પ્રગટ કરતું આવે છે. કામમાં થઇ ગયેલા અને અત્યારે પણ આવે ખૂણે પડેલા સાહિત્યજીવી અને શુદ્ધ સાહિત્યો-પાસકોના-શ્રી. જોપાણઆદા, શ્રી. જાંજીદાસજી આસિયા, શ્રી. કેસરીસિંહજી ગારહડ. શ્રી. સુર્યમલ્લજી મિશ્રજી વગેરેનાં કાવ્યો આ અંકમાં રજૂ થયાં છે, સંગ્રહાયાં છે. એ ઉપરાંત આ વખતના અંકમાં તો વાઘા ફોટોડિયા જેવી ઐતિહાસિક વાર્તાનું પણ સંસ્કરણ થયું છે. કાવ્યો-લેખો સિવાય આગળ પડતા ચારણ કવિઓ, લેખકોના ટુંકા ટુંકા પરિચય પણ અપાયા છે.

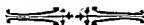
હિંદી સાથે ગુજરાતી વિભાગ પણ છે. હિંદી તેમ જ ગુજરાતી વિભાગમાં ગાંધીની અવદશા. તેનાં કારણો, તેનું નિવારણ-વગેરે

માટે ઘણા લેખો છે. પણ ‘ચારણ’ ની વિશિષ્ટતા તો એના વેડફાઈ જતા અમોઘ વારસાનું સંસ્કરણ કરીને સૂત્રબદી લેવામાં છે. એ વારસો અનેક વિભાગોમાં, અને અનેક પ્રદેશોમાં પથ્યો છે. એ પ્રદેશને હાથ ધરી કામમાં અંધારખૂણે બેઠેલ સાહિત્ય સમૃદ્ધિ ‘ચારણ’ બહાર લાવશે, એ દ્વારા વારસાથી સિંચુપિત ચારણોની સાહિત્યશક્તિને માર્ગ અને વેગ આપશે. ‘ચારણ’ એ કાર્ય જાતિનું મુખપત્ર નહિ રહે, એ તો થઇ રહેશે સાહિત્ય જગતના એક વિભાગનું શાસ્ત્રીય સંપાદન, જેનું સ્થાન આધુનિક સાહિત્યસમાજમાં પણ વિશિષ્ટ રહેશે અને આધુનિક સાહિત્ય સમાજને પણ એને યોગ્ય સત્કાર આપવો જ પડશે.

છેલ્લા અંકમાં ચારણ ગાંધીના ઇતિહાસ માટે થતી-તૈયારી ગાંધીના ઇતિહાસ સાથે એમાં જૂતકાળમાં સાહિત્યોપજીવી સંસ્થાનો પરિચય બની રહેશે. અત્યારની સાહિત્યોપજીવી સંસ્થાને પણ એમાંથી મોંઘિ નડીતતા. મળે. એ યીતે, એ ઇતિહાસ લખાય તો એ એક સાહિત્ય જગતમાં નવી જ ભાત પાડી જશે.



## તંત્રી-નાંધ



મેઘરાગ્ન મનાયા—

ચાલુ વર્ષે ચોમાસું ખેસતાં ખેડૂત અને માલધારી લોકો વરસાદની સારી આશા સેવી રહ્યા હતા. પણ અધિક શ્રાવણને લઈને કે ગમે તે કારણસર વરસાદે મોડી શરૂઆત કરી. લોકોની ચિંતા થોડા વખત માટે દૂર થઈ, અને વાવણીના કામે લાગી ગયા. વાવેતર પણ ઠીક ઊગી નીકળ્યાં. પરંતુ ફરી પાછા મેઘરાગ્ન રીસાયા અને પૂરા દોઢ મહીના સુધી સમસ્ત પશ્ચિમ હિંદુસ્તાનમાં વચમાં લગારે મહેરગાની કરી નહિ. દિવસે પવન અને રાત્રે તારા નેઈ લોકો ભારે મૂંઝવણમાં પડી ગયા.

અધિક શ્રાવણ આખો કોરો ગયો, એટલે લોકોને વરસાદની ઓછી આશા રહેવા લાગી. સુખી ખેડૂતોએ ધરમાંથી દાણો કાઢવો અને ઘાસ-ચારો વેચવો બંધ કર્યો. સાધનવિદ્યાણુ ગરીબ ખેડૂતો અને માલધારીઓની સ્થિતિ બપોરે થઈ પડી, ટકે ટકે દોર યેચાઈ ગયાં. માણસો મજૂરી માટે અમદાવાદ જેવાં મોટાં શહેરો તરફ લાગવા લાગ્યાં ચારણજાતિ પણ બૃહદ ગુજરાતમાં તો મુખ્યત્વે ખેડૂત અને માલધારી હોવાથી ગુજરાત અને કાઠિયાવાડનાં કેટલાંક ચારણ-કુટુંબો મુસ્લિમોમાં મુકાઈ ગયાનું અખબારોમાં આવેલું. પરંતુ આખરે મરતી મેદાનીને બચાવવા માટે સાચા રાગ-મેઘરાગ્નએ પુનઃ પધરામણી કરી સૌની ચિંતા દાલ તરત તો મટાડી દીધી છે. જો કે જે લોકોનાં દોર-ઢાંખર તારાજ થઈ ગયાં, તેમને તો કોરો કાળ જ રહ્યો છે. છતાં ઓ મહેનત-મજૂર કરીને પણ પોતપોતાના માળામાં જરૂર રહી શકશે.

ઉપરા છાપરી આવાં નજાં વર્ષો આવતાં હોવાથી માલધારી ચારણ બંધુઓએ તો ખૂબ ચેતીને ચાલવાનું છે. પોતાના ગળ ઉપરાંત દોર ન રાખતાં ખેતી જેવો બીજો નેડિયો ધધો કરતાં શીખવું નેઈએ. નહિ તો પછી કોઈ વખત

મેયું માંગ ન દેતીયું, રૂંધતીયું આરા;

જળ જખૂર તણાં, માણો મહિયારા ?

જેવો દુખદ પ્રસંગ ઊભો થઈ ખબેથી લાકડી હોડી મૂકી પડી ! જે બંધુઓ ખેતી કરે છે, તેમણે પૂરા અમરીદ બનવું નેઈએ. વાવણી ટાંગે મહેમાન ગની વાતોમાં



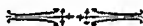
રોકાવાનું કે લણણી ટાળી કોઈ રાજપૂતને ત્યાં લગ્ન સાંભળી વગર નોંતરે ત્યાગ લેવાં દોડી જવાનું હોડી દેવું જોઈએ. 'નંદી સ્વાદ પરાધીન રાજ મહી, જેવો સ્વાદ છે મેં'તના કણમાં, એ શ્રી દલા ભગતનાં વચન હમેશાં લેધ્યમાં રાખી મર્દની જોમ જીવતાં શીખવું જોઈએ. લિશ્કકટ્ટિ કે પરાશ્રિત જીવન કરતાં માલધારી અને ખેડૂત તરીકેનું જીવન ઘણું આદરણીય છે. પરંતુ તેને જીવી જાણનાં આવડવું જોઈએ. "વા અને વરસાદ કોઈના નથી" નહિતો !

### ગ્રાહક બંધુઓને—

આ વર્ષે પ્રતિકૃળ સંજોગોને લીધે 'ચારણ' અનિયમિત, અણુદ અને જનીય પ્રશ્નોની જણાવટ રજૂ કરતાં લેખો વિનાનું લખું નીકળ્યું છે. છતાં આખે તેના ગ્રાહક બની અમને જે સાથ આપ્યો છે, તે બદલ અમે આપનો જેટલો આભાર માનીએ તેટલો થોડો છે. છતાં આપણા આ પત્રને સર્વાંગ સુંદર અને નિયમિત નીકળતું કરવા માટે જોહામાં જોહા પાંચસો ગ્રાહકો હોવાની જરૂર છે. એટલે આપ સૌ આવતે વર્ષે વધુ નહિતો એક એક ગ્રાહક વધારી આપો તો એ મહેજે બસો જેટલા ગ્રાહકો વધે. અલવરથી લેધ્ય અને બોપાળથી દારકાં સુધી પધરાયેલી આપણી વિરાજ જાતિ માટે આ માગણી મોટી ન કહેવાય. પરંતુ તે પૂરી થવી આપ સૌના સાથ ઉપર અવલંબિત છે. ખીજા બંધુઓને આપ સંમતની શંકા છે કે, પાંચ મહેમાન આખે છે તો એ આપણે જે રૂપિયા ખર્ચ કરી નાંખીએ છીએ. દર વર્ષે 'રાવળ-વેરા' ના પણ જોહામાં જોહા જે રૂપિયા આપણે આપવા પડે છે. તો ઘેરજેઠાં આપણને નાતની નવા-જૂની સાથે આપણા અતીત અને ગૌરવ અને સાહિત્યનો પરિચય દેરાતો સમસ્ત જાતિને એક સાંજે જોડનાર આપણા આ પત્રના લવાજમના જે રૂપિયા ખર્ચે તેમ નથી. તેની સાથે લખી વાંચી જાણનાર બંધુઓ વધુ નહિતો આપણા ગદ્યાંગના સમાચાર પણ લખી મોકલતા રહે તો સમસ્ત જાતિને એક સૂત્રમાં બાંધવના અમારા મનોરથ પૂરા થઈ, આપણા પુરાતન આદર્શ 'ચારણ એક, ધારણ' ની નાટક આપણે પહોંચી શકીએ. કાંઈ પણ દેશ અધવા-જાતિની જાગૃતિમાં પ્રવેશોને જેટલો દિરસો છે, તે આપનાથી અગ્રણ્ય નથી. ત્રણ જાતિયતાની રક્ષા કરવા માટે પણ હવે પત્ર-પ્રયાનાણું થવાથી આવા જાતીય પત્રની ખાસ અગત્ય છે. ધારો કે, કોઈ ગદ્યાંગમાં કોઈ બંધુ એવું બૂર કામ કરવાં જોસો ત્યાં કે જેથી સમસ્ત જાતિને નીચું ધાલવું પડે તેમ હોય, તો તેને તેમ કરતો રોકવા માટે કલ્પદાની દૃષ્ટિએ આપણે કાંઈ પણ ન કરી શકીએ. પરંતુ તેને મનુષ્યોચિત શરમમાં નાંખી રસ્તે ચલાવવામાં આપણા આ મુખપત્રને સંમળ

સાધન તરીકે જરૂર પૂરવાર કરી શકીશું. તેની સાથે જાતિને ઓદરકરૂં રૂપ નીવડે તેવા કાર્યના સમાચાર પણ આપણે એ દ્વારા ફેલાવી શકીશું.

ત્રીજા અંકમાં જણાવ્યા મુજબ અમે અમારા પદવું રાજીનામું આપ્યું હતું. પરંતુ આપણા નેતાઓનો આગ્રહ થયો કે ગુજરાતી વિભાગ અધ્યક્ષ જરૂર. તેથી અગવડ વેડીને પણ અમે સહકારી તંત્રી તરીકે ચાલુ રહેવું ઉચિત માન્યું છે. આવતા વર્ષથી 'ચારણ' સંચિત નીકળશે. તેનો પ્રથમ અંક આપણા સળગતા જાતીય પ્રશ્નોની છણાવટ રજૂ કરતાં કુલીન-શાહી, પ્રેતભોજનની પારાપણુ, રમકુની રોજનિશી જેવા અવ્યાસપૂર્ણ લેખોથી સર્વાંગ સુંદર અને વિજ્ઞાનશી પર અજપસાર પ્રકટ થશે. તો આપ સૌ આવતા વર્ષે ગ્રાહક તરીકે ચાલુ રહી આપનું લવાજમ આ ચોથો અંક મળે કે તરતજ મનીઓર્ડરથી 'ચારણ'ના મેનેજર પર મોકલી આપશો, એવી આશા છે. વીં પીં થી નાહક ચાર આના આપને વધુ આપવા પડશે, તે અમને કે આપને કાષ્ટ રીતે હિતાવહ નથી. વળી આપના ઉપર મોકલેલું વીં પીં આપ પાછું વાળો તે પણ આપને શોભારૂપ નથી. વધુ શું ?



## સમાચાર-સંગ્રહ

અગાઉના

ચાલુ સાલે મુંબઈ યુનિવર્સિટી તરફથી લેવાયેલી ઈટર આર્ટ્સની પરીક્ષામાં વાળો-વડવાળા શ્રી અણ્ડતમિદ રામસિદ દેયા અને મોહનદાસ શ્રી પ્રતાપસિદ તેજમાલ દેયા તથા મેટ્રિકની પરીક્ષામાં અરાડાવાળા શ્રી કળિદાસભાઈ બાદીના 'સુવુલ' શી રિલેવન્ટ અમે શિયોદવાળા શ્રી ચંદુલાલ દાદાભાઈ વરસડા પસાર થયા છે. એ ચારે બધુઓને તેમજ મેજેસ્ટ્રી કોર્ટ અદલ અમારાં અભિનંદન.

અરાડાવાળા શ્રી કળિદાસ દાદાભાઈ બાદીની ચાલુરમા તાલુકા સ્કૂલના હેડમાસ્ટર પદથી કડી મદાસ શાળાધિકારી તરીકે અદલી થઈ, તથા પાંજા વિજયપુર મદાસ ગોઝારિયા વિભાગ શાળાધિકારી તરીકે તેઓ અદલાયા છે.

સિંધાવદરવાળા શ્રી તારણભાઈ મેકરજીભાઈ મેદડિયા, ગીંએની કલેસની વખારિયા

ન્યાયરૂઢિમાં અપાપક તરીકે નિમણુંક થઈ છે.

તા. ૧-૧-૩૬ના રાજ ના. ૧૧મ સાહેબ શ્રી દિગ્વિજયસિંહજી ધ્રોળ પધારતાં 'હરધાળ-ગરાસિયા-સમાજ' તરફથી ધ્રોળનરેશને પ્રમુખપદે તેમને માનપત્ર આપવાનો મેળાવડો થયેલો, તે પ્રસંગે કાળાવડવાળા શ્રી માવદાનજી રતનને "કચ્છ-કાડિયાવાડ-ચુલ્લાન-ગરાસિયા એસોસિએશન" તરફથી ૧૧મ સાહેબને હસ્તે, તેમજે ૧૧મંત્રી સ્વત્રિ સમાજની સેવા બદલ સુવર્ણચંદ્રક અપાયાં હતાં. અને ના. ૧૦ ધ્રોળનરેશ તરફથી ૨૦૧૫ રૂપિયાનું વર્ષાસન ખાંખી આપવામાં આવ્યું છે.

શ્રી માવદાનજીને અમારાં અભિનંદન. તેમની કદરમાં અમે સમસ્ત ચારણજીતિની કદર સમજીએ છીએ પરંતુ તેઓ આ કદરનો ઉપયોગ પ્રિય જીવન-સંગી રાજપૂત જાતિના રાજવીઓ અને ગિરાસદારોને ચડાવી મારવામાં ન કરતાં સાચો ચારણધર્મ જાળવી તેમની પ્રજાનાં સુખદુઃખ જાણવામાં કરશે, એવી આશા છે. રંગ રાંજ! રંગ બાદશાહ! એવી મિથ્યાપ્રશંસાનો યુગ હવે આચળ્યો છે. નવયુગના સ્ત્રિઓ અને ચારણોને તેની સજા પેદા થઈ છે. એ વાતથી તેઓ અભય તો નહિ હોય. તેમના કંઠમાં બક્ષિયત વિચારો સમસ્ત ચારણ જાતિના વિચારો, તરીકે રત્ન યતા હોવાનો જાતતાને ખ્યાલ અધારો હોવાનું અમારું જાણવામાં આવ્યું છે તે ખાતે તેમને વિનંતિ કે, ચારણ જાતિની ઈજાજતને ખાતર તેઓ અધિષ્ઠમાં એવું ન કરે.

## ગ્રાહક બંધુઓને સૂચના

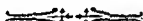
આવતા વર્ષે 'ચારણ'ના ગ્રાહક તરીકે ચાલુ રહેવા માટે અન્યત્ર વિનંતિ કરવામાં આવી છે. જ્યાં જે લોકોએ ગ્રાહક તરીકે ન રહેવું હોય તેમણે આ ચોથા અંક મેળે કે તરતજ અમને એક કાર્ડ લખી તેની સૂચના આપવી. નહિ તો બીજા વર્ષના પહેલો અંક તેમના ઉપર વી. ૦ પી. ૦ થી મોકલવામાં આવશે. અને પછી તેઓ વી. ૦ પી. ૦ નહિ સ્વીકારે તો તેમનાં નામ અમારે દિલગીરીપૂર્વક 'ચારણ'માં જાહેર કરવાં પડશે.

મેનેજર "ચારણ"

વખાડિયા-હાલદેવ કોલેજ (ઉત્તર ગુજરાત)

આપને તરીકે જરૂર પૂરવાર કરી ચક્રીયું, તેની સાથે જાતિને આદર્શ રૂપ નીવડે તેવા કાર્યના સમાચાર પણ આપણે એ દ્વારા ફેલાવી ચક્રીયું.

ત્રી ત અંકમાં જન્માત્મા મુજબ અમે અમારા પદનું ગાળનામું આપ્યું હતું. પરંતુ આપણા મેનામાનો આગ્રહ થયો કે ચુસ્તની વિભાગ અંધ ધર્મ લેશે. તેથી અગત્ય વેળે પળ અમે સદકારી ત ત્રી નરીકે ચાલુ રહેવું ઉચિત માન્યું છે. આવતા વર્ષથી 'ચારણ' અગિય નીકળશે. મેનો પ્રથમાંક આપણા સંગમના જ્ઞાતિ પ્રરોધની જગ્યાએ રજૂ કરતા ફક્તના ગાદી, પ્રેતજાતિની પાસપાળુ, રખડુની રોજનિરી જેવા અવપાસપૂર્ણ લેખોથી સર્વોચ્ચ સંદર્ભની વિજ્ઞાપકમાં પણ મજબૂત પ્રકટ થશે. તો આપ સૌ આવતા વર્ષે માલક તરીકે ચાલુ રહી આપનું જવાબદારી આ મોર્થે અંક મળે કે તરતજ મનીઓડરથી 'ચારણ'ના મેનેજર પર મોકલી આપશે, એવી આશા છે. 'ત્રી' 'ત્રી' થી નાલક ચાર આના આપને પણ આપવા પડશે, ને અમને કે આપને કાલ રીતે દિતાવડ નથી, વળી આપના ઉપર મોકલેલું ત્રીંગીન આપ પાછુ વાળો ને પણ આપને ફાલારપદ નથી, વધુ શું !



- ३६ श्री रामदानजी, जोधपुर  
 ३७ „ लालती चौबे, मथुरा  
 ३८ „ सुमरदानजी वणसूर, पारलाड  
 ३९ „ अंघादानजी रन्, जोधपुर  
 ४० „ जयकरणजी, टोडवाना  
 ४१ „ सुमरदानजी बारहठ, बाटमेर  
 ४२ „ शतारिदानजी कविशो, बी०ए०, जोधपुर  
 ४३ कविराजा सा० श्री दुर्गादानजी  
 महियारिया, कोटड़ी  
 श्री बोलतसिंहजी महड, कोटड़ी  
 „ हेतुदानजी सा० उज्जल, एम०ए०,  
 एल्-एल्०बी०, सोजत  
 „ भारतदानजी बारहठ, ईंटदड़ा  
 „ रामकरणजी, साचौर  
 हरलालजी, डिंगाना  
 आशकरणजी बारहठ, ईंटदड़ा  
 कल्याणसिंहजी हवलदार, बैंगलौर  
 ( दक्षिण भारत )  
 „ भुरदानजी बारहठ, यड़ी गारी  
 कविराजा सा० तेजनिहजी भादिया, जोधपुर  
 „ संभुदानजी, सिवाणा  
 अर्जुनसिंहजी, बी०ए०, एल्-एल्०बी०,  
 सोजत  
 महेंद्रसिंहजी सा० राणावत, बी०ए०, डूँदी  
 सबलदानजी, सोजतराड़  
 जनरामजी उज्जल, जोधपुर  
 गंगाविश्वानजी, मारवाड अंकजान  
 पाचूदानजी, भीनमाल

- ६० श्री हण्णदानजी, चारणवास  
 ६१ „ जोरावरसिंहजी महड, डूँदी  
 ६२ „ मूलकरणजी वणसूर, पारलाड  
 ६३ „ मदगसिंहजी महड, डूँदी  
 ६४ „ श्रीमती इंदबाई सा० रन्, रुद्रद  
 ६५ स्व० श्री शंकरदानजी वणसूर, पारलाड  
 ६६ श्री अमरदानजी पाल्हावत, हण्णतिया  
 ६७ „ मलयदेवजी आदा, एम०ए०,  
 एल्-एल्०बी०, जोधपुर  
 ६८ „ रुड़दानजी बारहठ, तुलकियावास  
 ६९ „ संभुसिंहजी, जयपुर  
 ७० „ बालाबरदाजी बारहठ, रत्नपुरा  
 ७१ „ गुमानसिंहजी, सोनणा  
 ७२ सा० ब० ठा० सा० श्री फतहसिंहजी  
 कूणावत, आंघोर  
 ७३ श्री प्रतापसिंहजी, पृठाजी  
 ७४ „ अमरदानजी बारहठ, टेला  
 ७५ „ धनसिंहजी, बिलाडा  
 ७६ „ शंकरसिंहजी बारहठ, राजगढ़  
 ७७ „ रणवीरसिंहजी, लूणी जंक्शन  
 ७८ „ पनेदानजी, गड्डारोड़  
 ७९ „ सोमदानजी, मिरगेसर  
 ८० „ दुर्गादानजी महियारिया, राजपुर  
 ८१ „ रामसिंहजी भादा, सारवाणिमा  
 ८२ य० सा० श्री देवीसिंहजी बारहठ,  
 मूंदियाड  
 ८३ श्री मैकैसिंहजी दधिवाडिया, जोधपुर  
 ८४ „ पीरदानजी महड, मऊ

૧૭૫ શ્રી કાળાભાઈ-સાદૈયા, પાંકોનેર  
 ૧૭૬ ,, લાલસંગજી રાહડિયા, સિધાવદર  
 ૧૭૭ ,, રવાભાઈ આરટ, ધુનાતું, ગામ  
 ૧૭૮ ,, છવાભાઈ શામળ, ગાંગડ  
 ૧૭૯ ,, દાજીભાઈ લાળસ, કરાંચી  
 ૧૮૦ ,, જગદાનજી, કાળાવડ  
 ૧૮૧ ,, પ્રતાપસિંહજી નાંધુ, નરસંગ  
 ૧૮૨ ,, ભલુભાઈ કુનડા, કનીપુર  
 ૧૮૩ ,, છવણુલાલજી વરસડા ભાદરવા  
 ૧૮૪ ,, કાગિદાસભાઈ બાટી, અરડા  
 ૧૮૫ ,, ભગવતદાનજી રાહડિયા, રોરડી  
 ૧૮૬ ,, કાગિદાસજી આરટ, રાવળ  
 ૧૮૭ ,, અમરસિંહજી બાટી, ખવાવ  
 ૧૮૮ ,, ચકુભાઈ આરટ, સવાણા  
 ૧૮૯ ,, નારણભાઈ, ભોગાત  
 ૯૦ ,, નારણભાઈ બાલિયા, જનમનગર  
 ૯૧ ,, અમેરાજી દેયા, બાળિયા  
 ૯૨ ,, મુળભાઈ મળિયા, રાજકોટ  
 ૯૩ ,, કૂલસિંહજી મહેડુ, કાસિંદ્રા  
 ૯૪ ,, મંત્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય,  
 ભાવનગર  
 ૯૫ ,, ઉદયરામજી શામળ, મુંજા  
 ૯૬ ,, ગોપાળજી રાહડિયા, મુંજા  
 ૯૭ ,, શક્તિદાનજી શામળ, ગદકા  
 ૯૮ ,, પદાભાઈ ભોગસી, મુળા  
 ૯૯ ,, ધનરાજજી લાંગા, બાલ્યા  
 ૧૦૦ ,, છવાભાઈ પાંડરશિયા, પોલીમ  
 સર્પ-સ્પેક્ટર વીરમગામ,

૨૦૧ દરબાર શ્રી ગોપાળસિંહજી સાંબડેમ  
 ગણોદ  
 ૨૦૨ કવિશ્રી રામદાનજી ટાપરિયા, વાવડી  
 ૨૦૩ શ્રી હરદાનેભાઈ નરેલા, ભાવનગર  
 ૨૦૪ ભોગેશનાં ચારણ ડાવરા સમસ્ત,  
 હાંઈ શ્રી રામચંદ્રભાઈ રાયા, ભોરાણા  
 ૨૦૫ શ્રી શિવદાસજી બલભટ્ટ, મહેસાણા  
 ૨૦૬ ,, છવાભાઈ આરટ, વીરવદરકા  
 ૨૦૭ ,, મેથુભાઈ બારંટ, વીરવદરકા  
 ૨૦૮ ,, મેથુભાઈ બોદાણી, અમદાવાદ  
 ૨૦૯ ,, અંબેડી ગામના ચારણ જગીરદાર,  
 હાંઈ શ્રી મુળભાઈ રતુ, અંબેડી  
 ૨૧૦ શ્રી ઉમાભાઈ ટાપરિયા, વઢવાણ  
 ૨૧૧ ,, કેશરદાનજી નાટી, ઢેલાલ  
 ૨૧૨ નાં રાણા યુવરાજશ્રી હંદ્રાસહજ  
 સાં આલા, લખતર  
 ૨૧૩ ,, શ્રી જંશકરજી રતુ, પોરબંદર  
 ૨૧૩ ,, મુળજીભાઈ વદ; અમરેલી  
 ૨૧૪ ,, કાનજીભાઈ લીલા, વંડીયા  
 ૨૧૬ ,, મોંઘાભાઈ લાંગાવદરા, ઘાટકોપર  
 ૨૧૭ ,, અંજાદાનજી મોડ, રાણેસર  
 ૨૧૮ ,, પૂનજીભાઈ મોડ, રાણેસર  
 ૨૧૯ ,, મોડભાઈ મોડ, રાણેસર  
 ૨૨૦ ,, રૂંજીભાઈ આરટ, સરી  
 ૨૨૧ ,, જીમીભાઈ મહેડુ, કોચરિયા  
 ૨૨૨ ,, રૂપશીભાઈ ચાટકા, આવળા

२२३ श्री मोडभाई मोड, सरी	२३८ ले० इन्स श्री सरदारसिद्ध सा०
२२४ ,, त्रिकमवातल आदी, अभदावाद	गोदिल, लावनगर
२२५ ,, अंदास, छ मोड, अभदावाद	२३९ ना० हरभार श्री रामबाणा सा०
२२६ ,, नानुबाह आदी, उमेल	अमसरा
२२७ ,, पंनापसिद्ध आदी, उलोव	२४० ले० इन्स श्री नोरावरसिद्ध सा०
२२८ ,, इपक्षीभाई आदी, उमेल	गोदिल, दिवान, पना (शुहेतअ०)
२२९ ,, तेगभासल आदी, उलोव	२४१ राखा श्री यदसिद्ध सा०, रागपुर
२३० ,, तेगभासल देसिया, सरदर	२४२ श्री भस्वरदानल रतन, विशादनगर
२३१ ,, अमेसिद्ध भगेल, डंड	(अभाणा)
२३२ ,, प्रतापदानल नांधु, वरसोणा	२४३ ,, यडीदानल, घांटीभा
२३३ ,, जगन्नाथ नांधु, वरसोणा	२४४ ,, भस्वरदानल देवका, मीमुवाडा
२३४ ,, भस्वरदानल गंदापय, देवरासल	२४५ ,, छपाभाई आदी, डालवडा
२३५ ,, देशणसिद्ध, डालव, अभदावाद	२४६ ,, नारथुभाई गालडिया, भी०अ०,
२३६ ,, अलतसिद्ध देवा, बागोवड	सिंघावड
२३७ ,, दाहभाई आदी, उलोव	२४७ ,, कानल भोवराभा, नागलपुर दी०

इस तरह प्रारंभ से लेकर ता० १-१०-३९ तक कुल २४७ ग्राहक हुए हैं, जिनके नाम उपर दिए गए हैं। उपर्युक्त नामावली में मूलतः से कितनी राजन का नाम, लैप या निवास-स्थल अशुद्ध दिया गया हो तो कृपया चे इसकी हमें सूचना दें। इस विषय में एक शिक्षावत् है कि 'वारद' उपाधि हमारी समस्त जाति की मानजोषक होने पर भी जहाँ तक हमको मालूम है, अपने नाम के साथ दो इसका उपयोग सिर्फ 'सौदा' एवं 'राठडिया' गोत्र के चारण ही कर सकते हैं। हम हालत में इनसे अन्य गोत्र के कई सजातीय ग्राहक बंधु अपने नाम के साथ अपना गोत्र न लिखकर 'वारद' उपाधि लिखते हैं, यह अनुचित है। यही नहीं, कई तो केवल अपना नाम ही लिखते हैं, इससे वह समझना भी कठिन होता है कि वे चारण हैं या राजपूत। यही कारण है कि ऊपर कई नाम विद्वान्ना हमको निर्दे ही देने पड़े हैं। आशा है, आइये ग्राहक होनेवाले सजातीय बंधु अपने नाम के साथ अपना गोत्र-लैप भी लिखने की कृपा करेंगे।

## जरा इस ओर ध्यान दें

राष्ट्रभाव को जागृत करने के लिये बंगालियों ने बंगला भाषा के प्रसिद्ध कवि श्री विजयलालजी की अध्यक्षता में एक 'चारण-दल' स्थापित किया है। हमारे जन्मजात चारणबंधु इसका रहस्य गमनकर-नवयुग के चारण-धर्म को कब समझने लगेंगे!

अ० सा० श्री किशोरसिंहजी वार्हराण्य की अगामयिक मृत्यु के कारण उनके संपादकत्व में निकलनेवाला 'राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी' (कलकत्ता) का त्रैमासिक मुखपत्र 'राजस्थान' बंद हो गया था वह विगत जुलाई मास से 'राजस्थानी' नाम से ४) रुपया वार्षिक मूल्य पर पुनः बड़ी सज्जण के साथ निकलने लगा है। राजस्थान के इतिहास, संस्कृति, कला एवं साहित्य-विंगल-साहित्य से प्रेम रखनेवाले प्रत्येक चारण बंधु से हम ग्राहक अनुरोध करते हैं कि यह इसका ग्राहक बनकर उसके संपादक-प्रकाशक का उत्साह बढ़ावे। पता-मंत्री, राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी, ७३ ए. चासांभायपाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता।

'राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी' (कलकत्ता) की ओर से 'राजस्थान' के लोकगीत नामक अपूर्व संग्रह-ग्रंथ का प्रथम भाग (पूर्वाद्ध-उत्तरार्द्ध) प्रसिद्ध हुआ है।

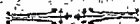
## ग्राहक बंधुओं से

आखिर लज्जापूर्वक यह निवेदन करना पड़ता है कि, 'चारण' के दूसरे एवं तीसरे अंक की छपाई के लिये हममें से गुजराती विभाग के संपादक के कर्मी में कि जहाँ इस समय 'चारण' छपता है, २५ दिन टहरकर परिश्रम करने पर भी तीसरे अंक में सी हुई सूचना के अनुसार यह चौथा अंक समयसार प्रसिद्ध न हो सका। इसके उपरान्त लड़ाई के कारण कागज खर्च महँगे हो जाने से दूसरे वर्ष की छपाई के कुछ दिन पूर्व निश्चित किए हुए रेट के बारे में कुछ झगड़ा उठा था और अब दीपेन्द्रजी पर प्रेम-मालिक एक सप्ताह तक बाहर जा रहे हैं इससे दूसरे वर्ष के प्रथमांक का छपना सीपेन्द्रजी के दूसरे दिन से शुरू होगा और एक मास में वह ग्राहकों की सेवा में पहुँच जायगा। कागज खर्च महँगे हो जाने से दूसरे वर्ष से 'चारण' का मूल्य चित्रशतया २॥) रुपया रखना पड़ा है। अतएव म० अ० से वार्षिक मूल्य भेजनेवाले ग्राहकबंधु २॥) रुपया ही निम्न पते पर भेजें।

मनेजर, 'चारण' पा० कलाल  
B. B. C. I. Ry ( उत्तर गुजरात )



## “ चारण ” के नियम



‘चारण’ वर्ष में चार बार विजयादशमी, पतंतपंचमी, अक्षयतृतीया और दशावधन पर प्रकाशित होगा।

चारण जाति की सर्वांगीण उन्नति के साधक लेखादि के साथ समयानुकूल अन्य विषयों के लेखादि को भी ‘चारण’ में स्थान होगा।

‘चारण’ में छपने के लेखादि का सदा काफी हाशिया छोड़कर कागज के एक ही ओर शुद्ध एवं स्पष्ट लिखा होना जरूरी है। दो लाइनों के बीच में भी जगह काफी होनी चाहिये, ताकि करेकशन आदि किया जा सके।

‘चारण’ में छपने के हिंदी भाषा के लेखादि डा० ईश्वरदान आशिया, ग्राम-मेगदिया, डा० नाथद्वारा ( मेधाङ्ग-राजपूताना ) के पत्र गुजराती भाषा के लेखादि श्री खेतसिंह नारायणजी मिथण ( गढवी ) ग्राम-मुढेरा, पो० वडावली ( उत्तर गुजरात ) के पत्र पर भेजने चाहिये।

प्राप्त लेखादि तभी वापस किये जायेंगे जब इसके लिये डाक-पत्र प्राप्त होगा।

बिना नाम के लेखादि नहीं छपे जायेंगे, परंतु कोई अपना नाम न छपवाना चाहें तो ऐसा लिख दें।

वार्षिक मूल्य दो रुपये होगा और यह सर्वथा अग्रिम लिया जायगा। ग्राहक पो० पी० से ‘चारण’ न मंगाये, क्योंकि उसमें डाकमदखल ज्यादा लग जाता है और रुपये मिलने में भी देर होती है। वार्षिक मूल्य सीधे मनीऑर्डर से भेज देने पर ग्राहकों की भी यचत होती है और हम लोगों का भी सुविधा होती है।

‘चारण’ के ग्राहक यत्न करें पत्र वार्षिक मूल्य भेजने आदि प्रबंध-संबंधी लिखापदी आदि श्री नारायणभाई रेड्डिया, अध्यापक-बलारिया-हाईस्कूल, पो० फलेल ( उत्तर गुजरात ) के पत्र पर करनी चाहिये और किसी अंक के न मिलने पर भी उन्हें लिखना चाहिये। इस विषय में प्रकाशक से बिलकुल लिखापदी न करनी चाहिये।

पत्र-व्यवहार के समय ग्राहकों को अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये और जवाब के लिये टिकट भेजना चाहिये।

## श्री किशोर-स्मारक-श्रद्धांजलि-ग्रंथ

विद्वद्भ्य स्व० ठाकुर किशोरसिंहजी चार्डस्पत्य, स्टेट हिस्टोरियन-पारगवनमेंट, चारण जाति के समुज्ज्वल रत्न थे। आपने सम्मेलन के 'चारण' का कुशल संपादन करके चारण जाति ही नहीं, इतिहास की भी महान् सेवा की है। आप सार्वदेशिक ख्याति के व्यक्ति और इसके उद्भट विद्वान् थे। आपके राजपूत-इतिहास संबंधी सर्वांगी में गवेषणापूर्ण एवं चिंतनीय विचारों पर भारतीय और विदेशी इतिहास-ग्रंथमुग्ध हैं।

आपका हिन्दी, गुजराती, अपभ्रंश, संस्कृत, पाली, प्राकृत, मागधी भाषाओं पर अद्वितीय अधिकार था। आप अंग्रेजी एवं इतर भाषाओं में विद्वान् ही नहीं, डिंगल भाषा और साहित्य के विशेषज्ञ और उत्कृष्ट थे। आपके स्वर्णवास से चारण जाति ही नहीं, राजस्थान की महान् हुई है, जिसकी प्रति निकट भविष्य में होनी कठिन है। चारण जातियों तथा राजस्थानियों का कर्तव्य है कि स्व० विभूति की स्मृति स्थायी बनाने के लिये वे कुछ ठोस कार्य करें। अतः अखिल भारतीय सम्मेलन और राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी (कलकत्ता) ने निश्चय वि कि सम्मिलित रूप से उनकी पुण्य स्मृति में एक स्मारक-ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय। उस ग्रन्थ में उनके संस्मरण और विविध लेखों तथा कविता का संग्रह भी रहे।

ठाकुर साहय के परिचितों, मित्रों और गुणानुरागियों से निवेदन कि वे उनके संबंध में अपने संस्मरण, श्रद्धांजलियाँ तथा लेख-कविता निम्नलिखित किसी एक पते पर शीघ्र भेजने की कृपा करें।

उक्त निश्चय को सफल बनाने के लिये प्रत्येक चारण और चारण-सम्प्रदाय से निम्न प्रार्थना है कि यह इस पुनीत कार्य के लिये यथा शीघ्र आर्थिक सहायता भी करें। ता० १-६-३९